

ज्ञानविशिष्टा निगण्ड आचार्य सिंहनन्दी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

श्री 1008 पार्ष्वनाथ दिगम्बर चौबीसी निगालय

बड़ी बजटिया, बीना (म. प्र.)

संत शिरोमणी 108 आचार्य मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज

के आशीर्वाद से

परम पूज्य 108 श्री अभय सागर जी महाराज, श्री प्रभात सागर जी

108 श्री पूज्य सागर जी

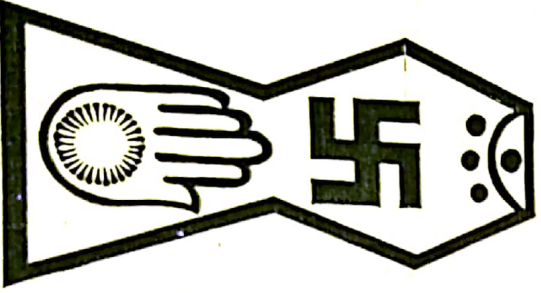
ससंव के चार्तुमास वर्षायोग 2014 पर सादर भेंट

चरण सेवक -

चौहारी मानिक चंद्र, भूपेठ कुमार (सोनू)

नीलेश कुमार, शैलेष कुमार

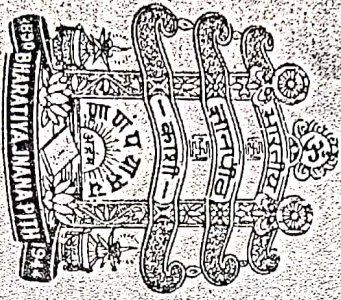
(चौहारी स्टील पैलेस, मन्नावीर चौक, बीना)



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञातको विबुध, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रिका
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण



संस्थापक

साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्ष

श्रीमती रमा जैन

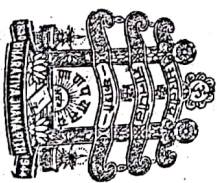


भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-सूतिदेवी-ज्ञान-ग्रन्थमाला—संस्कृत-ग्रन्थांक १९

व्रत-तिथि-निर्णय

श्री नेमिचन्द्र शास्त्री



सारणीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-मूर्तिदेवी-जैन-संस्कृत-ग्रन्थमाला-सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए० डी० लिट्
डॉ० ए० एन० उपाध्याय, एम० ए० डी० लिट्

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयलजीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण

१९५६ ई०

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक

ओम्प्रकाश कपूर

ज्ञानमण्डल यन्त्रालय

कबीरचौरा, बनारस. ४९५१-१३

पूज्य गुरुदेव

श्रीमान् पण्डित कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री
के करकमलोंमें

सादर समर्पित

श्रद्धावनत

नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

प्रस्तावना	...	११
ग्रन्थका प्रास्ताविक	...	१७
तिथिमानके लिए हिमादि और कुलाद्रिमत्	...	३८
मांगलिक कार्योंके लिए ग्राह्य उत्तरायण	...	७०
मास, पक्ष और तिथि गणना	...	७१
तिथिके सम्बन्धमें केशवसेन और महासेनका मत	...	७२
दान, अध्ययन और पौष्टिक कार्यके लिए तिथि-व्यवस्था	...	७५
द्रव्य-विप-हुताशन संज्ञक तिथियाँ	...	७६
शून्यसंज्ञक तिथियाँ	...	७७
सूर्यद्रव्य तिथियाँ	...	७८
चन्द्रद्रव्य तिथियाँ	...	७८
तिथि-प्रमाणके लिए पञ्चदेवका मत और उसका उपसंहार	...	७९
एक ही दिन कई तिथियाँ होनेपर व्रत-तिथिकी व्यवस्था	...	७९
वेधा तिथिका लक्षण	...	८०
व्रतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान	...	८१
शुभ कार्योंमें स्वाज्य	...	८३
शुभ कार्योंके लिए पञ्चाङ्गशुद्धि	...	८३
नक्षत्रनामावली	...	८३
नक्षत्रोंकी संज्ञाएँ	...	८४
योगोंकी नामावली और उनके अशुभ भाग	...	८४
विभिन्न कार्योंके लिए वारव्यवस्था	...	८५
व्रतके लिए छःघटी प्रमाणतिथि न माननेवालोंके ग्रहों दोष	...	८६
व्रत-विधिका आवश्यक अंग—समयशुद्धि	...	८७
तिथिहासमें व्रतविधान करनेका नियम	...	८८
नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान भेद	...	८९
रत्नावली और पुकावली व्रत	...	९०

द्विकावलीव्रत	...	११
आकाशपञ्चमी	...	११
चन्द्रनवमी	...	११
नैसिक व्रतोंके लिए तिथि-व्यवस्था	...	१२
दशलक्ष्णीक और अष्टाद्विक व्रतोंमें वीचकी तिथि क्षय	...	१२
होनेपर व्रत-व्यवस्था	...	१२
एकाशनके लिए तिथि-विचार	...	१७
षोडश कारण और मेघमालाव्रतका विचार	...	१००
मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ	...	१०३
रत्नत्रयव्रतकी तिथियोंका निर्णय	...	१०५
मुनिमुव्रत पुराणके आधारपर व्रत-तिथिका प्रमाण	...	१०७
व्रततिथिके निर्णयके लिए निर्णयसिन्धुके मतका निरूपण	...	१०८
तथा खण्डन	...	११२
तिथिवृद्धि होनेपर व्रतोंकी तिथिका विचार	...	११४
तिथिवृद्धि होनेपर व्रत-व्यवस्था	...	१२०
मेखव्रतकी व्यवस्था	...	१२३
व्रततिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न आचार्योंके मत	...	१२५
मूलसंघ और सेनागणके आचार्योंके मतानुसार तिथि-व्यवस्था	...	१२७
दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी अवधिका निर्णय	...	१३०
व्रततिथिके निर्णयके लिए अन्य मतान्तर	...	१३५
व्रततिथिके लिए विभिन्न मत	...	१३७
तृतीयांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले मतकी	...	१४०
आलोचना	...	१४२
षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए उद्धयकालमें तिथि माननेवाले	...	१४४
मतकी समीक्षा	...	...
व्रतके आदि मध्य-अन्तमें तिथिक्षय होनेपर अन्नदेवका मत	...	...
तिथिक्षय होनेपर गौतमादि मुनीश्वरोंका मत	...	...

व्रततिथिकी व्यवस्था	...	१४६
शुभ कृत्योंके लिए शुभ और गुरुका अस्त	...	१४९
चन्द्र और सूर्य शुद्धिका विचार	...	१५०
प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके व्रतकी व्यवस्था	...	१५१
दिन और रात्रिके सुहृत्तोंका प्रमाण	...	१५१
रौद्र सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५२
द्वितीय हवेत सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५२
तृतीय मैत्र सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५२
चतुर्थ सारभट सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५३
पञ्चम दैत्य सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५४
षष्ठ वैरोचन सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५४
सप्तम वैशदेव सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५५
अष्टम अभिजित् सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५५
नवम रोहण सुहृत्तोंमें विधेय कार्य	...	१५५
दशम, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश और पञ्चदश	...	१५६
सुहृत्तोंके स्वभाव और उनमें विधेय कार्य	...	१५७
तिथिहास होनेपर तृतीया व्रतका विधान	...	...
व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा कवलचन्द्रायण	...	१५८
व्रतकी परिभाषा	...	१६०
जिनमुखावलोक्त व्रत	...	१६१
मुक्तावली व्रतके भेद और उनकी व्यवस्थाएँ	...	१६२
चण्डोऽञ्जलि व्रतका लक्षण	...	१६४
जिनमुखावलोक्त व्रतकी विधि	...	१६६
मुक्तावली व्रतकी विधि	...	१६६
द्विकावली व्रतकी विधि	...	१६९
लघुद्विकावली व्रत-व्यवस्था	...	१७०
एकावलीव्रतकी विधि और फल	...	...

सावधि व्रतोंके भेद	...	१७१
सुखाचिन्तामणिव्रतका स्वरूप	...	१७२
तिथिह्रास और तिथिवृद्धि होनेपर सुखाचिन्तामणिव्रतकी व्यवस्था	...	१७३
अष्टाह्निकादि व्रतोंमें तिथिक्षय होनेपर पुनः व्यवस्था	...	१७५
मासाधिक होनेपर सांवत्सरिक क्रियाकी विधि	...	१७६
अधिमासोंकी तालिका	...	१७८
मासक्षय होनेपर व्रतके लिए व्यवस्था	...	१७९
तिथिका प्रमाण	...	१८१
व्रततिथिके निर्णयमें शंकाका समाधान	...	१८२
अपने स्थानका तिथिमान निकालनेके लिए रेखांशबोधक सारिणी	...	१८४
मुकुटसप्तमीव्रतका स्वरूप	...	१८९
त्रिदोषसप्तमी व्रतका स्वरूप	...	१८९
श्रवणद्वादशी व्रतका स्वरूप	...	१९१
जिनरात्रि व्रतका स्वरूप	...	१९३
मुकावली व्रतका स्वरूप	...	१९४
रत्नत्रय व्रतकी विधि	...	१९५
अनन्तव्रत विधि	...	१९६
सेधमाला और षोडशकारण व्रतोंके करनेकी विधि	...	१९९
अष्टाह्निका व्रतको करनेकी विधि	...	२००
प्रत्येक प्रकारके व्रतको धारण करनेका संकल्पमन्त्र	...	२०१
व्रत-समाप्तिके दिन व्रत-विसर्जनका संकल्पमन्त्र	...	२०२
द्वैवासिक व्रतोंका निर्णय	...	२०३
त्रिमुखशुद्धिव्रतकी विधि	...	२०३
द्वारावलीकनव्रत	...	२०४
जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रतोंका स्वरूप	...	२०४

पञ्चदश और प्रतिमायोग व्रतका स्वरूप	...	२०६
नैशिक व्रतोंका वर्णन	...	२०७
मासिक व्रतोंका वर्णन	...	२०८
पञ्चमास चतुर्दशीव्रत, शीलचतुर्दशीव्रत और रूप-चतुर्दशीव्रत	...	२०८
कनकावलीव्रतकी विशेष विधि	...	२१०
रत्नावलीव्रतकी विशेष विधि	...	२११
ज्ञानपद्मीसी और भावनापद्मीसी व्रतोंकी विधि	...	२१४
नमस्कार पैंतीसी व्रतकी विधि	...	२१७
मासावधि व्रतोंका कथन	...	२१८
उपेष्टजितवर व्रतकी विधि	...	२१८
जितगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि	...	२१९
चन्दनपट्टी व्रतकी विशेष विधि	...	२२०
रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता	...	२२१
रोहिणीव्रतका फल	...	२२१
रोहिणीव्रतकी व्यवस्था	...	२२२
रोहिणीव्रतकी विशेष विधि	...	२२४
तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें देशकालकी मर्यादाका विचार	...	२२७
रात्रिव्रतकी विधि	...	२२८
रात्रिव्रतका फल	...	२२९
सप्तपुण्यस्थान व्रतकी विधि	...	२३०
क्षीपमुकुट सप्तमीव्रत	...	२३१
अक्षयनिधिव्रतकी विधि	...	२३३
मासिक सुगन्धदशमीव्रत	...	२३३
सांवत्सरिक व्रतोंका वर्णन	...	२३४
चारिन्ध्रशुद्धिव्रतकी व्यवस्था	...	२३५
सिंहनिष्क्रीडित व्रतकी व्यवस्था	...	२३६

पुरन्दर व्रतकी विधि	...	२३९
दशलक्षण व्रतकी विधिपर प्रकाश	...	२४१
तिथिक्षय होनेपर दशलक्षणव्रतकी व्यवस्था और व्रतका फल	...	२४३
पुष्पाञ्जलिब्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल	...	२४४
उत्तम मुक्तावली व्रतकी विधि	...	२४६
प्रकारान्तरसे सुगन्ध दशमीव्रतकी विधि	...	२४८
अक्षयतिथि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष	...	२४९
मेघमालाव्रतकी विशेष विधि	...	२५१
रत्नत्रय व्रतकी विधि	...	२५२
तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय व्रतकी व्यवस्था	...	२५३
काम्यव्रतोंका फल	...	२५३
अकाम्यव्रतोंका वर्णन	...	२५४
उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश	...	२५७
पञ्चकल्याणक व्रततिथिवोधक चक्र	...	२५८
पञ्चपरमेष्ठी व्रत	...	२६०
सवार्धसिद्धि व्रत	...	२६०
धर्मचक्र व्रत	...	२६०
नवनिधि व्रत	...	२६१
शील व्रत	...	२६१
त्रेपन क्रिया व्रत	...	२६१
कर्मचूर व्रत	...	२६२
लघु सुखसम्पत्ति व्रत	...	२६२
बारह सौ चौतीस व्रत या चारित्र्यशुद्धि व्रत	...	२६३
इष्टसिद्धिकारक तिःशलय अष्टमी व्रत	...	२६३
कोकिला पञ्चमी व्रत	...	२६३
जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत	...	२६४
गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश	...	२६४

प्रस्तावना

रथौहार, पर्व और व्रतोंका संस्कृतिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अहिंसा-प्रधान श्रमण संस्कृतिमें आत्मशोधन लौकिक अमृत्युदयकी उपलब्धि, जीवनमें प्रगति एवं प्रेरणा प्राप्तिके लिए रथौहार, पर्व और व्रतोंकी साधना आवश्यक मानी गयी है। यह सत्य है कि जिस प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे कृषिको लाभके स्थानपर हानि ही होती है, उसी प्रकार असमयपर क्रिये गये व्रतोंसे लाभके स्थानपर हानि ही होनेकी सम्भावना रहती है। व्रतोंका वास्तविक फल विधिपूर्वक यथासमय व्रत सम्पन्न करनेसे ही प्राप्त होता है तथा रथौहारोंसे भी जीवनमें गतिशीलता वृथात्तमय रथौहारोंकी सम्पन्न करनेसे ही आती है। इसी कारण आचार्योंने व्रतों और रथौहारोंकी तिथि-व्यवस्था एवं विधिविधानपर यथेष्ट जोर दिया है। किन्तु वर्तमानमें हमारे समाजमें तिथि-व्यवस्था और विधि-विधानकी प्रायः अवहेलना होती दिखाई दे रही है। यद्यपि व्रतोंका प्रचार है, पर तत्सम्बन्धी कर्मकाण्ड उठ-सा गया है। इसका प्रधान कारण एतद्विषयक साहित्यका अभाव होनेसे विद्वद्बर्गकी उपेक्षा ही है। जिस प्रकार वैदिक संस्कृतिके विषये व्रत और रथौहारोंका व्यवस्थापक उस संस्कृतिमें 'निर्णयतिशु' ग्रन्थ है, उस प्रकारका व्यवस्थासूत्रक ग्रन्थ अभी तक जैन समाजमें उपलब्ध नहीं है। यद्यपि निर्णयतिशु भी अनेक प्राचीन वैदिक ग्रन्थोंके आधारपर ही संकलित है, फिर भी उस ग्रन्थकी महत्ता और मौलिकता अक्षुण्ण है। हमारे विद्वद्बर्गका ध्यान इस ओर न गया, अन्यथा जैननामके आधारपर व्यवस्थासूत्रक कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तय्यार हो गया होता। सौभाग्यसे श्री जैन सिद्धान्त भवन, आराके ग्रन्थालयमें 'व्रततिथिनिर्णय' नामक एक तिथि-व्यवस्था सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ सुरक्षित था। इसीको हिन्दी अनुवाद और विवेचनके साथ भारतीय ज्ञानपीठ काशीसे प्रकाशित किया

वृत्ततिथिनिर्णय

जा रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रन्थमें उक्त कमी सर्वथा दूर हो जायगी, पर यह निश्चित है कि बहुत कुछ अंशोंमें इस लक्षुकाय कृति द्वारा व्रत-व्यवस्थामें सहायता प्राप्त होगी। और जबतक इस विषयपर विशालकाय ग्रन्थ संकलित नहीं होता है; तबतकके लिए यह ग्रन्थ निर्णयसिन्धुके समान ही उपयोगी सिद्ध होगा।

त्यूहारेकी व्यवस्था

विजयादशमी, होली प्रभृति त्यौहारोंको जैन भी अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ मनाते हैं। इन त्यौहारोंका जैनधर्मकी दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रसंगमें कतिपय धार्मिक त्यौहारोंकी तिथि एवं विधि-विधानव्यवस्था पर प्रकाश डाला जायगा।

जैन आगमके अनुसार नवीन वर्षका प्रारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को होता है। इस दिन भगवान् महावीरकी प्रथम दिव्य ध्वनि खिरी थी। वीरशासन जयन्ती का प्रारम्भ इसी तिथिसे हुआ है। युगकी समाप्ति का आरम्भ इसी तिथिसे हुआ करता है।

सावणवहले पाडिवरहमुहुत सुहोदये रविणो ।

अभिजस्त पढमजोए जुगस्त आदी इमस्त पुढं ॥

धनला टीका, त्रिलोकसार, लोकविभागा आदि धार्मिक ग्रन्थोंके अलावा ज्योतिष्करण्डक, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रभृति ज्योतिषविषयक ग्रन्थोंसे भी उक्त कथनका समर्थन होता है ।

मेगधान् महवीरका प्रथम दिव्योपदेश हसी तिथिको हुआ था ।
हसकी महत्ताके सम्बन्धमें श्री जुगलकिशोरजी मुल्तारका अभिमत है कि

१. दिलोदपणची १।७०।

द्वततिथिनिर्णय

“कृतज्ञता और उपकार-स्मरण आदिकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह ही भू-प्रवर्तक विधि दूसरी जन्मादि-विधियोंसे कितने ही अंशोंमें अधिक महत्त्व रखती है; क्योंकि दूसरी पञ्चकल्याणक विधियाँ जब व्यक्ति-विशेषके निर्जीव, उदकपीदिसे सम्बन्ध रखती हैं, तब यह विधि पीड़ित, पतित और मार्ग-व्युत्त जनताके उत्थान एवं कल्याणके साथ सीधा सम्बन्ध रखती है और इसीलिए अपने हितमें सावधान कृतज्ञ जनताके द्वारा स्वातन्त्र्यसे स्मरण रखने तथा महत्त्व दिने जाने योग्य है” ।

धवलसिद्धान्त और तिलेयपण्णत्तिमें इस तिथिको धर्मतीर्थोत्ति-तिथि कहा गया है । यतः—

वासस पढमासे पढमे पक्खमि सावणे बहुले ।
पाडिवदपुव्वदिवसे तिथुप्पत्तीं हु अभिजन्हि ॥

×

×

×

×

३पूरधावसपिणीपु चन्द्रथकाशस्स चरिमभागभि
तेत्तीसवासअडमासपणरसदिवससेसम्मि

वाससस पढममासे सावणणाममि बहुलपडिवाणु
अभिजीणकखत्तमि य उपपत्ती धम्मविथस्स

माह और पन्द्रह दिन शेष रहनेपर वर्षके श्रावण नक्षत्रार्थ—अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमें

महीनेमें : कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित नक्षत्रके उदित रहनेपर धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ।

वीरशासन जयन्ती श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को आमोजत् नक्षत्रक होनपर ही सम्पन्न की जानी चाहिए । अभिजित् नक्षत्रका प्रमाण ज्योतिषमें १९ घटी माना गया है । उत्तराषाढा नक्षत्रकी अन्तिम १६ घटियाँ तथा

१ धवलादीका प्रथम भाग पु० ६३ ।

२. तिलोपपण्णत्ती प्रथमाधिकार गाथा ६८-६९ ।

आषाढी पूर्णिमा पूर्वाषाढाके अन्त और उत्तराषाढाके आदिमें पड़ती है। पूर्णिमाके दिन उदयमें पूर्वाषाढा नक्षत्र रहता है तथा प्रतिपदाके प्रातःकालके समय उत्तराषाढा नक्षत्र आ ही जाता है। अतएव वीर-शासन जयन्ती उसी तिथिको मनानी चाहिए जिस तिथिको उत्तराषाढाकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवण नक्षत्रकी ४ घटियाँ आवें। यह स्थिति कभी-कभी द्वितीया तिथिको भी आ सकती है, क्योंकि नक्षत्रमानके अनुसार अभिजित् द्वितीयाको आ सकता है। वीरशासन जयन्तीमें अभिजित् मानकी प्रधानता है। अभिजित्मान नक्षत्रकाल गणनाके अनुसार लिया गया है और तिथि चान्द्रमानके अनुसार गृहीत है। अतः दोनों मानोंका कभी-कभी सन्तुलन नहीं होगा तथा कभी सन्तुलन हो भी जाया करेगा। यतः तिथि मान जितना घटता-बढ़ता है, नक्षत्रमानमें इससे अन्तर होता है; इससे कभी-कभी श्रावण प्रतिपदाके दिन—जिस दिन उदयकालमें प्रतिपदा हो, उस दिन अभिजित् नक्षत्र नहीं भी आ सकता है। इस प्रकारकी स्थितिमें द्वितीया तिथिको ही अभिजित् पड़ेगा, अतः अभिजित् नक्षत्रके दिन ही वीरशासन प्रवृत्तिका समय आवेगा। उदाहरणार्थ यों-कहा जा सकता है कि आषाढी पूर्णिमा संवत् २००६में मंगलवारको २० घटी १५ पल है। इस दिन मूल नक्षत्रका प्रमाण १८ घटी १५ पल है तथा बुधवारको प्रतिपदा १५ घटी ३० पल है और पूर्वाषाढा २० घटी ३० पल है। इस स्थितिमें वीरशासन जयन्ती किस दिन मनाई जानी चाहिए।

मंगलवारको पञ्चाङ्गमें अंकित पूर्णिमा २०।१५ है। अतः अहोरात्र प्रमाणमेंसे पूर्णिमाको घटाया तो अनांकित प्रतिपदाका प्रमाण हुआ— $(६० - २०।१५) = ३९।४५$ अनांकित प्रतिपदा, इसमें पञ्चांग अंकित प्रतिपदाको जोड़ा तो $३९।४५ + १५।३० = ५४।१५$ कुल प्रतिपदा। किन्तु बुधवारको १५ घटी ३० पल ही प्रतिपदाका मान है। इस दिन नक्षत्र निकालना है कि कौन-सा पड़ता है। $(६०।० - १४।१५ =$

$४१।४५$ अनांकित पूर्वाषाढा, अतः $४१।४५ + २०।३०$ पञ्चाङ्ग अंकित $= ६२।१५$ मूर्वाषाढाका कुल मान हुआ; किन्तु बुधवारको २० घटी ३० पल ही पूर्वाषाढा है। इसके पश्चात् उत्तराषाढाका आरम्भ हो जाता है। अतः बुधवार को $(६०।० - २०।३०) = ३९।३०$ उत्तराषाढा है। बुधवारको श्रवण नहीं आ सकेगा, अतः श्रवणकी प्रथम चार घटियाँ हमें नहीं मिलेंगी। ऐसी स्थितिमें अभिजित् नक्षत्र, जो कि उत्तराषाढा और श्रवणके संगेसे निष्णात होता है, गुरुवारको मिलेगा। इस दिन द्वितीया तिथि हो जायगी, ऐसी स्थितिमें वीर-शासन जयन्ती गुरुवार द्वितीयाको ही मनानी होगी। निष्कर्ष यह है कि वीरशासन जयन्ती अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही सम्पन्न करना अधिक उचित है। यह काल मध्यममानसे प्रायः सर्वदा प्रातः ८-९ बजेके मध्यमें आयागा। अतएव इसदिन भगवान् महावीर स्वामीका पूजन करना, उपवास करना तथा भगवान्के उपदेशोंके प्रचारके लिए सभा आदिका आयोजन करना चाहिए। साधारणतया जिसदिन प्रतिपदा पञ्चांगमें उदयकालमें ही रहती है उस दिन प्रायः अभिजित् नक्षत्र भी आ ही जाता है। अतः यहाँ प्रतिपदाका मान उदयकालीन ही ग्रहण करना चाहिए। दो प्रतिपदाएँ होनेपर जो प्रतिपदा उदयकालमें १० घटी या इससे अधिक हो, उसीमें यह दिन पड़ता है। अतएव अभिजित् नक्षत्रके होनेपर ही प्रतिपदाको ग्रहण करना शास्त्रसम्मत है और यही धर्मतीर्थके प्रवर्तनका काल है।

भगवान् पार्श्वनाथका निर्वाण-दिवस प्रायः सर्वत्र भगवान् पार्श्वनाथ-मनाया जाता है। भगवान् पार्श्वनाथके निर्वाणके का निर्वाण-दिवस भगवान्के वताया गया है—

सिद्धसत्तमीपद्मसे सावणमासमिम जन्मणक्खत्ते ।
सम्मेदे पासजिणो उत्तीसज्जुदो गदो मोक्खं ॥

—तिलोपपण्णत्ती ४।१२०७

अर्थात्—पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रावण मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको

प्रदोष कालमें अपने जन्म-नक्षत्र विशाखाके रहते छत्तीस मुनियोंसे युक्त होते हुए समोदशिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए ।

‘उत्तरपुराणमें इस गाथाकी अपेक्षा कुछ भवभिन्नता मिलती है—

पट्विशन्मुनिभिः सार्धं प्रतिमायोगमास्थितः ।

श्रावणे मासि सप्तम्यां सिते पक्षे दिनादिमे ॥

भागे विशाखनक्षत्रे ध्यानद्वयसमाश्रयात् ।

गुणस्थानद्वये स्थित्वा समोदाचलमस्तके ॥

—उत्तरपुराण ३७।१५६-१५७

अर्थात्—श्रावण शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकालके समय विशाखा नक्षत्रमें शुक्लध्यानके तीसरे और चौथे भेदोंका आश्रय लेकर उन्होंने अनुक्रमसे तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें स्थिर होकर श्रीसमोदशिखर-पर समस्त कर्मोंको क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया ।

उपर्युक्त दोनों विवेचनोंमें तिथि एक ही है, पर समयमें अन्तर है । अतः किस समय भगवान् पार्वनाथका निर्वाणोत्सव किया जाय । विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रथाएं प्रचलित हैं, कहीं प्रातः निर्वाणोत्सव मनाया जाता है तो कहीं अपराह्णमें । यहाँपर तिलोपपण्णत्तीमें आये हुए प्रदोष कालपर विचार किया जाता है । ज्योतिषमें प्रदोष शब्दका अर्थ—“प्रदोषोऽस्तमयदृष्ट्व धटिकाद्वयमिव्यते” अर्थात् सूर्यके अस्त होनेके बाद दो धटिका समयको प्रदोषकाल कहते हैं । अमरकोषमें प्रदोषका अर्थ—“प्रदोषो रजनीमुखम्” अर्थात् रजनी—रात्रिके मुखभाग—आरम्भका नाम प्रदोष है । व्यवहारमें प्रदोष शब्दसे रात्रिके प्रथम प्रहरकी गणना की जाती है । किन्तु निर्णयसिन्धुमें प्रदोष समस्त रात्रिको बताया गया है । अतः विशेषकी व्यवस्थाके लिए हेमाद्रि मतमें रात्रिके प्रथम प्रहरके साथ समस्त रात्रिको भी प्रदोषके अन्तर्भूत किया गया है ।

भगवान् पार्वनाथके निर्वाणका काल यदि प्रदोषकाल मान भी लिया जाय तो भी निर्वाणोत्सव प्रातःकाल ही सम्भव है; क्योंकि भगवान्ने रात्रिमें निर्वाणलाभ लिया है । उत्तरपुराणमें निर्वाणका समय “दिनादिमे”

अर्थात् उपाकाल माना गया है । यह निश्चित है कि तिलोपपण्णत्ती उत्तर-पुराणसे पहलेकी रचना है तथा भगवान्के निर्वाणकालकी मान्यता प्रदोषकालकी अधिक प्रामाणिक है । प्रदोषकालमें निर्वाण होनेसे भी निर्वाणोत्सव जनतामें प्रातःकाल ही होता चला आ रहा होगा । इसी कारण उत्तरपुराणकारने भगवान् पार्वनाथका निर्वाणकाल उपाकाल मान लिया है । अतएव भगवान् पार्वनाथका निर्वाणोत्सव सप्तमी तिथिकी रात हो जानेपर अष्टमीके प्रातःकालमें होना चाहिए । यदि सप्तमीको विशाखा नक्षत्र मिल जाय तो और भी उत्तम है, अन्यथा सप्तमीकी समाप्ति होनेपर अष्टमीकी प्रातःवेलामें सूर्योदयसे पूर्व ही निर्वाणोत्सव सम्पन्न करना अधिक शास्त्रसम्मत है । यहाँ अष्टमी तिथिका आरम्भ नहीं माना जायगा; क्योंकि सूर्योदयके पहले तक सप्तमी ही मानी जायगी । इस प्रकारके उत्सवोंमें उदया तिथि ही ग्रहण की जाती है । जिन स्थानोंपर षष्ठीकी समाप्ति और सप्तमीके प्रातःमें निर्वाणोत्सव सम्पन्न किया जाता है, वह भ्रान्त प्रथा है । इसी प्रकार अपराह्णमें निर्वाणोत्सव मनाना भी भ्रान्त है ।

रक्षाबन्धन पर्वकी कथा प्रायः विदित ही है । इस दिन ७०१ मुनियोंकी रक्षा होनेके कारण ही यह पर्व रक्षाबन्धनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । हरिवंशपुराणके वीसवें सर्गमें मुनि विष्णु-

रक्षा-बन्धन

कुमारका आख्यान आया है । रक्षाबन्धनकी व्यवस्थाके

सम्बन्धमें उदया तिथि ही ग्रहण की गई है । इसका प्रधान कारण यह है कि उदयकालीन पूर्णिमा जिस दिन होगी, उस दिन श्रवण नक्षत्र आ ही जायगा । गणितका नियम इस प्रकार का है कि चतुर्दशीकी रात्रिको प्रायः श्रवण नक्षत्र आ ही जाता है । श्रुतसागर मुनिने मिथिलामें चतुर्दशीकी रात्रिको श्रवण नक्षत्रका कम्पन देखा था । आराधनाकायाकोशमें बतलाया गया है—

मिथिलाग्रामस्य ज्ञानी श्रुतसागरचन्द्रवाक् ।

मुनीन्द्रो व्योम्नि नक्षत्रं श्रवणं श्रमणोत्तमः ॥

कम्पमानं समालोक्य हाहाकारं विधाय च ।
उपसर्गो मुनीन्द्राणां वर्तते महतां महान् ॥

इससे स्पष्ट है कि श्रवण नक्षत्र चतुर्दशीकी रातमें प्रायः आ जाता है । गणितसे भी श्रवण चतुर्दशीके सन्ध्याकालमें आ ही जाता है । परन्तु यह चतुर्दशी भी उदया होनी चाहिए । उदयकालमें एकाध घटी होने पर भी चतुर्दशीकी रातमें श्रवण आ जायगा । अतः रक्षाबन्धन पूर्णिमाको श्रवणके रहते हुए सम्पन्न किया जायगा ।

इस पर्वके दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजाके पश्चात् यज्ञोपवीत बदलनेकी क्रिया भी सम्पन्न की जाती है । बताया गया है—

श्रावणे मासि नक्षत्रे श्रवणे पूर्ववत्क्रियाम् ।
पूर्वहोमादिकं कुर्यान्मौर्ध्नी कथ्याः परित्यज्येत् ॥

श्रावण मासमें पूर्णिमाके दिन श्रवण नक्षत्रके होने पर हवन, पूजन आदिके पश्चात् यज्ञोपवीतको बदलना चाहिए । ज्योतिषशास्त्रमें भी आया है—

संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये ।
स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ॥

हवन करते समय इस बातका ध्यान रखना होगा कि हवनके समयमें भद्रा न हो । भद्राकालमें हवन करना वर्जित है । अतः पूर्णिमा-को जिस समय भद्रा हो, उस कालका त्यागकर अन्य समयमें हवन किया सम्पन्न करनी चाहिए । यदि प्रातःकाल भद्रा हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नोत्तर भद्रा होने पर प्रातः हवन कार्य कर लेना चाहिए ।

१—भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा ।

श्रावणी नृपतिं हन्ति प्रामं दहति फाल्गुनी ॥

X X X

नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥

साधारणतया भद्राके अभावमें हवन मध्याह्नोत्तरकालमें किया जाता है । बताया गया है “ततोऽपराह्णसमये हवनकार्यं यज्ञोपवीतधारणकार्यञ्च करणीयं व्रतिकैः ।” अतः अपराह्णकालमें अर्थात् एक बजे हवनकार्यको सम्पन्न करना चाहिए ।

यज्ञोपवीत बदलनेका मन्त्र यह है—

ओं नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं
यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अहं नमः स्वाहा ।

व्रती व्यक्तियोंको—रक्षाबन्धनपर्वका व्रत करनेवालोंको पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए । इस दिन विष्णुकुमार मुनिकी पूजा तथा अन्य गुरुओंकी पूजाके पश्चात् मध्याह्नमें हरिवंशपुराणका स्वाध्याय करना चाहिए । तीनों कालोंमें “ओं ह्रीं अहं श्रीचन्द्रप्रभजिनाय कर्ममत्सम-विधूनाय सर्वशान्तिवात्सल्योपवर्द्धनं कुरु कुरु स्वाहा” मन्त्रका जाप करना चाहिए । रात्रि-जागरण करते हुए भक्तामरस्तोत्रका पाठ एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्रका पाठ करना चाहिए । प्रातः प्रतिपदाके दिन नित्य कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजाके उपरान्त णमोकार मन्त्रकी तीन मालाएँ जपनी चाहिए । अनन्तर एक अनाज का भोजन—दूध-भात या भात-दही अथवा रोटी-दूधका आहार करना चाहिए । नमक, मीठा, फल और शाक-सब्जीका त्याग इस दिन करना होता है । केवल एक अन्नसे पाचना की जाती है । यह व्रत आठ वर्षों तक किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है । इस दिन श्रेयांसनाथ भगवान्का निर्वाण भी हुआ है ।

भाद्रपद मासमें अनेक पर्व और व्रत हैं, किन्तु उनका विवेचन व्रतोंके अन्तर्गत किया जायगा । इस महीनेके केवल वासुपूज्य निर्वाणोत्सवकी व्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है । वासुपूज्य स्वामीके निर्वाणोत्सव-दिवसके दिवस सम्बन्धमें आचार्योंमें मतभिन्नता है । तिलोप-

पणप्त्तोमें बताया गया है—

‘फगुणबहुले पंचमि अवच्छेद अस्मिणीसु चंपाए ।
प्याहिप्यलसयज्जदो सिद्धिगदो वासुपुज्जजिणो ॥’

अर्थात् वासुपूज्य ज्जिनेन्द्र फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीके दिन अपराह्नकाल में अश्विनी नक्षत्रके रहते छह सौ एक मुनियोंसे युक्त होते हुए चम्पापुर से सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ।

उत्तरपुराणमें उपर्युक्त मान्यता दिखलाई पड़ती है । उसमें बतलाया गया है—

अममन्दरशैलस्य सानुस्थानविभूषणो ।
वने मनोहरोद्याने पल्यङ्कासनमाश्रितः ॥
मासे भाद्रपदे ज्योत्स्नाचतुर्दश्यापराह्णके ।
विशाखायां ययौ मुक्तिं चतुर्णवतिसंयतैः ॥
परिनिर्वाणकल्याणपूजाप्रान्ते महोत्सवैः ।
अवनिदपत ते देवं देवाः सेवाविचक्षणाः ॥

—उत्तरपुराण पर्व ५८, श्लोक ५२-५४

अर्थ—जब भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी आयुमें एक मास अवशेष रह गया तब योग निरोधकर रजतमालिका नामक नदीके किनारेकी भूमि पर वर्तमान मन्दरगिरिकी शिखरको सुशोभित करनेवाले मनोहरोद्यानमें पर्यङ्कासनसे स्थित हुए तथा भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीके दिन अपराह्नके समय विशाखा नक्षत्रमें चौरानव मुनियोंके साथ मुक्तिको प्राप्त हुए । सेवा करनेमें अत्यन्त निपुण देवोंमें निर्वाणकल्याणककी पूजाके उपरान्त बड़े उत्सवके साथ भगवान्की वन्दना की ।

यद्यपि प्राचीनताकी दृष्टिसे वासुपूज्य स्वामीका निर्वाणोत्सव फाल्गुन कृष्ण पञ्चमीको ही मनाया जाना चाहिए ; किन्तु ज्योतिषशास्त्रकी गणनाके अनुसार फाल्गुन कृष्णा पञ्चमीको अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति नहीं धटित

२—तिलोपपण्णत्ती अधिकार ४, गाथा ११९६ ।

—निर्णयसिन्धु पृ० ९४ ।

होती है । क्योंकि यह नियम है कि प्रत्येक महीनेकी पूर्णमासीको उस महीनेका नक्षत्र अवश्य आ जाता है । पूर्णिमाओंके दिन पड़नेवाले नक्षत्रोंके नामोंके आधारपर महीनोंका नामकरण किया गया है । जैसे चैत्र महीनेकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र पड़नेसे यह मास चैत्र कहलाया; अगली पूर्णिमाको विशाखा नक्षत्र पड़नेसे अगला मास वैशाख कहलाया, इससे अगले महीनेकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र पड़नेसे वह अगला मास ज्येष्ठ हुआ । इसी प्रकार आगेके महीनोंका नाम भी पूर्णमासियोंके नक्षत्रोंके आधारपर रखा गया है । इस स्थितिके आधारपर विचार करनेसे अग्रात होता है कि फाल्गुन पूर्णिमाको पूर्वाफाल्गुनीका अन्त और उत्तराफाल्गुनी का आरम्भ होना चाहिए । अश्विनी नक्षत्रकी स्थिति फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको आती है । अतः नक्षत्र और तिथिका समन्वय फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीको हो जाता है । इस प्रकाशमें हम इस निष्कर्षपर भी पहुँचते हैं कि ‘फगुणबहुले’ के स्थानपर ‘फगुणसुक्के’ पाठ होना चाहिए, ‘सुक्के’ के स्थानपर ‘बहुले’ पाठ भ्रमसे रखा गया है ।

अब उत्तरपुराणकी मान्यतापर विचार किया जाता है । उत्तरपुराणमें भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको विशाखा नक्षत्रके रहते हुए वासुपूज्य स्वामीका निर्वाण बतलाया गया है । ज्योतिषकी गणनानुसार विशाखा नक्षत्र भाद्रपद मासमें चतुर्दशीके दिन कभी नहीं पड़ सकता है । यह भाद्रपदमें सर्वदा शुक्ल पक्षकी पञ्चमी या षष्ठीको पड़ेगा । क्योंकि इस महीनेकी पूर्णिमा पूर्वाभाद्रपद या उत्तराभाद्रपदमें होगी । चतुर्दशीके दिन शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदमेंसे कोई भी नक्षत्र रह सकता है । सन्ध्या समय तो पूर्वाभाद्रपदकी स्थिति आ ही जाती है । अतः विशाखा नक्षत्र चतुर्दशीको कभी नहीं पड़ा होगा । उत्तरपुराणकी अन्य तिथियोंका मेल भी नक्षत्रोंके साथ नहीं बैठता है । तिलोपपण्णत्तीके प्रायः सभी नक्षत्र तिथियोंसे मिल जाते हैं । एकाध स्थलपर अशुद्ध पाठ आ जानेसे तिथि-नक्षत्रोंमें समन्वय नहीं हो पाता है, पर शुद्ध पाठ रख देनेसे समन्वय आ जाता है । अतः उत्तरपुराणकी मान्यता अशुद्ध मालूम पड़ती है । अथवा उत्तरपुराणके

पाठमें 'विशाखायां' के स्थानपर 'पूर्वाषाढा' पाठ रखा जाय तो यह तिथि शुद्ध मानी जा सकती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वर्तमानकालमें समाजमें उत्तर-पुराणकी मान्यताका ही प्रचार सर्वत्र क्यों दिखलायी पड़ता है ? तिलोय-पण्णत्तीकी प्रथाका लोप क्यों हो गया ? इसके कई कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि 'तिलोयपण्णत्ती' ग्रन्थ ही बहुत समयतक समाजके समक्ष नहीं आया। अमुद्रित रहनेके कारण सर्वसाधारण उससे अपरिचित ही रहे। दूसरी बात यह भी है कि तिलोयपण्णत्ती करणानुयोगका ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है, अतः इसका स्वाध्याय प्रायः बन्द ही रहा। उत्तरपुराण पौराणिक ग्रन्थ है, अतः इसके स्वाध्यायका प्रचार सभी प्रकारके व्यक्तियोंके बीच होता रहा। फलतः उत्तरपुराणकी मान्यता हिन्दीके कवियों, पाठकों तथा अन्य समस्त व्यक्तियोंतक फैल गई। जिसके फलस्वरूप आज समस्त निर्वाणोत्सव इसी ग्रन्थके आधारपर समाजमें प्रचलित हैं।

प्रचलित मान्यताके अनुसार इस निर्वाणोत्सवको चतुर्दशीकी सन्ध्याके समयमें सम्पन्न करना चाहिए। जिस दिन अपराह्नकालमें चतुर्दशी मिले, उसी दिन उत्सवको सम्पन्न किया जाय।

मेरा अपना अभिमत यह है कि समस्त निर्वाणोत्सव 'तिलोयपण्णत्ति' के अनुसार सम्पन्न करने चाहिए। जैनान्नायमें उत्तर ग्रन्थोंकी अपेक्षा पूर्व ग्रन्थोंकी अधिक प्रामाणिक माना गया है। यदि कोई उत्तराचार्योंका विषय पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नता रखता है, तो उस स्थितिमें पूर्वग्रन्थ ही प्रामाणिक है। उसीकी मान्यताके अनुसार कार्य सम्पन्न होना चाहिए। अतएव वासुपूज्य स्वामीका निर्वाण फाल्गुन शुक्ल पञ्चमीको सम्पन्न करना आगम सम्मत है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके निर्वाणलभके दिन ही दीप-मालिका उत्सव मनाया जाता है। भगवान् महावीरका निर्वाण कार्तिक-

दीपावली या महा-
वीर-निर्वाणोत्सव
चरित्र, दशभक्ति, कन्नड वर्द्धमानपुराण आदि ग्रन्थोंसे उपर्युक्त कथनकी सिद्धि होती है। यथा—

कस्मिन्किण्डे चौदसिपञ्चसे सादिगमणकञ्चसे ।

पावाण्णयरीण्ण पुक्को वीरेसरो सिद्धो ॥

—तिलोयपण्णत्ती अ० ५, गा० १२०८

पच्छापावाणयरे कस्मिन्मासस्स किण्ड-चौदसिण्ण ।

रसीण्ण सेसरयं छेत्तुं महावीरणिच्चाओ ॥

—जयधवलार्दीका

हण्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निरात्यये ।

स्वातिथयोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः ॥

—उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लो० ५१०-५११

स्थित्वेन्द्रावपि कार्तिकासितचतुर्दश्यां निशान्ते स्थिते

स्वातौ सन्मतिराससाद भगवान् सिद्धिं प्रसिद्धिश्चियम् ॥

—असाकवि रचित वर्द्धमान च० पु० ३८४

कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातादृक्षे निहत्स्य कर्मरजः ।

अवशेषं संप्रापद् व्यज्रामरमक्षयं सौख्यम् ॥

—निर्वाणभक्ति श्लो० १७

अतएव सिद्ध है कि भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाण कार्तिककृष्ण चतुर्दशीकी रातके अवसानमें और अमावस्याके प्रातःकालमें हुआ है। यहाँ निर्वाणका नक्षत्र स्वाति बताया गया है। ज्योतिषकी गणनानुसार स्वातिनक्षत्र चतुर्दशीकी रात्रिमें आता है। यह नक्षत्र उदयमें अमावस्याको और अस्तोपरान्त चतुर्दशीको नियमतः आरम्भ हो जाता है। भगवान्का निर्वाणोत्सव दो चतुर्दशियोंके होनेपर जो चतुर्दशी उदयकालमें ५ घटी प्रमाणसे कम होगी उसके प्रातः अर्थात् पूर्व चतुर्दशीकी रात्रिके अवसानमें

दापावलीके दिन बहियोंको बदला जाता है तथा लक्ष्मीकी पूजा भी करनेकी प्रथा हमारे समाजमें वर्तमान है। अतः यहाँ वही और लक्ष्मी पूजाके समयकी व्यवस्थापर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। लक्ष्मी पूजाका समय प्रदोषकाल माना गया है। बताया गया है—“प्रदोष-समये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात्,” “दीपाप् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि;” “प्रदोषार्धरात्र्यव्यापिनी सुख्या;,” “प्रदोषस्य सुख्य-त्वादध्वरात्रेऽनुष्ठेयाभावाच्च”। अर्थात् लक्ष्मीपूजा प्रदोष समयमें शुभ-लभनमें करनी चाहिए। प्रदोष शब्दका अर्थ लक्ष्मीपूजाके लिए रात्रिके प्रथम प्रहरके उपरान्त द्वितीय प्रहर पर्यन्त समय ग्रहण किया गया है। यदि इस दिन भद्रा हो तो भद्राके समयके उपरान्त तृतीय या चतुर्थ प्रहरमें भी पूजा की जा सकती है। लक्ष्मीपूजाका समय प्रत्येक वर्ष पुष्यकृ निर्वारित करना होगा। साधारणतया यह पूजा ९ बजेके उपरान्त और दो बजेके बीचमें होती है। इसके लिए धनु लग्न सर्वोत्तम, कुम्भ माघमा और मीन निष्ठ है। उत्तम लग्न किसी कारणसे न मिले तो उत्तम लग्नका नवांश अवश्य लेना चाहिए।

करे । गद्दीपर बह्दी-खाता, दावात-कलम, नवान वस्त्र, रुपयोंकी धौली आदि रखे । प्रथम मंगलाष्टक पढ़कर रखी हुई सभी वस्तुओंपर पुष्प अर्पण करे । अनन्तर

ॐ श्री ०
॥ श्री श्री ०
ॐ श्री श्री श्री ०
ॐ श्री श्री श्री श्री ०

श्री वरदभानाय नमः

स्व

थैलीमें स्वास्तिक बनानेका नियम

सब बाह्योंपर यह लिखकर पान, लड्डू, सुपाड़ी, पीली सरसों, दुर्वा और हल्दी रखे। पढ़वात् “श्री वर्द्धमानाय नमः”, श्री महालक्ष्म्यै नमः, ऋद्धिः सिद्धिर्भवतुतराम्” केवलज्ञानलक्ष्मीदेव्यै नमः, नमः सर्वासिद्धिर्भवतु, कामांगण्योत्सवाः सन्तु, पुण्यं वर्द्धताम्, धनं वर्द्धताम्” पढ़कर बही-खातोंपर अर्घ चढ़ावे। अनन्तर मंगल कलशवाली चौकीपर रुपयोंकी थैलीको रखकर उसमें “श्रीलालायतनं महेशकुलप्रहं कीर्तिप्रमोदास्पदं वान्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत् । सः स्यात्सर्वमहोत्सवकमवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं प्रातः पश्यति कल्पपादपदलब्धायं जिना-द्विप्रद्वयम्” ॥ श्लोक पढ़कर साधिया बनावे। पढ़वात् लक्ष्मीपूजन करे और लक्ष्मीस्तोत्र, पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करे।

१. यह पूजन हमारे पास है।

भगवान् ऋषभदेव आदि तीर्थकर हैं। इस कालके वह सर्वप्रथम तीर्थप्रवक्ता हैं। उनके निर्वाण-दिवसका उत्सव माघकृष्ण चतुर्दशी : सम्पन्न करना अत्यावश्यक है। भगवान् ऋषभनिर्वाण दिवसोत्सव ऋषभदेव स्वामीके निर्वाण-दिवसके सम्बन्धमें तिलोपपण्णत्तीमें बताया गया है।

माघस्त किण्व चोदसि पुण्यपुण्यजन्मणस्त्वते ।
अट्टावयस्मि उरहो अजुदेण समं गओ णोमि ॥

—अधि० ४, गाथा ११८५

अर्थ—ऋषभनाथ तीर्थकर माघकृष्ण चतुर्दशीके पूर्वाह्नकालमें अपने जन्म नक्षत्रके रहते—उत्तराषाढ़ाके वर्तमान रहते कैलाश पर्वतसे दश हजार मुनियोंके साथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

आदिपुराणमें भी लगभग इसी प्रकारका निम्न उल्लेख उपलब्ध है—

माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान् भास्कोदये ।

सुहृत्तेऽभिजिति प्राप्तपत्न्यङ्को मुनिभिः समम् ॥

प्रातिद्विमुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रुद्रवान् ।

योगजितयमन्त्रेन ध्यानेन धातिकर्मणाम् ॥

—आदि० पर्व ४७, श्लो० ३३८-३९

अर्थ—माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय शुभ सुहृत् और अभिजित नक्षत्रमें भगवान् ऋषभदेव स्वामी पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर अनेक मुनियोंके साथ पर्येकासनसे विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति नामके शुक्ल ध्यानसे तीनों योगोंका निरोध किया और अघातिया कर्मोंको नष्ट कर निर्वाण प्राप्त किया।

तिलोपपण्णत्ती और आदिपुराण दोनों ही भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी तिथि एक मानते हैं, निर्वाणका समय भी दोनोंका एक ही है। केवल नक्षत्रोंमें अन्तर है। तिलोपपण्णत्तीकारने भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जन्म नक्षत्रको ही निर्वाण नक्षत्र माना है, किन्तु आदिपुराणकार

जिनसेन स्वामी अभिजित नक्षत्रको भगवान्का निर्वाण नक्षत्र मानते हैं। अभिजित नक्षत्रकी ज्योतिषमें भोगात्मक रूपमें पुण्य, स्थिति नहीं मानी गयी है; क्योंकि अभिजित नक्षत्र उत्तराषाढ़ाकी अन्तिम १५ घटियाँ तथा श्रवणकी आदिकी ४ घटियाँ, इस प्रकार कुल १९ घटी प्रमाण होता है। तिलोपपण्णत्तीमें उत्तराषाढ़ाका जिक्र है, अतः यहाँ स्पष्ट है कि भगवान्का निर्वाण उत्तराषाढ़ाके अन्तिम चरणमें हुआ है। यही अन्तिम चरण अभिजितमें आता है। अन्तिम चरणको शुभ माना जाता है तथा श्रवणका प्रथम चरण भी शुभ माना गया है। इसी शुभत्वके कारण उत्तराषाढ़ाके चतुर्थ चरण और श्रवणके प्रथम चरणकी संज्ञा अभिजित की गयी है। अतएव दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है। ज्योतिषकी गणनासे भी माघ-कृष्ण चतुर्दशीको उदयकालमें उत्तराषाढ़ाकी समाप्ति आती है। अतः माघी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका आना निश्चित है, मघा उत्तराषाढ़ासे १६ वीं नक्षत्र पड़ता है, माघ कृष्ण चतुर्दशीसे पूर्णिमाकी १७ वीं संख्या है, अतः गणनासे यह सिद्ध है कि माघ कृष्ण चतुर्दशीको उत्तराषाढ़ा नक्षत्र ही है।

निर्वाण-तिथियोंके लिए नियामक नक्षत्र है, अतएव तिथियोंकी घटा-बढ़ीमें नक्षत्रोंके अनुसार ही तिथिकी व्यवस्था करनी चाहिए। जिस दिन चतुर्दशीके प्रातःकालमें उत्तराषाढ़ाका चतुर्थ निर्वाणोत्सवमें चरण वर्तमान रहेगा, उसी दिन भगवान्का निर्वाण धार्मिक विधेय णोत्सव मनाया जायगा। प्रातःकाल सूर्योदयके समय नित्य पूजनके उपरान्त भगवान् ऋषभदेव स्वामीकी पूजा करे। पश्चात् सिद्धभक्ति, श्रुत-भक्ति, चारित्र-भक्ति, योगि-भक्ति, निर्वाण-भक्ति या निर्वाण काण्ड पढ़कर पूजन समाप्त करे। प्रभावनाके लिए हवन क्रियाका आयोजन भी किया जा सकता है। सन्ध्या समय समाका आयोजन कर भगवान् ऋषभदेव स्वामीके जीवन दर्शन आदि पर प्रकाश डालना चाहिए। जैन-धर्मकी प्राचीनता भगवान् ऋषभदेवके चरित्रसे स्पष्ट सिद्ध होती है।

भगवान् महावीर स्वामीका जन्मदिन महावीर जयन्तीके नामसे प्रसिद्ध है। भगवानका जन्म चैत्रशुक्ल त्रयोदशीको चैत्रशुक्ल त्रयोदशी : उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुआ था। तिलोत्पलपत्नीमें महावीर जयन्ती

भगवानके जन्मके सम्बन्धमें बताया गया है—

सिद्धत्थरायपियकाणिहिं पयस्मिभकुंडले वीरो ।

उत्तरफल्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसोए उप्पणो ॥

—ति० अ० ४, गाथा ५४९

अर्थ—भगवान् महावीर कुण्डलपुर्से पिता सिद्धार्थ और माता प्रिय-कारिणीसे चैत्रशुक्ल त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

उत्तरपुष्यपणमें भगवानके जन्मदिनका वर्णन निम्नप्रकार है—

नवमे मासि सम्पूर्णं चैत्रे मासि त्रयोदशी ।

दिने शुक्ले शुभे योगे सत्ययमणि नामनि ।

—पर्व ४७ श्लो० २६२

अर्थ—नौवाँ मास पूर्ण होने पर चैत्रशुक्ल त्रयोदशीके दिन अयमा-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, शुभ योगमें भगवान् महावीरका जन्म हुआ।

निर्वाणभक्तिके निम्न श्लोकोंसे भगवानके जन्मकाल पर भी सुन्दर प्रकाश पड़ता है—

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम् ।

जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥

हस्ताश्रिते शशांके चैत्रज्योस्ते चतुर्दशीदिवसे ।

पूर्वाह्णे रत्नवटीविबुधेन्द्राश्चक्ररभिषेकम् ॥

—नि. भ. श्लो. ५-६

अर्थ—भगवान् महावीरका जन्म चैत्रशुक्ल त्रयोदशीके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शुभलग्ने, जब शुभग्रह उच्च राशिमें थे; हुआ था। देवोंने भगवानका जन्मकल्याणक चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर था, पूर्वाह्न में सम्पन्न किया।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि भगवानका जन्म मध्यरात्रिके उपरान्त जब कि

शुभलग्न मकर विद्यमान थी, लग्नमें उच्चका मंगल स्थित था, गुरु केन्द्रका उच्चराशिस्थ था। अतएव महावीर जयन्तीके लिए वही त्रयो-दशी ग्राह्य होगी, जो उदयकालमें विद्यमान हो। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि उसे उदयकालमें छः घटी या इससे अधिक होना चाहिए।

भगवानका जन्मकाल उदया तिथिकी अपेक्षा ही आचार्योंने वर्णित किया है। अतः उदयकालमें एकाध घटी रहने पर भी जयन्तीके लिए तिथिका ग्रहण कर लेना चाहिए। वस्तुतः भगवानका जन्म तो रातमें आधी रातके कुछ ही उपरान्त हुआ है। इसी कारण देवोंने उनका जन्मकल्याणक चतु-दशीको सम्पन्न किया है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके चतुर्थ चरणमें भग-वानका जन्म हुआ है और उनका अभिषेक हस्त नक्षत्रके द्वितीय चरणमें सम्पन्न किया गया है। अतः जयन्तीके लिए ग्राह्य तो वही त्रयोदशी है, जिसमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़े। यह स्थिति ज्योतिषकी गणनानुसार प्रायः उदया त्रयोदशीको आ जाती है, अतएव यहाँ व्रत तिथिके अनुसार इसे छः घटीसे अल्प होने पर द्वादशीको त्रयोदशी नहीं मान लेना चाहिए; अपि-तु जिस दिन उदयकालमें त्रयोदशी हो, उसी दिन जयन्ती सम्पन्न करना चाहिए।

वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया कहलाती है। भगवान् ऋषभ-देवने एक वर्ष और कुछ दिनोंके उपरान्त हस्तिनापुरके राजा श्रेयान्तके अक्षय तृतीया आहार ग्रहणके कारण उनकी भोजनशालाका भोजन अक्षय वन गया था, इसीलिए यह तिथि अक्षय तृतीया कहलाती है। भगवानका यह पारणा दिवस हस्तना प्रसिद्ध हुआ है कि लोकविजय यन्त्र जैसे प्राचीन ग्रन्थका गणित इसी दिनको आदि दिन मानकर किया गया है। बताया गया है—

सिन्धिरिसहेसर सामिय पारणपारब्भ गणिपयुद्धवंकं ।

दिस इयरोहिं ठवियं जंतं देवाण सरस्मिणं ॥

अर्थ—यह वक्ष्यमाण यन्त्र, जो कि भगवान् ऋषभदेव स्वामीके

पारणा समयसे—अक्षय्य तृतीयाके दिन उनकी प्रथम पारणा ग्रहणकी वेलासे गणित करके दिशा-विदिशाओंमें स्थापित किये हुए शुक्रांकी लिये हुए है, यह देवोंका सार है—दैवाधीन घटनाओंका सूचक है।

यह तिथि भी उदया प्रास है। जिस दिन उदयकालमें उक्त तृतीया हो, उसी दिन अक्षय्य तृतीयाका उत्सव सम्पन्न करना चाहिए। तन देना, पूजा करना, अतिथिसत्कार करना आदि विधेय कार्योंको इस तिथिमें करना चाहिए।

श्रुतपञ्चमी पर्व अत्यन्त प्रसिद्ध पर्व है। यह पर्व ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको सम्पन्न किया जाता है। इस दिन पट्खण्डागमका प्रणयन समाप्त हुआ था। चतुर्विध संवने मिलकर आगमकी पूजा की थी

श्रुतपञ्चमी

तथा उत्सव सम्पन्न किया था। बताया गया है कि

सौराष्ट्र देशके गिरिनारपर्वतकी चन्द्रगुफामें आचार्य धरसेनने आपाद शुक्ला एकादशीके प्रभातमें भूतबलि और पुण्यदत्त नामक दो मुनीन्द्रोंको आगम साहित्य पढ़ाया था। गुरुदेवके दिवंगत होनेपर उस शिष्य युगलने कर्म साहित्यपर पट्खण्डागम सूत्रकी रचना आरम्भ की। बीचमें ही पुण्यदत्त आचार्यके भी किर्त्तों कारणसे पृथक् हो जानेपर भूतबलिने ही अवशेष ग्रन्थको समाप्त किया। यह ग्रन्थराज ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको पूर्ण हुआ तथा इसी दिन इसकी अर्चना की गई। श्रुतावतार कथामें आचार्य इन्द्रनिन्दने बतलाया है—

ज्येष्ठसितपञ्चम्यां चातुर्वर्ण्यसंघसमवेतः ।

तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम् ॥

श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं त्रिथिरियं परमाप ।

अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः ॥

—श्रुतावतार स्तो० १४३-१४४

अर्थात्—ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीको चतुर्विध संवने बड़े वैभव और उत्साहके साथ जिनवाणी माताकी पूजा की थी। तभीसे यह पर्व श्रुत-

पञ्चमी नामसे प्रख्यात हो गया है। आज भी जैन समाजमें इस दिन श्रुतपूजा की जाती है।

इस तिथिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें इतना ही जान लेना आवश्यक है कि जिस दिन उदयकालमें छः घटी प्रमाण यह तिथि मिलेगी, उसी दिन श्रुतपञ्चमी पर्व सम्पन्न किया जायगा। यदि उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथि न मिले तो उससे पूर्व दिन ही पञ्चमी मान ली जायगी। मात्र उदया तिथिको श्रुत पञ्चमी नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि चतुर्विध संव पूजा या व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथिको, तबतक ग्राह्य मानता है, जबतक अपवाद रूप विशेष विधान नहीं होता। इस दिन श्रुत पूजाके साथ सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करें। विशेष विधान करना हो तो निम्न मन्त्रकी १०८ आहुतियों देनी चाहिए।

ओं अहंन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्र-
प्रज्वलिते सरस्वति अस्माकं पापं हन हन दह दह कां कौं कौं कः
क्षीरघरघवल्ल अमृतसम्भवे यं वं हं हं हं फट् स्वाहा ।

व्रत और पर्व विचार

जीवन शोधनके लिए व्रतोंकी आवश्यकता है। समास्त श्रावकाचार और मुन्याचार व्रताचरण रूप ही है। तत्परचरण भी व्रतान्वर्तित ही है। प्रारम्भमें उपवास तत्परचरणको सम्पन्न करनेके लिए अनेक प्रकारके व्रतोंका विधान किया गया है। व्रत शब्दकी परिभाषा सागारधर्माभ्युत्तमं निम्न प्रकार बतलायी गयी है।

संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभकर्मणः ।

निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभकर्मणि ॥ सागार० अध्याय २

अर्थात्—सेवन करने योग्य विषयोंमें संकल्पपूर्वक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मोंसे संकल्पपूर्वक विरक्त होना अथवा पात्रदानादिक शुभ कर्मोंमें संकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

रत्नत्रय, दशलक्षण, अष्टाह्निका, षोडशकारण, मुक्तावली, पुष्पा-

जबली आदि व्रतोंके सम्पन्न करनेसे आत्मनिर्मलताके साथ महान् पुण्य का बन्ध होता है। आचार्य वसुनन्दीने अपने श्रावकाचारमें व्रतोंके फलों का निरूपण करते हुए लिखा है—

फलमेयस्ते मोक्षेण देव-मणुष्यसु इन्द्रियजसुखं ।
पञ्चा पावद् मोक्षं धुणिज्जभागो सुतिं देहि ॥

रत्नत्रय, षोडशकारण, जिनिगुण सम्पत्ति, नन्दीश्वरपंक्ति, विमानपंक्ति आदि व्रतोंके पालन करनेके फलसे यह जीव देव और मनुष्योंमें इन्द्रिय जनित सुख भोगकर, पञ्चात् देवद्वीपसे स्तुति किया जाता हुआ मोक्षपद प्राप्त करता है।

व्रताचरणकी आवश्यकतापर जोर देते हुए लिया गया है—

व्रतेन यो विना प्राणी पशुरेव न संशयः ।
योऽप्ययोर्यं न जानाति भेदस्तत्र कुतो भवेत् ॥

व्रत रहित प्राणी निस्सन्देह पशुके समान है। जिसे उचित-अनुचितका ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशुमें क्या भेद है? अतः व्रतविधान करना प्रत्येक नर-नारीके लिए आवश्यक है। व्रतोंके भेद-भवेद शास्त्रकारोंने व्रतोंके प्रधान नौ भेद बतलाये हैं।

उनके नाम इसी ग्रन्थमें निम्न प्रकार हैं—

सावधानि, निरवधानि, दैवसिकानि, नैशिकानि, मासावधिकानि, वात्सरकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमाधानि, इति नवधा भवन्ति ।
अर्थात्—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ ये नौ भेद व्रतोंके हैं। निरवधि व्रतोंमें कवलचन्द्रायण, तपोज्ज्वलि, जिनिमुखावलेकन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली आदि हैं। सावधि व्रत दो प्रकारके होते हैं—तिथिकी अवधिसे किये जाने-वाले सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वाविंशतिभावना, सम्पत्त्व-पञ्चविंशतिभावना और णमोकार पञ्चविंशत्भावना आदि हैं। दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले व्रतोंमें दुःखहरणव्रत, धर्मचक्रव्रत, जिनिगुणसम्पत्ति,

सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुतिकल्याणक, चन्द्रकल्याणक आदि हैं। दैवसिकव्रतोंमें दिनकी प्रधानता रहती है, पर्वतिथियों तथा दशत्यश्रय रत्नत्रय आदि दैवसिकव्रत हैं। आकाशपञ्चमी जैसे व्रत नैशिक माने जाते हैं। जिनि व्रतोंकी अवधि महानेकी होती है, वे मासिक कहे जाते हैं जैसे षोडशकारण, मेघमाला आदि मासिक हैं। जो व्रत किसी अभीष्टकामनाकी पूर्तिके लिए किये जाते हैं, वे काम्य और जो निष्काम रूपसे किये जाते हैं वे अकाम्य कहलाते हैं। काम्यव्रतोंमें संकटहरण, दुःखहरण, धनदकलश आदि व्रतोंकी गणना है। उत्तम व्रतोंमें सिंहनिष्क्रादित, माद्रवनादिदिनिक्रादित, सर्वतोभद्र आदि हैं। अकाम्योंमें कर्मचर, कर्मनिर्जरा, मेरुपंक्ति आदि हैं।

व्रतोंकी संख्या आरम्भमें बहुत थोड़ी थी। पौराणिक साहित्यमें व्रतोंकी संख्याका विकास स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। पद्मपुराण और आदि-पुराणमें श्रावकाचार और श्रावकोंके व्रतोंका उल्लेख, व्रतोंका विकास दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडशकारण और अष्टाहिका व्रतोंके पालनके रूपमें ही हुआ है। श्रावकाचारोंमें रत्नकरणश्रावकाचार, अमितगतिश्रावकाचार, सागारधर्माभ्युत, त्वाप्तिकारिकेयानुप्रेक्षा, गुण-भूषणश्रावकाचार और लाटी संहितामें मूलगुण, बारह व्रत, न्यारह प्रातमा और सल्लेखनाका ही निरूपण है, व्रतोंका नहीं। पुराणोंमें सबसे प्रथम हरिवंशपुराणमें और श्रावकाचारोंमें वसुनन्दिश्रावकाचारोंमें कुछ प्रमुख व्रतोंकी विवेचना की गयी है। वसुनन्दिश्रावकाचारमें पञ्चमीव्रत, रोहिणी-व्रत, अश्विनीव्रत, सौख्यसम्पत्तिव्रत, नन्दीश्वरपंक्ति व्रत और विमानपंक्ति व्रत इन छः व्रतोंका उल्लेख मिलता है। हरिवंशपुराणमें सुप्रतिष्ठके नानाविध उपवासोंका वर्णन करते हुए सर्वतोभद्र, वसन्तभद्र, महासर्वतोभद्र, रत्नावली, उत्तम-मध्यम-जघन्य सिंहनिष्क्रादित आदि महोपवासोंका वर्णन किया है। धवलटाटीकामें आचार्य वीरसेनने भी उपवासोंकी उग्रताका विवेचन किया है। हरिवंशपुराणमें बतलाया गया है—

तपोविधिविशेषैः स सर्वतोभद्रपूर्वकैः ।
वपुर्वैभूषणञ्चक्रे सिंहनिष्क्रादितोत्तरैः ॥

श्रवणादपि पापघ्नानुपवासमहविधीनः ।
 शृणु यादव ! ते वच्मि समाधाय मनःक्षणम् ॥
 पुनरदिष्टपूजासु पञ्चान्तेषु यथाक्रमम् ।
 अन्तयोः कृतयोरादौ दोषसंगसमुद्भवे ॥
 कल्पितदचतुरक्षोऽयं प्रस्तारः पञ्चमङ्गकः ।
 सर्वतोऽप्युपवासाश्च गणयाः पञ्चदशाऽत्र हि ॥
 पञ्चाभिर्गुणितास्ते स्युः संख्यया पञ्चसप्ततिः ।
 ताडिताः पञ्चभिः पञ्च पारणाः पञ्चविंशतिः ॥
 सर्वतोऽभद्रनामायमुपवासाविधिः कृतः ।
 विद्यते सर्वतोऽभद्रं निर्वाणान्मुद्योदयम् ॥
 पञ्चादिषु नवान्तेषु सद्गोस्तरचमन्तकः ।
 विधिस्तत्रोपवासास्तु पञ्चविंशत्समं परम् ॥

इससे सिद्ध है कि उपवासोंके सुनने और उनके अनुष्ठान करने मात्रसे पापोंका वृंश होता है, आत्मा में पुण्यका संचय होता है । उपवास कर्म, निर्जराके भी हेतु है । वीरसेनाचार्यने कर्मनिर्जराके लिए किये गये उग्र-तपश्चरणमें ही उपवासोंका वर्णन किया है । अतः संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओंके आप्रग्रन्थोंमें थोड़ेसे ही व्रतोंका उल्लेख मिलता है । आराधना कथाकोश; हरिपेणकथाकोशसे भी महत्वशाली रत्नत्रय, पोद्दशकारण, अष्टाह्निका, दशलक्षण, पुण्याह्निक, जैसे प्रमुख व्रतोंको सम्पन्न करके पुण्यार्जन करनेवाले व्यक्तियोंकी कथाएँ ही उपलब्ध हैं । भट्टारकों-द्वारा विरचित व्रतोद्यापनोमें दशलक्षण, रत्नत्रय, पोद्दशकारण, अष्टाह्निका, पुण्याह्निक, अनन्तव्रत, रविवारव्रत, नवग्रहव्रत, कवलचान्द्रायण, चतुर्दशी, सुगन्धदशमी, कर्पपञ्चमी, कर्मचूर, चन्दनपथी, मुकुटसतमी, निद्रालस अष्टमी, रोट तीज, रोहिणी प्रभृति व्रतोंकी उद्यापन विधि बतलायी गयी है । इन समस्त उद्यापनोंका रचनाकाल चौदहवीं शतीसे सोलहवीं शती तकका है । कतिपय व्रतोंका उद्यापन-विधान इंदरसे प्रकाशित हुआ है । श्री जैनसिद्धान्तभवन आराके हस्तलिखित गुटकेमें लगभग २४-२५ व्रतो-

द्यापन संग्रहीत हैं । व्रतविधिके लिए संस्कृत और प्राकृत साहित्यमें कोई एक ग्रन्थ नहीं है, जिसके आधारपर व्रतोंके स्वरूप, उनकी विधेय विधियों, उनके अनुष्ठान, जाप मन्त्र, पारणामें ग्रहण की जानेवाली वस्तुका परि-ज्ञान किया जा सके । यह एक कमी थी । यद्यपि छुटकर रूपमें पुष्पां, कथाग्रन्थों, श्रावकाचार्यों, उद्यापनों आदिमें व्रतोंके सन्तन्त्रमें पूरी सामग्री वर्तमान है, तो भी एक प्रासाणिक ग्रन्थकी कमी थी । हिन्दीमें किसन सिंहने अपने क्रियाकोशमें व्रतोंका सविस्तार वर्णन कर बहुते अर्थोंमें यह कमी पूरी की है । सन् १९५२ में 'जैन-व्रत-विधान-संग्रह' श्री पं० बारे-लालजी द्वारा संकलित प्रकाशित हुआ है । इन सभी ग्रन्थोंमें विधि और व्रत व्यवस्थाका उतना सांगोपांग विवेचन नहीं है जितना चाहिए । विधेय विधियोंके ऊपर निर्णयात्मक दृष्टिसे प्रकाश डालना अत्यावश्यक है । प्रस्तुत ग्रन्थमें विधियोंकी व्यवस्थापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है ।

नवीन वर्षका आरम्भ वीरशासनजयन्तीसे माना जाता है ; अतः श्रावण माससे व्रतोंकी गणना करनी चाहिए । श्रावणमासमें वीरशासन-जयन्तीव्रत, अश्वयनिधि, गरुडपञ्चमी, पथीव्रत, मोक्षसतमी, अश्वयफल-दशमी, द्वादशीव्रत और रक्षावन्धन आते हैं । वीरशासनजयन्तीकी व्यव-स्थाके सम्बन्धमें विचार किया जा चुका है । इस व्रतको उसी दिन सम्पन्न करना होता है । इस दिन उपवास किया जाता है तथा पूजाके अनन्तर 'ओं श्रीमहावीरस्वामिने नमः' इस मन्त्रका जाप तीनों काल किया जाता है ।

अश्वयनिधि व्रत श्रावणशुक्ला नवमीको पूजा-स्वाध्यायके पश्चात् धारण करे । इन दिन एकाशनकर संयमका अभ्यास करे । श्रावणशुक्ला दशमी, जिस दिन उदयकालमें छः घटी हो उस दिन उपवास करे । दिनको धर्मध्यानपूर्वक विताकर, रात्रि जागरण करे । श्रावणशुक्ला एकादशीसे भाद्रपद कृष्णनवमी तक एकाशन करे । अनन्तर दशमीका उपवास कर, पूर्वोक्त रीतिसे धर्मध्यानपूर्वक रात्रि विताकर एकादशीको एकाशन करे ।

द्वादशीसे दोनों समय भोजन करे। यह व्रत दशवर्षतक किया जाता है। इसमें त्रिकाल णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रत्येक व्रतकी धारणा और विसर्जनके समय इसी ग्रन्थमें वर्णित अष्टाहिकाव्रतमें बतलाये गये संकल्प मन्त्रोंको बतलायी गयी विधिके अनुसार करना चाहिए।

अक्षयफल दशमी व्रत भी श्रावणशुक्ल नवमीको एकाशन कर धारण करना चाहिए और शुक्ल दशमीका उपवास कर धर्मध्यानपूर्वक दिन व्यतीतकर रात्रि-जागरण करना चाहिए। दिनमें तीनों काल 'ओं ह्रीं शृषभजिनाय नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। दस वर्षतक इस व्रतका पालन कर उद्यापन किया जाता है। व्रतकी तिथि छःघटी प्रमाण उदयमें होनेपर ही ग्रहण की जाती है, अन्यथा पहले दिन व्रत सम्पन्न किया जाता है।

मोक्षसप्तमी व्रत श्रावणशुक्ल षष्ठीके दिन ग्रहण कर एकाशन किया जाता है। सप्तमीको धर्मध्यानपूर्वक उपवास करे। अष्टमीको पारणा करे। यह व्रत सातवर्षोंमें पूर्ण होता है। इसमें 'ओं ह्रीं पार्श्वनाथाय नमः' मन्त्रका त्रिकाल जाप करना चाहिए। व्रतके लिए तिथि यहाँ भी छःघटी प्रमाण ही ग्रहण की गयी है।

गरुडपञ्चमी व्रत श्रावणशुक्ल चतुर्थीको एकाशन पूर्वक धारणकर पञ्चमीका उपवास विधिपूर्वक करना चाहिए। पाँच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। त्रिकाल 'ओं ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः' मन्त्रका जाप करे।

मनोकामाना सिद्ध करनेके लिए श्रावणशुक्ल षष्ठीका व्रत किया जाता है। यह व्रत पञ्चमीको एकाशनपूर्वक धारण किया जाता है। धारण करनेके दिन जिनालयमें आकर नित्य नियम पूजा करनेके उपरान्त भगवान् नेमिनाथकी पूजाके साथ भक्तामर और कल्याणमन्दिर स्तोत्रोंका पाठ करे। तथा इसी दिनसे 'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथाय नमः' इस मन्त्रका जाप करे। षष्ठीके दिन उपवास करे, पञ्चमीके समान पूजन-पाठ करे, धूप देकर भक्तामर स्तोत्रका पाठ करे और त्रिकाल 'ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथाय

नमः' इस मन्त्रका जाप करे। सप्तमीके दिन पारणा करे। पारणामें केवल एक ही अनाज रहना चाहिए। छः वर्षतक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। तिथिका मान छःघटी ही लेना चाहिए।

रक्षाभन्धनकी व्यवस्था पर पूर्वमें प्रकाश बाला जा चुका है। इस दिन उपवास करना तथा 'ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमाराय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

भाद्रपदमास अत्यन्त पवित्र है। इस महीनेमें सबसे अधिक व्रत आते हैं। बताया गया है कि इस महीनेमें दशलक्षण, षोडशक्राण, रत्नत्रय, पुष्पाञ्जलि, आकाशपञ्चमी, सुगन्धदशमी, अनन्तचतुर्दशी, श्रुतस्कन्धव्रत, निर्दोषसप्तमी, चन्दनषष्ठी, तीसचौथी, जिनमुखावलोक्कन, वसिष्ठाव्रत, निःशल्यअष्टमी, दुग्धरसी, धनदकलश, शीलसप्तमी, नन्दसप्तमी, कौञ्जी-वारस, लघुमुक्तावली, त्रिलोकतीज, श्रवणद्वादशी और मेघमाला व्रत सम्पन्न किये जाते हैं। इसी कारण महिलपुराणमें कहा गया है—

अहो भाद्रपदाख्योऽयं मासोऽनेकव्रताकरः।

धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥

अर्थात्—जिस प्रकार मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा माना जाता है, उसी प्रकार समस्त मासोंमें भाद्रपदमास श्रेष्ठ है; क्योंकि यह अनेक प्रकारके व्रतोंका स्थान स्वरूप है और धर्मका प्रधान कारण है।

इस वर्षका आरम्भ भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीसे होता है। पर्युषणका पर्वपूणकी व्यवस्था आरम्भ दिन सुष्टिका आदि दिन है। क्योंकि छठके कालके अन्तमें भरत और ऐरावतमें खण्ड प्रलय होता है। बताया गया है—

संवत्सणामणिखो गिरितसम्पुटुद्दि चुण्णणं करिय।

भममदि दिसंतं जीवा मरंति मुच्छंति छटंति ॥

छट्टमचरिमे हांति मरदादी सत्तसत्त दिवसवट्टी।

अदिसीदरवारविसयसगरीजभूमवारिसाधो।

तोहिं तो संसजणा पससंति विसनिगवसिदद्वमही ।
इविजोयणमेत्तमयो चुण्णीकिज्जदि हु कालवसा ॥

त्रिलोकसार गाथा ६४-६७

अर्थात्—छठवें कालके अन्तमें संवर्त नामक पवन पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदिको चूर्णकर समस्त दिशा और क्षेत्रमें भ्रमण करता है। इस पवनके कारण समस्त जीव मुर्छित हो जाते हैं। विजयावर्षकी गुफामें रखित ७२ ग्वालोकें अतिरिक्त समस्त प्राणियोंका संहार हो जाता है। इस कालके अन्तमें पवन, अत्यन्त शीत, क्षार रस, विष, कठोर अग्नि, धूलि और धुआकी वर्षा एक-एक सप्ताह तक होती है। इसके पश्चात् उत्सर्पणीकालका प्रवेश होता है। अर्थात् छठवें कालके अन्त होनेके ४९ दिन पश्चात् नवीन युगका आरम्भ होता है।

छठवें कालका अन्त आपादी पूर्णिमाको होता है क्योंकि नवीन युगका आरम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदाको अभिजित नक्षत्रके होनेपर होता है। अतः आपादी पूर्णिमाके अनन्तर श्रावणी प्रतिपदासे ४९ दिनोंकी गणना की तो इनकी समाप्ति भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको हुई। अतएव भाद्रपदशुक्ला पंचमी उत्सर्पण और अवसर्पणके आरम्भका दिन हुआ। उत्सर्पणी और अवसर्पणीके छोड़े कालों—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषम-दुःषमा, दुःषमा, सुषमादुःषमा, और दुःषमा-दुःषमाका अन्त सदा आपादी पूर्णिमाको होता है। अतः सूर्यादि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीका दिन है। इसी दिनकी स्मृतिमें यह पर्व आरम्भ हुआ है। इसकी आरम्भ तिथि भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी है और समाप्ति तिथि भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी है। बीचमें किसी तिथिकी कमी हो जानेपर यह व्रत एक दिन पहले से किया जाता है। इसमें समाप्तिकी तिथि चतुर्दशी ही नियामक है। दो चतुर्दशियोंके होनेपर भी जिस दिन घट्यादिके प्रमाणानुसार व्रतके लिए चतुर्दशी मानी जायगी, उसी दिन इस पर्वकी पूर्णता हो जाती है। व्रती व्यक्ति पूर्णिमाको संयम रखता है।

यह व्रत एक वर्षमें तीन बार आता है—माघ, चैत्र और भाद्रपदमें।

प्रत्येक महीनोमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको संयम कर पञ्चमीसे व्रत किया जाता है तथा चतुर्दशीको उपवास पूर्ण कर पूर्णिमाको संयमके साथ समाप्त किया जाता है।

उत्तम मार्ग तो यही है कि दस उपवास किये जायें। यदि दसों उपवास करनेकी शक्ति नहीं हो तो पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतु-

विधि

दशी इन चार दिनोंमें उपवास और शेष छः दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। यह व्रतकी मुख्य विधि है।

अन्य सभी प्रकारके व्रतोंका विशेष विवरण इस ग्रन्थमें किया ही गया है। अतः समस्त व्रतोंकी विधिके सम्बन्धमें अगले प्रकरणोंद्वारा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

अष्टमी और चतुर्दशीको एवं तिथि कहा जाता है। प्रत्येक महीनेकी दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशियोंको प्रोषोपवास करना चाहिए।

पर्वतिथियाँ

इन तिथियोंके व्रत उदयकालमें छः घटीसे अल्प रहने पर पहले दिन किये जाते हैं। अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय और धर्मव्यान पूर्वक इन व्रतोंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रती श्रावकको अष्टमीके दिन^१ सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्र्य भक्ति और शान्तिभक्तिका पाठ करना चाहिए तथा चतुर्दशीकी सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पञ्चगुर भक्ति और शान्ति-भक्ति करनी चाहिए^२। जिस व्यक्तिको केवल अष्टमीका व्रत परिमितकालके लिए करना हो, उसे उपवासपूर्वक 'ओं ह्रीं नमो सिद्धार्ण सिद्धाधिपतये नमः' का त्रिकाल जाप करना चाहिए। आठ वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना होता है। चतुर्दशीका व्रत करनेवाले आपाद शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी प्रत्येक त्रयोदशीको धारणा, चतुर्दशीको व्रत और

१. अष्टम्यां सिद्ध-श्रुत-चारित्र-शान्तिभक्तयः।

२. सिद्धे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुरस्तुतिः।

शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥

—संस्कृत क्रियाकाण्ड

पूर्णिमाको पारणा की जाती है। 'ओं ह्रीं अनन्तनाथाय नमः' इस मन्त्रका त्रिकाल जाप किया जाता है। १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए।

व्रतोंके उद्यापन

व्रत-विधान अवगत हो जानेपर उनके उद्यापनकी विधिका जान लेना आवश्यक है। सम्प्रक् प्रकार व्रतानुष्ठानके पश्चात् उद्यापन कर देने पर ही व्रतोंका फल प्राप्त होता है। उद्यापनकी विधि निम्न प्रकार है।

इस व्रतका उद्यापन भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको किया जाता है अथवा पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर कभी भी किया जा सकता है। उद्यापन करनेके दिन श्री मन्दिरजीमें जाकर सर्वप्रथम एक गोल चौकी या टेबुलपर रत्नत्रय व्रतोद्यापनका मण्डल उद्यापनकी विधि (माहना) बनाना चाहिए। चौकी चार फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी होनी चाहिए। चौकीपर द्योत-

वत्न बिछाकर लाल, पीले, हरे, नीले और श्वेत रंगके चावलोंसे मण्डल बनाना चाहिए। इस मण्डलमें कुल ९३ कोठे होते हैं। मण्डल गोलकार बनता है। मण्डलके बीचमें 'ओं ह्रीं रत्नत्रयव्रताय नमः' लिखे। इसके पश्चात् दूसरा मण्डल सभ्यदर्शनका होता है, इसके चारह कोठे हैं। तीसरा मण्डल सभ्यज्ञानका होता है, इसके ४८ कोठे हैं। चौथा मण्डल सम्प्रक् चारित्र का होता है, इसके ३३ कोठे हैं।

मन्दिरमें सर्वप्रथम भगवान्‌के अभिषेकके लिए जल लानेकी क्रिया करे। जलयात्राकी विधि यहाँ दी जाती है। जल लानेके उपरान्त महान् १. समस्त उद्यापनोंके लिए जलयात्राका विधान यह है कि सौमन्यवती स्त्रियाँ घरसे तूलमें लिपटे और कलावासे सुसंस्कृत नारियलोंसे ढके कलश जलाशयके पास ले जावें। जलाशयके पूर्व भाग या उत्तर भागमें भूमिको जलसे धोकर पवित्र करे। पश्चात् उस भूमिपर चावलोंका चौक बनाकर, चावलोंका पुञ्ज रखे और कलशोंको उन पुञ्जोंपर

स्थापित कर दिया जाय। चौकके चारों कोनोंपर दीपक जलाना चाहिए। पश्चात् निम्न विधानकर कुँ पूसे जल निकाला जाय।

पद्मापादनतो महासुतभवानन्दप्रदाना नृणां
जैनो मार्ग इवावभासिविमलो योगीव श्रीतीर्थध्वन् ।

जैनैर्नृस्तपनोचितोदकतया क्षीरोदवत्सता
पूज्यं त्वां शुभशुद्धजीवननिर्धि कसासरसंजये ॥१॥

ओं ह्रीं पद्मकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा । पढ़कर जलाशय—
कुँ पू पर अर्घ चढ़ावे ।

श्रीमुख्यदेवीः कुलशैलमूर्धपद्मादिपद्माकरपद्मसक्ताः ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

यहाँसे जलाशय पूजा करे ।

गङ्गादिदेवीरतिमङ्गलाङ्गा गङ्गादिविख्यातनदीनिवासाः ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥३॥

ओं ह्रीं गङ्गादिदेवीभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निर्वपाम् ।

सीतानदीविद्धमहाहृदस्थान् हृदयवरात्रागकुमारदेवान् ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥४॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाहृददेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निम् ।

सीतोत्तरामभ्यमहाहृदस्थान् हृदयवरात्रागकुमारदेवान् ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥५॥

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाहृददेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निम् ।

क्षीरोदकालोदकतीर्थवर्तिश्रीमागधादीनमरानशेषान् ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥६॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं निम् ।]

सीतातदन्वद्वयतीर्थवर्तिश्रीमागधादीनमरानशेषान् ।

पद्मःपटीराक्षतपुष्पहव्यप्रदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥७॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदागमागधादितीर्थदेवेभ्यः जलादि अर्घ्यम् ।

समुद्रनाथंल्लवणोद्गमुष्यसंख्याऽपतीताम्बुधिभूतिभोक्तृ ।
पयःपदीराक्षतमुपहृष्यप्रदीपभूषोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥८॥

ओं ह्रीं संख्यातीतसमुद्रदेवेभ्यः जलादि आद्यं० ।

लोकप्रसिद्धोत्तमतीर्थदेवान्नन्दीश्वरद्वीपसरःस्थितादीन् ।

पयःपटीराक्षतपुष्पहन्त्रमदीपधूपोद्धफलैः प्रयक्ष्ये ॥९॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्यः इदं जलादि अर्घ्यं ० ।

गङ्गादयः श्रोत्रमुखाश्च देव्यः श्रोत्रासागधाद्याश्च समुद्रनाथाः ।

हृद्देशानांऽन्यथा जलशयशास्ते सारयन्त्वस्य जिज्ञोचिताम्भः ॥

उपयुक्त श्लोकका पढ़कर कुपुस जल निकालना आरम्भ करना चाहिए और जलको छानकर एक चड़े बर्तनमें रख लेना, पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर कलशोंमें जल भरना चाहिए ।

आ हौ श्री-ह्री-धत-क्रीत-त्रुद्धि-मूर्ध्नि-शान्तिस्तुष्टयः श्रीदक्षुमाया
 जिनेन्द्रमहाभिषेककलशमुखेध्वतेषु निर्याविशेष्टा भवत भवत स्वाहा ।

तीर्थे नानेन तीर्थान्तरदुरधिगमोदारादिव्यप्रभावः

स्फुजर्त्तयात्तमस्य प्रथितजिनपतः प्रोपतप्राभृताभान् ।

श्रमुत्थव्यातद्वानवहकृतमुखाधस्मिन्। इतिशक्तः—

प्रोवाह्यमुद्धरामा जयजयाननद क्षातकुम्भायकुम्भाम् ॥

के जल-कलशोंको सौभाग्यपवती खियों अधवा कन्याओं द्वारा ले आना चाहिए । कलशोंकी संख्या ९ रहती है ।

जल लाकर भगवान्का अभिषेक करना चाहिए । अभिषेकके पश्चात् विमल मन्दर पङ्कज केसर मिश्रित जलधारा छोड़नी चाहिए ।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अहं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोष-
कल्मषाय दिग्भद्रेज्योमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्न-
प्रणशनाय सर्वरोगापमृद्युविनाशनाय सर्वपरकृतछुद्रोपद्रवविनाशनाय
सर्वक्षामरकामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा पावित्रतर-
नान्बोदकेन जिनमभिपिञ्चामि । मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं कुरु कुरु,
तुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा ।

भिषेक, तदनन्तर स्वस्ति मङ्गल विधान करे । पश्चात् सकलीकरणकी क्रिया करनी चाहिए । यह सकलीकरणकी क्रिया स्नानोपरान्त जलयात्रा-के पूर्व भी की जा सकती है । परन्तु उत्तम मार्ग यही है कि जलयात्राके उपरान्त सकलीकरण क्रिया की जाय । इसके पश्चात् मङ्गलाष्टक, सहस्रनाम आदि स्वस्ति विधान एवं रत्नत्रय व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए । पूजनके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर संकल्प डोढना चाहिए । संकल्पमें अक्षत, सुषाढी, हस्ती, पीली सरसों और एक पैसा रहना चाहिए ।

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य श्रीमद्वादिब्रह्मणा सत ब्रह्मोक्थमथ-
नभ्यासीने मध्यलोके श्रीमदनाद्यतयक्षसंसेव्यमाने दिव्यजम्बूद्वीपे-
लक्षितजम्बूद्वीपे महानीयमहामोरोर्दक्षिणभागे अनदिकालसंसिद्धभरत-
नामधेयप्राचिराजितपदस्थण्डमाण्डितभरतक्षेत्रे सकलशलाकापुरुषसम्भवन्धीवि-
राजितायंस्थण्डे परमधर्मसमाचरणविहरप्रदेशे अस्मिन् दिनेष्यजततामिराने
आगानारे अस्मिन् दिव्यमहाचैत्र्यालयप्रदेशे एतदवसर्पिणिकालावसाने
प्रवृत्तसुदृढचतुर्शमनूपमानिवतसकललोकाव्यवहारे श्रीवृषभस्वामिपौर-
स्वभङ्गलमहापुरुषपरिषथतिपादितपरमोपशानमपर्वक्रमे वृषभसेनसिंहसेन-
चारुसेनादिगणधरस्वामिनिरूपितविशिष्टधर्मोपदेशे पञ्चमकाले प्रथमपादे
महतिमहावीर्यधर्मानतीर्थङ्करोपदिष्टसद्धर्मव्यतिकरे श्रीगौतमस्वामिप्रति-
पादितसन्मार्गाप्रवर्तमाने श्रेष्ठिकमहामण्डलेऽवरसमाचरितसन्मार्गावशेषे

जलधाराके पश्चात् गान्धोदक लेनेका मन्त्र—

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्याङ्कुरोपादकं
नानोद्विजदेशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्

सम्प्रज्ञानचरित्रदर्शनलतासुन्दरिसंपादकं
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गन्धोदकम् ॥

१. इस स्थानपर अपने प्रदेशका नाम जोड़ना चाहिए ।
२. इस स्थानपर अपने नगरका नाम जोड़ना चाहिए ।

२०१३ मिते^१ विक्रमाब्दे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायां तिथौ गुरुवासरे प्रशस्ततारकायोगकरणक्षत्रहोरासुहृत्तल्लभयुक्तायाम् अष्टमहाप्रातिहार्य-शोभितश्रीमदहंस्वरमेधवरसन्निधौ अहं...रत्नत्रयनामकव्रतं स्थापयामि । ओं हां ह्रीं हूं हौं हः असि आ उसा सर्वशान्तिर्भवतु, सर्वकल्याणं भवतु श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।

इसके अनन्तर पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन आदिको सम्पन्न करे ।

उद्यापनके लिए पूजन सामग्री; रत्नत्रय यन्त्र, तेरह शास्त्र, मन्दिरके लिए तेरह पूजनके वर्तन, छत्र, चमर, शारी आदि मंगल द्रव्य, चाँदीवा रत्नत्रयव्रतोद्यापन तथा नगदी रुपये दान देना चाहिए । उद्यापनके उप-की सामग्री

यान्त सामग्री भाइयोंके तेरह घरोंमें फल भोजना चाहिए । यदि शास्त्र और पूजनके वर्तन तेरह-तेरह देनेकी शक्ति न हो तो कमसे कम तीन अवश्य देने चाहिए । इस व्रतका उद्यापन तीन वर्षोंमें किया जाता है । पूजनमें चढ़ानेके लिए ९३ चाँदीके स्वस्तिक, इतनी ही सुपारियाँ, चार नारियल रहने चाहिए । ये नारियल प्रत्येक वलयकी पूजामें चढ़ाने चाहिए । सुपारी, साधिया प्रत्येक अवर्षमें लेना चाहिए । यह अर्घ्य माँडनेके कोठेमें चढ़ेगा ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए १०० कोठोंवाला मण्डल गोलाकार बनाना चाहिए । मंडल लाल, श्वेत, हरे, पीले और नीले वर्णके चावलसे बनाना चाहिए । इसके पश्चात् रत्नत्रय व्रतोद्यापनके समान ही दशलक्षण व्रतोद्यापन जलयात्रा करनी होती है । पूजनकी विधि रत्नत्रय व्रतके समान है । सकलीकरण अंगन्यास आदि क्रियाएँ पूर्ववत् कर लेनी चाहिए । अनन्तर उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए । इस व्रतके उद्यापनके आदिमें बताया गया है—

आदौ गर्भगृहे पूजा क्रियते सद्ब्रधोत्तमैः ।

जिननामावलिं शुद्धां सकलीकरणादिकम् ॥

१. जिस दिन उद्यापन करना हो, उसके तिथ्यादि जोड़ना चाहिए ।

सन्मण्डपप्रतिष्ठा च पश्यते पण्डितोत्तमैः ।
नानाशास्त्रान्वितैः धीरैः कलागुणविराजितैः ॥
शतकमलसमूहं वर्तुलाकारचक्रं
भवशतयजनादां सर्वमोक्षप्रचक्रम् ।

परमगुणिधानं सद्ब्रतौघप्रधानं
विधिषुसुमवन्यैः शुद्ध्यन्त्रे क्षिपामि ॥

उद्यापनके अनन्तर व्रतसमाप्ति सूचक रत्नत्रयवाले संकल्पको यहाँ भी पढ़कर रत्नत्रयके स्थानपर दशलक्षणव्रत जोड़ लेना चाहिए । अवशेष ग्राम, नगरादि और अपना नाम आदि भी जोड़ लेने चाहिए ।

छत्र, चमर, शारी आदि मंगलद्रव्य, जपमाला, कलश, दस शास्त्र, उद्यापनकी सामग्री चाँदीके स्वस्तिक, दस नारियल, १०० सुपाड़ीकी आवश्यकता होती है । इस उद्यापनमें दस घरोंमें फल बाँटना आवश्यक है ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए कुल २५६ कोष्ठका मण्डल बनता है । प्रथम मण्डल दर्शनविशुद्धिका होता है, इसमें ९८ कोष्ठक होते हैं । पौडशकारण द्वितीय मण्डल विनयसम्पन्नताका होता है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं । तृतीय मण्डल शीलभावनाका होता है, इसमें १० कोष्ठक होते हैं । चौथा मण्डल आभीक्षणज्ञानोपयोगका होता है, इसमें ४२ कोष्ठक होते हैं । पाँचवाँ संवेग नामकका मण्डल है, इसमें १४ कोष्ठक हैं । छठवाँ शक्ति समाज नामका मण्डल है, इसमें ४ कोष्ठक होते हैं । सातवाँ शक्तित्रय नामका मण्डल है, इसमें २४ कोष्ठक होते हैं । आठवाँ साधु समाधि नामका मण्डल है, इसमें ४ कोष्ठक हैं । नौवाँ वैराग्य है, इसमें ४ कोष्ठक हैं । दशवाँ अहर्दभक्ति नामका मण्डल है, इसमें १३ कोष्ठक होते हैं । ग्यारहवाँ आचार्यभक्ति नामका मण्डल है, इसमें १२ कोष्ठक होते हैं ।

बारहवाँ बहुश्रुतभक्ति नामका है, इसमें २ कोष्ठक होते हैं। तेरहवाँ प्रवचन भक्ति नामका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं। चौदहवाँ आवश्यक-परिहाणि नामका है, इसमें ६ कोष्ठक हैं। पन्द्रहवाँ मार्ग-प्रभावना है, जिसमें १० कोष्ठक होते हैं। सोलहवाँ प्रवचनवात्सल्य नामका मण्डल है, इसमें ४ कोष्ठक होते हैं। इस प्रकार २५६ कोष्ठकका मांडना रंगीन चावलोसे बना लेना चाहिए।

जलयात्रा, अभिषेक, मंगलाष्टक, सकलीकरण, अंगन्यास, स्वस्ति-वाचन आदिके उपरान्त षोडशकरण व्रतोद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। संकल्प मन्त्र पूर्ववत् ही पढ़ा जायगा; पर उसमें षोडशकरण व्रतका नाम तथा तिथि नक्षत्रादि जोड़कर संकल्प छोड़ना चाहिए। परचात् पूर्ववत् पुण्याहवाचन, शान्ति, विसर्जन करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर १६ घरोंमें फल वितरित करना चाहिए।

षोडशकरण यन्त्र, पूजन सामग्री, २५६ चौंटीके स्वस्तिक, २५६ सुपाड़ी, १६ शाख, १६ नारियल, वर्तन, छत्र, चमर आदि मंगलद्रव्य, उद्यापनकी सामग्री चन्दोवा, दान करनेके लिए नगद रुपये आदि आवश्यक सामान हैं।

इस व्रतके उद्यापनके लिए प्रत्येक दिशामें तेरह-तेरह चैत्रालय बनाकर कुल ५२ चैत्रालयोंका मण्डल बना लेना चाहिए। कपड़ेपर बने माण्डना अष्टाङ्गिका को काममें कभी भी नहीं लाना चाहिए। चावलों द्वारा निर्मित मांडना ही उत्तम होता है। मांडना बन जानेके उपरान्त, पूर्ववत् जलयात्रा और अभिषेक आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। इस व्रतका उद्यापन आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको करना चाहिए। सकलीकरण अंगन्यास आदिके पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वक उद्यापन की पूजा करनी चाहिए। अनन्तर रत्नत्रय व्रतोद्यापनमें चतलाये गये संकल्प मन्त्रको पढ़कर संकल्प करना चाहिए। पश्चात् पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए।

मन्दिरमें देनेके लिए आठ-आठ उपकरण, आठ शाख, पूजन-सामग्री, चन्दोवा, पूजनमें चढ़ानेके लिए ५२ चौंटीके स्वस्तिक, उद्यापनकी सामग्री ५२ सुपाड़ी, चार नारियलकी आवश्यकता होती है। सिद्धचक्र यन्त्र भी बनवाना चाहिए।

इस उद्यापनके लिए ८१ कोष्ठकोंका मण्डल बनाया जाता है। मण्डल पर ही भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमा विराजमान की जाती है। अभिषेकके लिए जल लानेके पश्चात् सकलीकरण, अंगन्यास, रविवार व्रतोद्यापन मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान करनेके पश्चात् गन्धकुटीकी पूजा करनी चाहिए। अनन्तर उद्यापनकी पूजा, पश्चात् पूर्वोक्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए। वताया गया है—

आदौ गन्धकुटीपूजा ततः स्तपनमाचरेत् ।
पश्चात् कोष्ठगता पूजा कर्त्तव्या विबुधोत्तमैः ॥
पादवर्नाथजिनेन्द्रस्य प्रतिमां परमां शुभाम् ।
आङ्गननादिविधिना स्थापयेत् स्वस्तिकोपरि ॥
पश्चात् पूजा प्रकर्त्तव्या विधिवद्वा मुद्रा तथा ।
उत्तमां सर्वसामग्रीं मेलयित्वा त्रिशुद्धितः ॥

नौ शाख, मन्दिरके लिए नौ वर्तन, उपकरण, चन्दोवा, पूजाके लिए ८१ गोटा या चौंटीके स्वस्तिक, ८१ सुपाड़ी, ९ नारियल, पूजन सामग्री, उद्यापनकी सामग्री नौ श्रावकोंके घर नौ-नौ फल वितरित करनेके लिए एकत्र करना चाहिए। उद्यापनके अनन्तर नौ श्रावकोंको भोजन कराना चाहिए।

शुद्ध कोरा घड़ा लेकर उसे धो लेना चाहिए। पश्चात् श्रीखण्ड, केशर आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेपन उस घड़ेपर करना चाहिए। सुवर्ण, अनन्तव्रतोद्यापन चौंटी या पञ्चरत्नकी पुड़िया उस घड़ेमें छोड़नी पुष्पमालाएँ पहना देना चाहिए। अनन्तर घड़ेके ऊपर एक बड़ी थाली प्रक्षाल करके रखना, उस थालीमें अनन्तका मण्डल १९६ कोष्ठकोंका बना

लेना । एक दूसरी थालीमें श्रीखण्डसे अनन्त यन्त्र लिखकर अथवा स्वस्ति लिखकर चौबीसी प्रतिमा विराजमान करना । गौंठ दिया हुआ अनन्त पहली थालीमें ही रखा जाता है । अथवा चौकी पर ही चौदह मण्डलका वृत्ताकार मंडना बना लेना, प्रत्येक मण्डलमें चौदह चौदह कोष्ठक बनाना । मण्डलके मध्यमें चौबीसी प्रतिमा विराजमान कर पूजन करना चाहिए । प्रत्येक कलशकी पूजामें नारियल चढ़ाना चाहिए तथा प्रत्येक कोष्ठकपर सुपाड़ी । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यासके परचात् उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए । पूजनोपरान्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करना चाहिए ।

१४ प्रकारके उपकरण, १४ शास्त्र, पूजाके लिए १९६ सुपाड़ी, १९६ गोटे या चाँदीके स्वस्तिक, १४ नारियल और पूजन सामग्री एकत्र उद्यापनकी सामग्री करनी चाहिए । उद्यापनके परचात् १४ श्रावकोंको भोजन कराना चाहिए । अनन्तव्रतका यन्त्र भी बनवाया जाता है ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए २५ कमलका मण्डल बनता है । जल-यात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके परचात् उद्यापनकी पूजा की जाती है । उद्यापनके आरम्भमें विधि व्रतोद्यापन बतलाते हुए कहा गया है—

भो भव्याः शृण्वतामस्य सामप्रयादि विधिं पुरा ।
जलादिफलपर्यन्तं सर्वद्रव्यं समुत्तमम् ॥
कंसालतालशृङ्गारघण्टातोरणमालिकाः ।
चन्द्रोपकदीपमालाधूपस्य दहनानि च ॥
भामण्डलादिकान्यत्र चेतोपां पञ्चकं पृथक् ।
खज्रकमोदकादीनां पञ्चाविंशतिकं पुनः ॥
अन्यानि च सुवस्त्वनि स्वाद्याद्यानि शुद्धितः ।
आनेयमिति सद्रव्यैः सर्वं जिनमन्दिनं प्रति ॥

पञ्चरत्नपृथक्चूर्णैः पञ्चाविंशतिपत्रजम् ।

मण्डलं सुन्दरं कुर्यात् मध्ये मेरुं सकणिकम् ॥

अतो गन्धकुटीसंस्थं जिनं संचर्च्य तत्परम् ।

जिनादीन् सच्छुतं सूरिपादाब्जं च-बुधाः क्रमात् ॥

अर्थात्—छत्र, चमर, झारी, तोरण, घंटा, धूपदान, चंदोवा, दीवट, भामण्डल, पाँच वर्तन, पाँच शास्त्र, २५ नैवेद्य, २५ सुपाड़ी, पाँच नारियल, पञ्चरत्नकी पुड़िया, २५ चाँदी या गोटेके स्वस्तिक आदि सामग्री एकत्र करके मण्डलके मध्य जिनप्रतिमा विराजमान करके उद्यापन पूजा सम्पन्न करनी चाहिए । पूर्णार्घके उपरान्त संकल्प, जाप, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाएँ करनी चाहिए । अनन्तर कम से कम पाँच श्रावकोंको भोजन कराना, दान देना आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए तीन मण्डलोंमें चौबीस चौबीस कोष्ठक बनाना चाहिए । मण्डलके मध्यमें 'ओं ह्रीं', लिखकर उसपर स्थापन रखनी विलोकनीज करनी चाहिए । मण्डलके चारों कोनोंपर "ओं ह्रीं भूत-भविष्यवर्तमानकालीनचतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः" व्रतोद्यापन लिखना चाहिए । जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरणके पश्चात् मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर उद्यापनकी ७२ पूजाएँ करनी चाहिए । पूर्णार्घके उपरान्त, पूर्वोक्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति विसर्जन आदि क्रियाओंके उपरान्त इस व्रतकी जाप लोगोंसे करनी चाहिए ।

उद्यापनके लिए ७२ चाँदी या गोटेके स्वस्तिक, तीन नारियल, ७२ सुपाड़ी, उपकरण, वर्तन, कम से कम तीन शास्त्र, पूजन सामग्री आदि एकत्र करनी चाहिए । उद्यापनके अनन्तर २४ श्रावकोंको भोजन कराना, २४ श्रावकोंके घर फल भेजना चाहिए ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए सात कोष्ठोंका एक वलयाकार मण्डल बनाना चाहिए । अथवा एक कोरे घड़ेको स्वच्छ और सुगन्धित कर

मुकुटसप्तमीव्रत उसके ऊपर एक थाली रखनी चाहिए। इस थालीमें सात कोठे एक ही मण्डलमें बना लेना चाहिए। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् चतुर्विंशतिजिनपूजा, परचात् प्रत्येक वर्षके व्रतकी आदिनाथ स्वामी की पूजा करनी चाहिए। उद्यापनके समय जिनालयको सात-सात उपकरण, सात शाख, चन्दोवा, माण्डल, वर्तन आदि देना तथा श्रावक और मुनियोंको आहार-दान देना चाहिए। यह उद्यापन श्रावण सुदी अष्टमीको किया जाता है।

इस व्रतके उद्यापनके लिए एक मण्डलाकार दस कोष्ठकोंका मण्डल बनाना चाहिए। मण्डलके मध्यमें “ॐ ऋषभाय नमः” लिखना चाहिए।

अक्षयफल दशमी व्रतोद्यापन इस व्रतका उद्यापन श्रावण शुक्ला एकादशीको किया जाता है। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त

उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए। उद्यापनमें मन्दिरको दस शाख, दस वर्तन, चन्दोवा, भामण्डल, छत्र, चमर आदि देना तथा श्रावकोंको भोजन कराना, पाठशालाओं, औपधालयों एवं अन्य उपयोगी संस्थाओंके लिए दान देना चाहिए। इस व्रतके उद्यापनमें दस श्रावकोंके घर दस-दस आस या नारंगी ही वितरित की जाती हैं।

यह व्रत बारह वर्षतक पालन किया जाता है, परचात् उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए बारह कोठोंका मण्डलाकार मंडल बनाया जाता है। मध्यमें ‘ओं हौं असि आ उसाय नमः’ श्रावण द्वादशी व्रतोद्यापन लिखा जाता है। मंडलके चारों कोनोंपर णमोकार मन्त्र लिख दिया जाता है। जलयात्रा, अभिषेक,

सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन-पूजा की जाती है। प्रत्येक कोठेमें पुष्प-पूजन किया जायगा। प्रत्येक कोठेके पूजनमें एक-एक नारियल भी चढ़ाया जाता है तथा गोटे या चाँदीका स्वस्तिक भी रहता है। उद्यापनमें चतुर्मुखी प्रतिमाका निर्माण और प्रतिष्ठा

करके विराजमान करना चाहिए। चार शाख, चार उपकरण, पूजनके वर्तन, चन्दोवा, तोरण, घण्टा, छत्र, चमर आदि मन्दिरको चढ़ाना चाहिए। चारों प्रकारका दान देना, रोगी-दुखियोंकी सेवा करना एवं शिक्षाका प्रन्ध करना चाहिए।

पाँच वर्ष, पाँच महीना करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। उद्यापनके लिए एक कोरा मिट्टीका घड़ा लेकर उसे जलसे रोहिणी-व्रतोद्यापन श्रेय करना चाहिए। परचात् उसे एक द्रवत वस्त्रसे

शुद्ध करनेके पश्चात् उसपर चन्दन और केसरका लेप करना चाहिए। परचात् उसे एक द्रवत वस्त्रसे शान्छादित कर पुष्पमाला पहना देना चाहिए। अनन्तर उसके ऊपर एक थाली रखकर पूजा करनी चाहिए। थालीमें ऋद्धि यन्त्र बनाया जाय। कुल रोहिणी संख्या व्रतके दिनोंमें ७२ प्रमाण होती है अतः इस व्रतके उद्यापनमें त्रिकाल चतुर्विंशतिपूजन पुष्प-पुष्प-करना होगा। पूजनकी प्रक्रिया पूर्ववत् है—जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान, अनन्तर ७२ पूजाएँ होती हैं। प्रत्येक पूजाके अर्थमें चाँदी या गोठोंका स्वस्तिक, नारियल या सुपाड़ी चढ़ाई जाती है। उद्यापनमें कमसे कम ५ शाख, पूजनके वर्तन, चन्दोवा इसी घण्टा आदि चढ़ाया जाता है। शक्ति हो तो ७२ श्रावकोंको भोजन कराया जाता है।

पाँच वर्ष व्रत करनेके उपरान्त इसका उद्यापन भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को किया जाता है। उद्यापनके लिए एक घड़ा लेकर शुद्धकर, पुष्पमालाएँ उसे पहनाकर थालीमें सत्रह कोठोंका विनायक यन्त्र आकाशपञ्चमी व्रतोद्यापन बनावे। जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके पश्चात् उद्यापन पूजा करे। यह

उद्यापन पूजन प्रकाशित नहीं है, अतः इसमें पुष्प-पुष्प-मंत्रसे परमेष्ठी पूजन करनेके पश्चात् विनायक-यन्त्रकी सत्रह पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्ध के उपरान्त संकल्प, पुण्याहवाचन आदि क्रियाएँ करें। सत्रह अर्धों में सुपाड़ी, स्वस्तिक चढ़ावे। कलशमें पंचरत्नकी पुड़िया छोड़नी चाहिए।

इस व्रतके उद्यापनके लिए पञ्चपरमेष्ठी मण्डल बनाया जाता है।

निकिलापञ्चमी
व्रतोद्यापन

अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधानके उपरान्त पञ्चपरमेशी पूजा, जो माधनन्दी आचार्य द्वारा विरचित है, करनी चाहिए । प्रत्येक अर्धमें सुपाड़ी और स्वस्तिक चढ़ाया जाता है तथा प्रत्येक वल्लभकी पूजामें नारियल, पूजाके पत्रचात् पूर्ववत् संकल्प, पुण्याह-वाचनादि करने चाहिए । मन्दिरके लिए पाँच शाल, पाँच बर्तन, उपकरण, घण्टा, चन्देवा आदिका दान करना तथा २५ व्यक्तियोंको भोजन कराना, यदि शक्ति हो तो १४२ व्यक्तियोंको भोजन कराना तथा २५ घरोंमें पाँच-पाँच फल बाँटना चाहिए ।

स्वाध्याय

विद्यमान विद्याति तीर्थकर, पञ्चपरमेशी और महावीरस्वामी इस प्रकार

विद्यमान तत्रात तावकः । पूर्णं अर्धके पश्चात् सकल्प, पुण्याहवाचनादि
उक्त छः पूजा की जाती हैं । पूर्ण अर्धके पश्चात् सकल्प, पुण्याहवाचनादि

यद्वा दत्त सात वर्ष करदीकी उपरान्त श्रीप्रध्वर

निर्दोषसमी-
व्रतोद्यापन

सोलह वर्ष पर्यन्त करनेके पश्चात् भाद्रपद शुक्ला नवमीको इस अव-

निश्चाल्य अष्टमी
वर्ततेद्यापन

थाल रखे और उसी थालमें पूजा करे । अभिषेककी

क्रियाके पश्चात् सकलीकरण, अंगान्वास, मंगलाष्टक, स्तुतिविधान, पंच-परमेष्ठी पूजन और समुच्चयचौबीसी पूजनके पश्चात् चौबीसी पूजनमेंसे आरम्भके सोलह तीर्थकरोंकी पूजा करनी चाहिए। पूर्ण अर्धके अनन्तर संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे। उद्यापनमें सोलह उपकरण, सोलह शास्त्र, पूजनके चर्तन मन्दिरको भेंट करे। सोलह श्रावकोंके यहाँ मिठाई फल भेजे। क्रमसे कम सोलह श्रावकोंको घर बुलाकर भोजन करावे।

इस व्रतका उद्यापन दस वर्ष व्रतका पालन करनेके उपरान्त भाद्र-
पद शुक्ला एकादशीको होता है। एक घड़ा लेकर उसे पूर्ववत् शुद्ध और

सुगान्धदशमी

ऊपर एक थालमें विनायक-यन्त्र बनाकर विराजमान

ब्रह्मदेव्यापन
करी । अतिथेक आदि कियाओंके पश्चात् पंचपरमेष्ठी
ज्योतीर्षा आकाशाभा, अक्षरमंडल, कोनावासाभा, निवासवासाभा, क्षीमाभा, क्षान्ताभा
लाभा, पादवासाभा कोक वादासीन क्षान्ताभा पूर्णा करे । दशावतः सुखावतः

चाचन पूर्ववत् करे । उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण, पूजाके वर्तन आदि मन्दिरको दान दे । साधर्म्य श्रावकोंको भोजन करावे । दस-दस फल दस श्रावकोंके घर भेजे । शक्ति हो तो दस घरोंमें वर्तन बाँटे ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए बीचमें एक अष्टदल कमल बनाकर पद्मात् मण्डलकार दो पंक्तिमें तीस कोष्ठक अर्थात् प्रत्येक पंक्तिमें पन्द्रह पन्द्रह कोष्ठक बनावे । अष्टदल कमलके ऊपर सिंहासन कवलचान्द्रायण रखकर प्रतिमा विराजमान करे, पद्मात् जलयात्रा, स्वस्तिका, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिका, अभिषेक, धूपकीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिका, विधान करनेके अनन्तर उद्यापन पूजा करे । पूर्ण अर्घके पद्मात् संकल्प, पुष्पाहवाचन, शान्ति और विसर्जन करे । उद्यापनके अनन्तर जिनालयको शास्त्र, वर्तन, उपकरण दान दे । तीस श्रावकोंको भोजन करावे तथा तीस श्रावकोंके घर फल और मिठाई भेजे ।

इस व्रतमें ६३ उपवास किये जाते हैं; अतः इसका मण्डल भी ६३ कोष्ठकोंका होता है । प्रथम मण्डल तीर्थंकर कहलाता है जिसके चौबीस कोष्ठक होते हैं । द्वितीय मण्डल चक्रवर्तीका है, इसके बारह कोष्ठक होते हैं । तीसरा मण्डल नारायणका है, इसके ९ कोष्ठक होते हैं, चौथा मण्डल प्रतिनारायणका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते हैं । पाँचवाँ मण्डल बलदेवका है, इसके भी नौ कोष्ठक होते हैं । मण्डलके मध्यमें भगवान्की प्रतिमा विराजमान कर उद्यापन पूजन करना चाहिए । आरम्भमें जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिका, अन्तर्गत उद्यापनकी ६३ पूजाएँ करनी चाहिए । उद्यापनकी प्रत्येक पूजाके अन्तिम अर्घमें स्वस्तिक, सुपारी नैवेद्य लेना चाहिए । उद्यापनमें दस शास्त्र, दस उपकरण मन्दिरको देना चाहिए । ६३ श्रावकोंको भोजन कराना तथा ६३ श्रावकोंके यहाँ फल-मिठाई भेजना और शक्तिके अनुसार ६३ घरोंमें वर्तन बाँटना चाहिए ।

चौदहवर्षतक व्रत पालन करनेके उपरान्त भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको इस व्रतका उद्यापन किया जाता है । उद्यापनके दिन एक घड़ा लेकर,

चतुर्दशी व्रतोद्यापन उसे शुद्ध करे । पश्चात् उसी घड़ापर विनायक-यन्त्र लिखकर एक थाली रखे । इसी थालीमें उद्यापन पूजा करनी चाहिए । उद्यापनमें चौदह उपकरण, चौदहशास्त्र, वर्तन आदि मन्दिरको देना चाहिए । चौदह श्रावकोंको भोजन तथा चौदह घरोंमें फल भेजना चाहिए ।

इस व्रतका उद्यापन करनेके लिए ९ दलका कमल-मण्डल बनाया जाता है । बीचमें 'ॐ ह्रीं' लिखा जाता है । जलयात्रा, अभिषेक आदिके निर्जरपञ्चमी उपरान्त उद्यापनकी पूजा करनी चाहिए । इस पूजामें पंचपरमेष्ठीकी पृथक्-पृथक् पाँच पूजा, चौबीसीपूजन, विद्यमान विद्यति तीर्थंकर पूजन, आदिनाथ पूजन व्रतोद्यापन और मंदावीर स्वामीका पूजन, इस प्रकार नौ पूजन किये जाते हैं । उद्यापनमें मन्दिरके लिए नौ उपकरण, नौ शास्त्र, नौ वर्तन दिये जाते हैं । चारों प्रकारका दान देना, नौ श्रावकोंको भोजन कराना, नौ घरोंमें फल भेजना भी इसकी विधियोंमें परिगणित है ।

इस व्रतके उद्यापनके लिए आठ मण्डलका १४८ कोठोंका मण्डल बनाया जाता है । पहला मण्डल ज्ञानावरणीयका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं । दूसरा दर्शनावरणीयका होता है, इसमें ९ कोष्ठक कर्मक्षय-व्रतोद्यापन होते हैं । तीसरा वेदनीयका है, इसमें २ कोष्ठक ; चौथा मोहनीयका है, इसमें २८ कोष्ठक ; पाँचवाँ आयुका है, इसमें ४ कोष्ठक ; छठवाँ नामकर्मका है इसमें ९३ कोष्ठक ; सातवाँ गोत्रका है, इसमें दो कोष्ठक एवं आठवाँ अन्तरायका है, इसमें ५ कोष्ठक होते हैं । उद्यापन पूजनके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण आदि क्रियाएँ पूर्ववत् करनी चाहिए । पश्चात् उद्यापनके उपलक्ष्यमें मन्दिरको कम से कम ८ उपकरण, ८ शास्त्र, ८ वर्तन दे तथा साधर्मियोंको भोजन करावे । शक्तिके अनुसार चारों प्रकारका दान दे ।

अवशेष समस्त व्रतोंके उद्यापनके लिए उस व्रतके उपवास या वर्षोंके अनुसार माण्डना बना लेना चाहिए । जिन व्रतोंका माण्डना नहीं बन

अन्य व्रतोंके उद्यापनकी विधि

सकता है, उन व्रतोंके उद्यापनके लिए सुसंस्कृत मिट्टीके कलशके ऊपर थाल रखकर पूजा करनी चाहिए। पूजाके पहले जलयात्रा, अभिषेक, सकलीकरण, अंगन्यास, मंगलाष्टक, स्वस्तिविधान सभी उद्यापनोंमें होगा। पूजाके पूर्ण अवधि के उपरान्त संकल्प, पुण्याहवाचन, शान्ति और विसर्जन किया जायगा। उद्यापनकी पूजाके कार्यमें सुपाड़ी, स्वस्तिक चढ़ाना चाहिए। मन्दिरको उपकरण, वर्तन और शाल देने चाहिए। किसी भी व्रतका उद्यापन व्रतकी समाप्तिके दिन किया जाता है। पञ्चक्रत्याणक प्रतिष्ठाके अवसरपर कभी भी किसी भी व्रतका उद्यापन किया जा सकता है।

प्रथमानुयोग और व्रतविधान

प्रथमानुयोगके शास्त्रोंमें व्रतविधान और व्रतोंके फल प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित हैं। हरिवंशपुराणके ३४ वें सर्गमें सर्वतोभद्र, रत्नावली, सिंहनिष्क्रीडित आदि व्रतोंका विस्तारपूर्वक वर्णन अंकित है। बताया गया है कि श्रेणिकने भगवान्‌के समवशरणमें गौतम स्वामीसे प्रश्न कर व्रतोंके स्वरूप और उनके फल प्राप्तकर्ताओंके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की है। पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, आराधनाकथाकोश व्रतकथाकोष, हरिवेणकथाकोश आदि ग्रन्थोंमें व्रत पालन करनेवाले व्यक्तियोंके चरित वर्णित हैं। इस प्रसंगमें प्रमुख व्रतोंकी कथाओंका संक्षिप्त निरूपण किया जाता है। इन आख्यानोके अध्ययनसे जनसाधारणकी प्रवृत्ति व्रतधारण करनेकी ओर होगी।

समस्त व्रतोंमें प्रधान रत्नत्रय व्रत है। विधिपूर्वक इस व्रतके पालन करनेसे स्वर्गादिके सुखोंको भोगकर व्यक्ति निर्वाणपद प्राप्त करता है। इस व्रतके पालन करनेवाले राजा वैश्रवणकी कथा निम्न प्रकार है—

सुदर्शन मेरुकी दक्षिणदिशामें विदेहक्षेत्रके कच्छवती देशके मध्य वीत-शोकपुर नामके नगरमें वैश्रवण नामका राजा धर्म और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करता था। एक दिन वह दृष्टि वसन्तऋतुमें वनविहारके

लिए गया। यहाँ प्रकृतिप्री सुन्दर छटाको देखकर इसके मनमें अनेक प्रकारकी भावना उत्पन्न होने लगी। इसी मानसिक द्रन्दके बीच उसकी दृष्टि पासमें ही एक शिलापर ध्यानस्थ मुनिराजके ऊपर पड़ी। वह हर्ष-विभोर हो मुनिराजके पास गया और विनम्रपुक्त हो उनके चरणोंके निकट नमोऽस्तु कहकर बैठ गया। मुनिराजने धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया, पश्चात् राजाको सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया—‘राजन्, मित्यात्वके कारण ही यह प्राणी संसारमें परिभ्रमण करता है। मित्यात्वसे ही नवीन कर्मोंका आस्रव होता है तथा इसके कारण ज्ञान और चारित्र्य भी विपरीत होते हैं। सम्पन्नदर्शन ही आत्माका निजी स्वभाव है, इसके प्राप्त होते ही यह प्राणी आत्माके निज परणतित्तमें रमण करता है। अतः रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिए सर्वदा प्रयास करना चाहिए। रत्नत्रय सम्पन्नदर्शन, सम्पन्नज्ञान और सम्पक् चारित्र्यके धारण करनेसे ही जीव सुख-शान्ति प्राप्त करता है। रत्नत्रय धारण है, यही मोक्षका मार्ग है। इस रत्नत्रयको जीवनेमें लानेके लिए रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिए। व्रत क्रियारूप अनुष्ठान होता है, इसके पालन करनेसे जीवनमें रत्नत्रयका स्फुरण होता है।

मुनिराजके इस उपदेशको सुनकर राजा वैश्रवणने पुनः मुनिराजसे कहा—‘प्रभो! मानवपर्यायकी सार्थकता किसमें है? यहस्थावस्थामें रहकर व्यक्ति किस प्रकार धर्मका पालन कर सकता है? क्या उस रत्नत्रय व्रतको सुझ जैसे श्रावक भी धारण कर सकते हैं? इस व्रतके धारण करनेका फल क्या है?’

मुनिराज—‘राजन्! मानव पर्यायकी सार्थकता धर्मसाधनमें है। जो व्यक्ति इस अमूल्य पर्यायका उपयोग धर्मसाधनके लिए करता है, वह धन्य है। यहस्थाधर्ममें रहकर भी व्यक्ति धर्मका पालन कर सकता है। यह आश्रम ही जीवनकी तैयारीका क्षेत्र है। रत्नत्रय आत्माका धर्म है अथवा यों कहना चाहिए कि आत्मा ही स्वयं रत्नत्रय स्वरूप है। इस रत्नत्रय धर्मको श्रावक भी धारण कर सकता है। विधिपूर्वक रत्नत्रयका पालन करनेसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है।

राजा वैश्ववर्णने मुनिराजसे रत्नत्रय व्रत ग्रहण किया। उसने १३ वर्षों तक यथाविधि इस व्रतका पालन किया। इसके पश्चात् उसाहपूर्वक व्रतका उद्यापन कर दिया। रत्नत्रय व्रतके आचरणके कारण उस तृपतिकी आत्मा इतनी पावन हो गयी कि उसे संसार नीरस दिखलायी पड़ने लगा। एक दिन उसे तूफानके कारण एक वृक्ष जड़से उखड़ा हुआ दिखलायी पड़ा। विशालकाय वृक्षका इस प्रकार पतन होते देख राजा सोचने लगा—‘इस संसारके सभी मोहक पदार्थ विध्वंसशील हैं। यहाँ सभी पदार्थोंकी पर्यायें निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं। एक दिन मुझे भी मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा।’

अतः अब आत्मकल्याणका अवसर आ गया है। वह द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन करने लगा, जिससे उसकी आत्मा वैराग्यसे परिपूर्ण हो गयी। उसने राजपाट छोड़कर दिगम्बर-दीक्षा धारण की। रत्नत्रय व्रतके अभ्यासके कारण उसकी आत्मामें अपरिमित शक्तियाँ आविर्भूत हो चुकी थीं। अपनी आयुका अन्तिम समय जान उसने समाधिभरण धारण किया; जिससे वह अपराजित नामक विमानमें अहमिन्द्र हुआ। परन्तु वहाँसे च्यकर मिथिलापुरीमें महाराज कुम्भारायके यहाँ सुप्रभावती महारानीके गर्भसे मलिन्याय तीर्थंकर हो उसने निर्वाणपद पाया।

दश लक्षणव्रत अत्यन्त प्रभावशाली है। इस व्रतके निकाम पालन करनेसे लौकिक अभ्युदयोंके साथ स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। महान् पापके उदयसे प्रातः स्त्रीपर्यायका छेद भी इस व्रतके दशलक्षण-व्रतकथा धारण करनेसे हो जाता है। बताया गया है कि

प्राचीन कालमें धातकीखण्डके पूर्वविदेह देशमें सीतोदा नदीके तटपर विशालाक्षा नामकी नगरी थी। इस नगरके राजा प्रियंकरकी पुत्री मृगाङ्क-रेखा, इस तृपतिके मन्त्रीकी पुत्री कामसेना, इस नगरीके सेठ मत्तिसागर की पुत्री मदनवेगा और लक्ष्मद्र पुरोहितकी पुत्री रोहिणी इन चारोंने एक ही साथ एक ही गुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी। एक दिन वसन्त ऋतुमें ये चारों कन्याएँ अपने अभिभावकोंकी आज्ञा लेकर वनक्रीड़ाके लिए

निकलीं। ये चारों वनकी शोभा देखती देखती बहुत दूर निकल गयीं। वसन्तके कारण वनके प्रत्येक वृक्षमें नया जीवन, नयी स्फूर्ति और नयी उमंग दिखलायी पड़ रही थी। वन-सुगन्धा अपना सर्वत्र साम्राज्य स्थापित किये हुए थी। शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर उनके चित्तको विश्रान्ति दे रहा था। वे चारों कन्याएँ आनन्दविमोर हो प्रकृतिके सौन्दर्यावलोकनमें मगन थीं। इसी बीच उनकी दृष्टि एक वृक्षके नीचे शिलातलपर बैठे हुए मुनिराजकी ओर गयी। उन कन्याओंने भक्तिभावपूर्वक उन योगियाजको नमस्कार किया और उनसे इस निन्द्य स्त्रीपर्यायसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय पूछा।

मुनिराज—‘बालिकाओं! मनुष्य अपने आचरणके कारण ही उन्नत या अवनत होता है। कर्मवश यह परतन्त्र आत्मा अहर्निश राग-द्वेषमें संलग्न रहती है। जब तक आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि विकारोंसे युक्त है, तबतक इसे संसारमें अनेक पर्याय धारण करनी पड़ती है। पर्याय धारण करनेका कारण कर्म ही है। अतः समस्त वैभाविक पर्यायोंके त्यागका कारण आत्मानुभूतिकी प्राप्ति है। जब प्राणीको आत्मानुभूति हो जाती है, तब उसे यथार्थ सुखकी प्राप्ति हो जाती है। यह सुख कहीं बाहरसे नहीं आता है और न यह आत्माके अखण्ड स्वरूपसे भिन्न कोई पदार्थ ही है। अतः अपनी आत्माका निज स्वभाव प्राप्त करनेके लिए तीन मोहोदयको हटाना चाहिए। इसके लिए उत्तम दशलक्षण व्रतका पालन करना आवश्यक है। यह व्रत समस्त पापोंको नाश करने-वाला है तथा सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है।’

मुनिराजसे विधिपूर्वक व्रत ग्रहण कर वे चारों कन्याएँ नगरमें वापस लौट आईं और विधिपूर्वक व्रत पालन करनेमें संलग्न हो गईं। विधिपूर्वक दस वर्ष पर्यन्त व्रतका पालनकर उन्होंने उद्यापन कर दिया। आयुके अन्तिम समय समाधिभरण धारण किया; जिससे वे चारों ही कन्याएँ महाशुक्र नामक दसवें स्वर्गमें अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्षिक देव हुईं। वहाँसे च्युत होकर वे देव उज्जयिनी नगरीके

राजा मूलभद्रके घर लक्ष्मीमती रानीके गर्भमें पूर्णकुमार, देवराज, गुण-चन्द्र और पद्मकुमार नामक सुन्दर पुत्र हुए। समय पाकर इनके विवाह नन्दन नगरके राजाकी कलावती, ब्राह्मी, इन्दुगात्री और कंकू नामकी कन्याओंके साथ हुए। ये दम्पति बहुत समय तक आनन्दपूर्वक संसारके सुख भोगते रहे। राजा मूलभद्रके विरक्त होकर दीक्षा धारण करनेके उप-रान्त चारों पुत्रोंने धर्मनीतिपूर्वक राज्यका संचालन किया। कुछ समय पश्चात् चारों ही संसारसे विरक्त हो गये और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर उग्रतपश्चरण किया, जिससे इन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। पश्चात् योग-निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया।

विहार प्रदेशमें राजगृही नामकी नगरी है। यहाँ प्राचीनकालमें राजा हेमप्रभु अपनी रानी विजयावती सहित राज्य करते थे। इस राजाके यहाँ पोद्दशकारण व्रत कथा महाशर्मा नामक ब्राह्मण नौकर था और इसकी स्त्री का नाम प्रियंवदा था। इस प्रियंवदाके गर्भसे काल-भैरवी नामकी अत्यन्त कुरूप कन्या उत्पन्न हुई; जिससे देखकर सभी लोग घृणा करते थे।

एक दिन मलिसागर नामक चारणमुनि आकाशमार्गसे गमन करते हुए उस नगरमें आये। महाशर्मा भक्तिपूर्वक पङ्गाहकर उन्हें विधिपूर्वक आहार दान दिया। पश्चात् विनयपूर्वक अपनी कन्याके कुरूप और कुलक्षणी होनेका कारण पूछा। मुनिराजने अवधिज्ञानद्वारा समस्त वृत्तान्त ज्ञातकर कहा—‘यह कन्या पूर्वभवंसे उज्जयिनी नगरीके राजा महीपालकी विशालाक्षी नामकी पुत्री थी। एक दिन इसने अभिमानमें आकर चर्यासे निवृत्त होकर जाते समय महातपस्वी ज्ञानसूर्य नामक मुनि-राजके ऊपर शूक दिया। पश्चात् राजपुरोहितद्वारा धमकाये जाने पर इसे पश्चात्ताप हुआ और इसने मुनिराजके पास जाकर नमोऽस्तु कर क्षमा याचना की। वहाँसे मरणकर यह आपके यहाँ पूर्वजन्ममें मुनि-उपसर्ग करनेके कारण कुरूप हुई है।’ पुनः महाशर्मोंने हाथ जोड़कर कहा—‘प्रभो! इस पापसे छुटकारा पानेका उपाय कहें।’

मुनिराज—‘वत्स! धर्मका प्रभाव संसारमें अमिट होता है। जो व्यक्ति धर्मधारण करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रत—तपश्चरण करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरके संचित कर्म भस्म हो जाते हैं। अतः उसकी यह कन्या पोद्दश कारण भावना भावे और इस व्रतका पालन करे तो इसका यह पाप भस्म हो जायगा तथा यह स्त्री लिए छेद कर मोक्ष भी प्राप्त कर लेगी।’

मुनिराजद्वारा बतलायी हुई विधिसे कुरूपाने इस व्रतका पालन किया। सोलह वर्ष तक उस व्रतका पालन करनेके उपरान्त उसने उस व्रतका उद्यापन कर दिया। पश्चात् समाधिमरण धारण कर प्राण त्याग किया, जिससे स्त्री पर्यायका विनाशकर सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे च्युत होकर उस व्रत द्वारा किये गये पुण्यार्जनके प्रभावसे उसने विदेह-क्षेत्रमें सीमन्धर तीर्थंकरका पद प्राप्त किया। यह सोलहकारण व्रत तीर्थ-कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला है, विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करनेसे आत्मा अत्यन्त पवित्र हो जाती है।

अष्टाहिका व्रतके पालन करनेसे आज तक अगणित व्यक्तियोंने अपनी आत्माको पावन किया है। इस व्रतका पालन कर मैतसुन्दरीके अष्टाहिका व्रतकथा व्रतोपाहित पुण्यद्वारा कोटिभट राजा श्रीपाल तथा उनके ७०० वीरोंका गलित कुछ दूर हुआ। इस व्रतके प्रभावसे अनन्तवीर्यने चक्रवर्तीका पद और जरासिन्धुने प्रतिवासुदेवका पद प्राप्त किया। सुलोचनाने व्रत जनित पुण्यके कारण सन्यासमरण धारणकर स्वर्ग प्राप्त किया। इस व्रतकी प्रसिद्ध कथा निम्न प्रकार है—

‘अयोध्या नगरीमें हरिषेण नामका चक्रवर्ती सम्राट् अपनी गन्धर्व-सेना नामक पटशर्नोके साथ न्यायपूर्वक शासन करता था। एक दिन सम्राट् अपनी छेयानवे हजार रानियों सहित वनश्रीवाके लिए गया। वहाँ उसने एक निरापद स्थानमें शिलापट्टपर आसीन अरिञ्जय और अमिता-उज्जय नामके दो चारणमुनियोंको ध्यानारूढ़ देखा। ‘राजा भक्तिपूर्वक

मुनिराजोंके पास गया और नमोऽस्तु कर बोला—‘स्वामिन् ! मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे यह बड़ी विभूति मुझे प्राप्त हुई है ?’

श्रीगुरु—राजन् ! इसी अयोध्या नगरीमें कुबेरदत्त नामके सेठके तीन पुत्र थे—श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयवर्मा। श्रीवर्मा दैशवसे ही विचार-शील और धार्मिक प्रकृतिका था। एक दिन इसने मुनिराजकी वन्दना कर नन्दीश्वर व्रत लिया। इसने इस व्रतका आचरण बड़ी सावधानीके साथ किया। आयुके अन्तमें समाधिभरण धारण किया, जिससे यह प्रथम स्वर्गमें महर्दिक देव हुआ और वहाँ असंख्यात वर्षों तक देवोचित सुख भोगकर तुम यहाँ चक्रवर्ती हुए हो। अष्टाहिका व्रतके प्रभावसे तुमको नवनिधि, चौदह रत्न, छयानवे हजार रानियाँ आदि विभूतिके साथ छः खण्डका राज्य प्राप्त हुआ है। तुम्हारे भाई जयकीर्ति और जयवर्माने भी धर्मगुरुसे श्रावकके व्रत ग्रहण किये तथा उन दोनोंने भी अष्टाहिका व्रतका पालन किया जिसके प्रभावसे समाधिभरण धारण किया तथा स्वर्गमें महर्दिक देव हुए। परचात् वहाँसे चयकर हस्तिनापुरमें विसल नामक सेठकी स्त्री लक्ष्मवतीके गर्भसे अरिजय और अमितंजय नामके पुत्र हुए। ये दोनों भाई हम हैं।’ इस प्रकार व्रतका माहात्म्य सुन राजा प्रसन्न हुआ। यह व्रत समस्त मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इसके पालन करनेसे दुःख दारिद्र्य नष्ट हो जाते हैं तथा अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है। सन्तान प्राप्त करनेवालोंको इस व्रतका श्रद्धा रविव्रत कथा और विधिके साथ पालन करना चाहिए, निरवच्य

उनकी मनोकामना पूर्ण होगी। इस व्रतकी कथा निम्न प्रकार है—

प्राचीन कालमें वाराणसी नगरीके शासक महीपाल नृपति थे। इसके राज्यमें मतिसागर नामक सेठ अपनी गुणसुन्दरी नामकी स्त्रीके साथ सुखपूर्वक निवास करता था। सेठको सात पुत्र थे; सभी होनहार, योग्य और विद्वान्। एक दिन इस नगरीकी वाटिकाके बाहरी भागमें गुण-सागर नामके मुनिराज पधारे। मुनिराजके आगमनका समाचार सुनकर नगरके नर-नारी मुनिदर्शनके लिए गये। सेठानी गुणसुन्दरी भी वहाँ

गयी। धर्मपदेश सुननेके पश्चात् उसने मुनिराजसे करवद्ध प्रार्थना की—‘प्रभो ! मुझे कोई व्रत दीजिए’।

मुनिराज—‘व्रतसे ! श्रावकको दृढ-श्रद्धानी होकर अपने मूल गुण और उत्तर गुणोंको निर्मल करना चाहिए। वेदी ! तुम रविव्रत करना आरम्भ करो। यह व्रत सभी हृच्छाओंको पूर्ण करनेवाला है तथा इसके द्वारा आत्मकल्याण भी होता है’।

गुणसुन्दरी व्रत ग्रहण कर घर आई। उसने अपने परिवारके सभी व्यक्तियोंको मुनिराज-द्वारा ग्रहण किये गये व्रतकी बात कही। सभी लोग रविव्रतकी बात सुनकर हैंसने लगे और सबने व्रतका निरादर किया। कुछ समय पश्चात् पापके उदयसे मतिसागर सेठकी सम्पत्ति क्षीण होने लगी। धीरे-धीरे उसके घरमें दारिद्र्यता देवीने आसन जमा लिया। सेठके सार्वो पुत्र परदेश चले गये और वे अयोध्यानगरीके सेठ जिनदत्तके घर जाकर नौकरी करने लगे। सेठ-सेठानी वाराणसीमें रहकर दुःख भोगने लगे। उनके यहाँ अन्नाभाव रहनेसे किसी-किसी दिन उन्हें निराहार रह जाना पड़ता था। पुत्रोंके वियोगके कारण सेठ-सेठानीको और अधिक वेदना थी। एक दिन उस नगरीमें अवधिशानी मुनिका आगमन हुआ। सेठके साथ गुणसुन्दरी मुनिदर्शनके लिए गई और अपनी दारिद्र्यताका कारण पूछा। मुनिराज—‘वेदी ! तुमने लिये गये व्रतकी अवहेलना की है, इसी का यह परिणाम है। अब तुम पुनः रविवारव्रतको करना आरम्भ करो, तुम्हारा संकट सब दूर हो जायगा।’ सेठ-सेठानीने मुनिराजसे पुनः व्रत ग्रहण कर लिया और दोनोंने विधिपूर्वक व्रतका पालन करना आरम्भ किया। व्रतके प्रभावसे उनका समस्त दुःख-दारिद्र्य नष्ट हो गया तथा उनके पुत्र भी उनके पास चले आये। कुछ समय पश्चात् सेठ मतिसागर ने आयुका अन्त जान सन्यास भरण धारण किया, जिसके प्रभावसे उसे उत्तम भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई। कुछ कालके पश्चात् उसने निर्वाणपद प्राप्त किया।

श्रुतस्कन्ध व्रत करनेसे ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जरा होती है। जिन्हें

विद्याकी सिद्धि करनी हो, शानी बनना हो; उन्हें इस व्रतका पालन अवश्य करना चाहिए। इस व्रतके प्रभावसे धनकी श्रुतस्कन्धव्रत कथा

प्राप्ति, यश-कुलकी वृद्धि तथा शान-विज्ञानकी प्राप्ति होती है। कथामें बताया गया है कि प्राचीनकालमें पटना नगरके राजा चन्द्ररचिकी पट्टरानी चन्द्रप्रभाके श्रुतशालिनी नामकी सुन्दरी कन्या थी। इस कन्याको जिनमति नामकी आर्थिकके पास अध्ययनार्थ भेजा गया। कन्या थोड़े ही दिनोंमें विद्यामें पारंगत हो गयी। कन्याने एक दिन वहाँ-पर चौकीपर श्रुतस्कन्धका मण्डल बनाकर द्वादशाङ्ग जिनवाणीकी पूजा की, जिसे देखकर आर्थिकका अत्यन्त प्रसन्न हुया तथा उसे पूर्ण विदुषी समझ राजाके यहाँ भेज दिया।

एक दिन इस नगरके उद्यानमें वर्द्धमान नामके मुनि आये। मुनिके आगमनका समाचार सुन कर राजा पुरजन-परिजनके साथ उनकी वन्दनाके लिए गया। मुनिराजने धर्मोपदेश दिया, सभीने यथाशक्ति व्रत ग्रहण किये। पश्चात् राजाने कन्याकी ओर देखकर पूछा—‘स्वामिन् ! यह कन्या किस पुण्यसे इतनी सुन्दरी और विदुषी हुयी है ? इसने पूर्व जन्ममें किस प्रकारके व्रत धारण किये हैं ?’

मुनिराज—‘राजन् ! पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। यहाँ गुणभद्र नामका राजा और गुणवती नामकी रानी थी। एक दिन राजा रानी सहित सीमन्धर स्वामीकी वन्दनाके लिए गया और वहाँ वन्दना कर मनुष्यके कोठेमें बैठकर धर्मोपदेश सुना। पश्चात् राजाने प्रश्न किया—‘प्रभो, श्रुतस्कन्ध व्रतका क्या स्वरूप और प्रभाव अवगत कर व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे वे राजा-राज्ञी स्वर्गमें इन्द्र और इन्द्राणी हुए। वहाँसे रानीका जीव चय कर तुम्हारे यहाँ श्रुतशालिनी नामकी कन्या हुआ है। इस प्रकार गुरुमुखसे व्रतका माहात्म्य सुनकर कन्याने पुनः श्रुतस्कन्धव्रत धारण किया। विषय और कथायोंको अत्यन्त मन्द कर आत्मशोधनमें संलग्न हो गयी। व्रतके

प्रभावसे अन्तस्समयमें समाधिभरण धारण कर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ अनुपम सुख भोगकर अपरविदेहमें कुमुदवती देशके अशोकपुरमें पद्मनाभ राजाकी पट्टरानी जितपद्माके गर्भमें वह जीवधर नामका तीर्थंकर हुआ। साथ ही इसे चक्रवर्ती और कामदेव पद भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार श्रुतशालिनीके जीवने श्रुतस्कन्धव्रतके प्रभावसे निर्वाणपद प्राप्त किया।

पुष्पाञ्जलिब्रत आत्माके शोधनके साथ सांसारिक दृष्ट पदार्थोंकी उप-लब्धिका भी कारण है। इस व्रतके आख्यानमें बतलाया गया है कि पुष्पाञ्जलिब्रत कथा विदेहमें सीता-नदीके दक्षिण तटपर मंगलावती देशमें

अपनी रानी जयावती सहित सानन्द राज्य करता था। सन्तान न होनेके कारण रानी अत्यन्त उदास रहती थी। एक दिन जब राजा पत्नीसहित जिनमन्दिरमें दर्शनके लिए गया हुआ था, तो इस दम्पतिने वहाँ शान-सागर मुनिराजके दर्शन किये। अक्सर पाकर राजाने मुनिराजसे पूछा—‘प्रभो : हमारी रानीको पुत्र न होनेका क्या कारण है ? क्या इसे पुत्रकी प्राप्ति होगी ?’ मुनिराजने कहा—‘राजन्, आपके यहाँ शीघ्र ही प्रभावशाली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा’।

राजा रानीसहित घर आया और आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। कुछ समय उपरान्त राजाको एक सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई; जिसका नाम रत्नशेखर रखा। रत्नशेखर बचपनसे ही होनहार और प्रतिभाशाली था। एक दिन जब यह बच्चेमें ब्रीड़ा कर रहा था, तब आकाशमार्गसे जाते हुए मेघवाहन नामके विद्याधरने इसे देखा। रत्न-शेखरके प्रति मेघवाहनके हृदयमें अपूर्व प्रेम उमड़ा और वह नीचे उतरा तथा इसका भिन्न बन गया। रत्नशेखरने मेघवाहनके सहयोगसे पाँच सौ विद्याएँ सीख लीं तथा विमान-रचनाका प्रकार भी ज्ञात कर लिया। अब उसने मेघवाहन आदि मित्रोंके साथ ढाई द्वीपके समस्त जिनालयोंकी वन्दनाके लिए प्रस्थान किया। वह विजयार्धपर्वतके शिखरद्वय चैत्यालयमें पूजा-स्तवनकर बैठा ही था कि इतनेमें दक्षिणश्रेणीके अधिपति रथचतुर

नगरकी राजकन्या मदनमंजूषा भी सखियों सहित दर्शनके लिए आयी । उसकी जैसे ही रत्नशेखरपर दृष्टि पड़ी, वैसे ही उसने अपना हृदय रत्नशेखरको सौंप दिया । अब वह उदास रहने लगी, राजा-रानीने उसकी उदासीका कारण ज्ञातकर स्वयंवर-मण्डपका आयोजन किया । स्वयंवरमें रत्नशेखर भी सम्मिलित हुआ । कुमारीने वरमाला रत्नशेखरके गलेमें डाल दी, जिससे अन्य समस्त विद्याधर रह हुए । वे कहने लगे, “विद्याधर कन्या विद्याधरोंको छोड़कर भूमिगोचरीके साथ विवाह नहीं कर सकती है । जब विवाद अधिक बढ़ गया तो रत्नशेखरका विद्याधरोंके साथ युद्ध होने लगा । उसने अपने पराक्रम-द्वारा सभी विरोधी विद्याधरोंको परास्त कर दिया । इसीसमय उसे चक्रलको भी प्राप्ति हुई । अब उसने षट्क्षण्ड पृथ्वीको वशमें कर लिया और चक्रवर्तीके पदसे शोभित हो गया ।

एक दिन चक्रवर्ती रत्नशेखर माता-पिता सहित मुदर्शन मेरुकी वन्दनाके लिए गया हुआ था । वहाँ उसने भाग्योदयसे दो चारण मुनियोंके दर्शन किये और अपने भवान्तर मुनिराजसे पूछे तथा यह भी प्रार्थना की कि मदनमंजूषा और मेघवाहनका मुझपर क्यों अधिक प्रेम है ?

मुनिराज—‘सम्राट् ! भरत क्षेत्रमें मृणालपुर नामका नगर है । इस नगरका शासन राजा जितादि अपनी रानी कनकावतीके साथ करता था । इस नगरमें श्रुतकीर्ति नामका ब्राह्मण अपनी स्त्री बन्धुमतीके साथ रहता था । इस विप्रदेवके प्रभावती नामकी पुत्री थी । इस पुत्रीने जैनगुरुसे शिक्षा प्राप्त की थी, अतः इसका सम्यग्दर्शन निरन्तर उज्ज्वल होता जा रहा था ।

एक दिन ब्राह्मण सपत्नीक वनक्रीड़ाके लिए गया । वहाँ उसकी स्त्रीको सौंपने काट लिया, जिससे उसका प्राणान्त हो गया । पत्नीके वियोगसे विप्रदेव वेदना-विह्वल हो गया, उसकी अवस्था उन्मत्तों जैसी हो गई । कुमारी प्रभावतीने पिताको बहुत समझाया । संसारका स्वरूप बतलाया तथा कर्मगतिकी विचित्रता समझाकर उसे शान्त किया । पश्चात् उसे दिगम्बर दीक्षा दिलायी । श्रुतकीर्तिने उग्र

तपश्चरण कर कुछ ऋद्धियाँ प्राप्त कर लीं तथा अनेक तन्त्र-मन्त्र शिद्धकर वह श्रद्धा हो गया तथा विद्याके प्रभावसे नगर बसाकर गढ़स्थी सहित रहने लगा । जब प्रभावतीको यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह अपने पिताके पास आई और उसे समझाया—“पिताजी, आपने पवित्र दिगम्बर दीक्षा धारण की है । यह आत्माका कल्याण करनेवाली है । आप इस ममतामें फँसकर अपने धर्मको कलंकित न करें ।” पुत्रीकी बातोंका प्रभाव श्रुतकीर्तिपर कुछ नहीं हुआ, वह प्रभावतीकी बातोंसे चिढ़ गया, अतः उसने विद्याबलसे उसे एक नीरव वनमें छोड़ दिया । प्रभावती नमस्कार मन्त्र जपती हुई वनमें बैठी थी कि वहाँ वनदेवी प्रस्तुत हुई और बोली—‘बेटी ! तुम्हारी दृढ़ता, शीलव्रत और अद्वैतभक्तिने मुझे विचलित कर दिया है । मैं तुमसे अधिक प्रसन्न हूँ । तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, कहो । मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको पूर्ण करना चाहती हूँ । प्रभावतीने कैलाशयात्राकी इच्छा प्रकट की । देवीने अपने प्रभावसे उसे कैलाशपर पहुँचा दिया । प्रभावती वहाँ भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीके दिन पहुँची, इस दिन देव भी वहाँ भगवान्की पूजा करनेके लिए आये हुए थे । यहाँपर प्रभावतीने पद्मावतीदेवीके निर्देशानुसार गुप्ताञ्जलि व्रत धारण किया और उसका विधिवत् पालन करना आरम्भ कर दिया । उसने वहाँ रहकर पाँच वर्ष तक यह व्रत पाला तथा इसके पश्चात् उद्यापन कर दिया । उद्यापनके उपरान्त पद्मावती देवीने इसे मृणालपुर पहुँचा दिया । वहाँ जाकर इसने स्वयंप्रभु गुरुसे आर्थिकके व्रत ग्रहण कर लिये और उग्र तपश्चरण करने लगी । इसकी तपस्याकी प्रशंसा सर्वत्र होने लगी । पिता श्रुतकीर्तिको प्रभावतीकी प्रशंसा सत्य नहीं हुई । अतः उसने उसकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित करनेके लिए विद्याएँ भेजी, पर प्रभावती उन विद्याओंसे तनिक भी विचलित नहीं हुई । अन्तमें समाधिमरण धारणकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई । उसका नाम पद्मनाभ रखा गया ।

एक दिन पद्मनाभ देवने विचार किया कि हमारे पूर्व जन्मका पिता मिथ्यात्वमें फँस गया है । इसका उद्धार करना आवश्यक है । अतः वह

श्रुतकीर्तिके पास गया तथा उसे खूब समझाया । श्रुतकीर्तिने समस्त प्रपंच छोड़ दिये और वह जिनोक्त तपश्चरणमें संलग्न हो गया । आयुके अन्तिम समयमें समाधिभरण धारण किया जिसके प्रभावसे वह स्वर्गमें प्रभासदेव हुआ । वही पद्मनाभदेव स्वर्गसे चयकर तुम रत्नशेखर हुए हो और तुम्हारी स्वर्गकी देवी यह मदनमंजूषा हुई है । मेघवाहन तुम्हारे पूर्वभवके पिता श्रुतकीर्तिका जीव है । पुष्पाञ्जलि व्रतकी इस महिमाको सुनकर चक्रवर्तिने इस व्रतको ग्रहण कर लिया । कुछ समय तक राज्य करनेके उपरान्त उसे विरक्ति हो गई और दिगम्बर दीक्षा धारणकर उप तपश्चरण किया । केवलज्ञान-रत्नमीकी प्राप्ति की । तत्पश्चात् योगनिरोध कर अघातिघात कर्मोंको नाशकर मोक्ष प्राप्त किया ।

रोहिणी व्रतका समाजमें अधिक प्रचार है । इस व्रतके पालन करनेसे धन, ऐश्वर्य, पुत्र, विद्याकी प्राप्ति एवं अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति होती है । रोहिणी व्रत-कथा कुमार अशोक अपनी प्रिया रोहिणीके शान्त स्वभावके कारण अत्यधिक चिन्तित था । एक दिन उसने मुनिराजके दर्शनकर उनसे अपनी प्रियाके शान्त रहनेका कारण पूछा ।

मुनिराज—“कुमार, प्राचीनकालमें इसी नगरमें एक धनमित्र नामका व्यक्ति रहता था । इसके दुर्गन्धा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । इस कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे मातापिता अत्यन्त चिन्तित रहते थे कि इसका विवाह किस प्रकार होगा । किसी प्रकार उसका विवाह शीघ्र नामक वयसनी व्यक्तिके साथ सम्पन्न हो गया । शीघ्र भी अपनी पत्नीको एक ही महीनेमें त्यागकर चला गया, जिससे दुर्गन्धाको महान् क्रोध रहने लगा । एक दिन अमृतसेन नामके मुनि उस नगरमें आये । धनमित्र अपनी कन्या दुर्गन्धासहित उनकी चन्दनाके लिए गया । अवसर पाकर उसने दुर्गन्धाके भगन्तर उनसे पूछे ।”

मुनिराज—“कत ! सोरठ देशमें गिरनार पर्वतके निकट एक नगर है । उसमें भूपाल नामका राजा अपनी भार्या किशुमती सहित निवास करता है ।

एक दिन वसन्त ऋतुमें राजा रानी सहित वनश्रीड़ाको गया । मार्गमें मुनिराजको देखकर राजाने रानीसे कहा—“तुम लौट जाओ, मुनिराजके लिए आहार तैयार करो । रानी राजाके आदेशानुसार लौट तो आई, पर मुनिराजको वन-विहारमें बाधक समझकर उसने कहुवे लौकेका आहार तय्यार किया । मुनि राजा चर्याके लिए आये । रानीने पड़गाहकर उन्हें कहुवे लौकेका आहार करा दिया, जिससे मुनिराजके शरीरमें अपार वेदना हुई और उनकी प्राणान्त हो गया । रानीके दुःखत्यक्तो बात राजाको अवगत हुई, अतः उसने उसे घरसे निकाल दिया । रानीके शरीरमें उसी जन्ममें गलित कुष्ठ उत्पन्न हो गया, जिससे संकल्प-विकल्प पूर्वक उसने प्राण त्याग किये, जिसके प्रभावसे वह नरक गई । वहाँसे च्युत होकर गायका जन्म धारण किया और अब यह तुम्हारे यहाँ दुर्गन्धा हुई है ।”

धनमित्र—“स्वामिन् ! इसके पापके प्रायश्चित्तके लिए कोई व्रतविधान वतलानेकी कृपा करें, जिससे इसका जीवन सुखी हो सके ।”

मुनिराज—“कत ! सम्यग्दर्शन-सहित प्रतिमास रोहिणी नक्षत्रके दिन उपवास करे । इस दिनको चैत्यालयमें धर्मध्यान, पूजन आदिके साथ व्यतीत करे । ५ वर्ष और ५ मास तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन कर दे ।” दुर्गन्धाने मुनिराजद्वारा प्रतिपादित विधिके अनुसार उक्त व्रतका पालन किया, जिसके प्रभावसे यह प्रथम स्वर्गमें देवी हुई । वहाँसे च्युत होकर यह तुम्हारी भार्या बनी है । तुम भी पहले भील थे । तुमने एक मुनिराजको घोर उपसर्ग दिया था, जिस पापके कारण तुम सातवें नरक गये । वहाँसे निकलकर अनेक कुर्योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् एक वणिक्के घर जन्म लिया । तुम्हारा शरीर वहाँ अत्यन्त दूषित और दुर्गन्धित था । तुम्हारे पास भी कोई नहीं आता था । तुमने मुनिराजसे रोहिणी व्रत ग्रहण किया । व्रतके प्रभावसे तुम स्वर्गमें देव हुए । वहाँसे च्युत होकर विदेहमें अर्ककीर्ति चक्रवर्ती हुए । वहाँ दीक्षा धारण कर तपस्या की, जिससे देवेन्द्र पद प्राप्त किया । स्वर्गसे च्युत होकर तुम अशोक नामके राजा हुए हो । राजा अशोकने कालान्तरमें दीक्षा धारणकर तपश्चरण

किया; जिससे उसे निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई। रोहिणीने भी समाधिभरण धारण कर स्त्री-पर्यायका छेद कर स्वर्गमें देव पद प्राप्त किया।

लब्धिविधान व्रतका पालन करनेसे समस्त संचित पाप भस्म हो जाता है। आत्मामें ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। व्रतलाया गया है कि लब्धिविधान व्रत

कथा

वनारस नगरीके राजा विश्वसेनकी रानीका नाम विशालनयना था। इसकी दो सखियाँ थीं—चमरी और रंगी। एक दिन राजाने अपनी सभामें एक अभिनयका आयोजन कराया। अभिनय बहुत ही सुन्दर हुआ। रानी अभिनेताओंकी कुशलतापर सुख हो गई और उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया। रानी एक दिन रातमें अपनी दोनों सखियोंके साथ घरसे निकल पड़ी और श्रद्धा होकर वेश्या कर्म करने लगी। इन तीनों ने एक दिन मुनिराजकी तपस्यामें विघ्न उत्पन्न किया, उन्हें नाना प्रकारके उपसर्ग दिये। इसी पापके उदयसे उन तीनोंको बहुत कालतक अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करना पड़ा। पश्चात् उज्जयिनी नगरीके पास पलास नामके ग्राममें एक शूद्रके घर तीनों पुत्रियाँ हुईं, जो अत्यन्त कुरुपा थीं। इनके माता-पिता जन्मते ही मरणको प्राप्त हो गये थे, इनके कुसित व्यवहारके कारण ग्रामवासियोंने इन तीनोंको ग्रामसे निकाल दिया था। फलतः तीनों ही भटकती हुईं पाटलिपुत्रके उद्यानमें पहुँचीं। वहाँ मुनिराजके दर्शन कर तीनोंने अपने जन्मको धन्य समझा। उनके उपदेशामृतसे प्रभावित होकर तीनोंने लब्धिविधान व्रत ग्रहण किया और उसका बहुत ही श्रद्धा और भक्तिके साथ पालन करने लगीं। व्रताचरणके कारण उनकी परिणति निर्मल होने लगी, परिणामोंमें कोमलता आ गई। उन्होंने आयुके अन्तमें समाधिभरण धारण किया, जिससे व्रतके प्रभावसे वे पौंचवें स्वर्गमें देव हुईं। वहाँसे चयकर विशालनयनाका जीव तो मगध देशके वाडवनगरमें काश्यपोत्रीय सांडिल्य ब्राह्मणकी सांडिल्या स्त्रीके गौतम नामका पुत्र हुआ। यही गौतम भगवान् महावीरके समवशरणका प्रथम गणधर हुआ, जिसने निर्वाणपद पाया। चमरी और रंगीके जीव देवपर्याय

से चयकर मनुष्य हुए। व्रतके संस्कारके कारण इनकी आत्मामें निर्मलता थी, अतः निमित्त पाकर ये विरक्त हुए तथा दिगम्बरी दीक्षा धारण कर तपश्चरण करने लगे। उत्तरोत्तर उग्र तपश्चरण धारण करनेके कारण इन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् योगोंका निरोध कर अथाविद्या कर्मोंका नाश किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

इस व्रतका फल अनेक भव्यजीवोंको प्राप्त हुआ है। बताया गया है कि प्राचीनकालमें विजयाद्वकी उत्तरश्रेणीमें शिवमन्दिर नामका नगर

सुगन्धदशमी व्रतकथा था। वहाँके राजाका नाम प्रियंकर और रानीका नाम मनोरमा था। इन्हें अपने धन-यौवनका

अत्यन्त गर्व था, जिससे रानी मनोरमाने सुगुप्त नामके मुनिके ऊपर जो कि नगरमें परिचर्याके लिए जा रहे थे, पानकी पीक थूक दी; जिससे मुनिराज अन्तराय होनेके कारण बिना ही आहार किये वनको लौट गये।

मुनिको उपसर्ग देनेके कारण रानी मरकर गयी हुई, पुनः शूद्ररी, कूकरी पर्यायोंको धारण करनेके उपरान्त मगधदेशके वसन्ततिलक नगरमें विजयसेन राजाकी रानी विजलेखाके गर्भसे दुर्गन्धा नामकी कन्या हुई। कन्याके शरीरसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे इसके निकट कोई नहीं रह सकता था।

एक दिन उस नगरमें सागरसेन नामके मुनि पधारे। मुनिके दर्शनके लिए सारा नगर उमड़ चला। राजा भी वन्दनाके लिए गया और उसने अवसर पाकर मुनिराजसे पूछा—‘प्रभो! मेरी इस कन्याकी यह अवस्था किस कारणसे हुई है?’ मुनिराजने दुर्गन्धाकी पूर्वभावावलीका निरूपण कर बताया कि मुनिराजका अपमान करनेका यह फल प्राप्त हुआ है। पुनः राजाने कहा—‘स्वामिन्! इस पापसे छुटकारा कैसे होगा?’

मुनिराज—‘राजन्! सम्यग्दर्शन सहित श्रावकके व्रत धारण करने एवं सुगन्धदशमी व्रतका पालन करनेसे यह अशुभ कर्म नष्ट हो जायगा। दुर्गन्धाने मुनिराजका आदेश स्वीकार कर सुगन्धदशमी व्रत ग्रहण कर लिया। विधिपूर्वक व्रतके पालन करनेसे निदान बौध्दिके कारण वह स्वर्गमें

अपसरा हुई। पश्चात् वहाँसे चयकर भगवद्देशके पृथ्वीलिलक नगरके राजा महिपालकी रानी मदनसुन्दरीके मदनवावती नामकी कन्या हुई। यह कन्या अत्यन्त सुन्दरी और सुगन्धित शरीरवाली थी। इसका विवाह कौशाम्बीनरेश अरिदमनके पुत्र पुरुषोत्तमके साथ सम्पन्न हुआ। कुछ दिनोंके उपरान्त मदनवातीने संसारसे विरक्त होकर आर्थिकाके व्रत धारण किये। उग्र तपश्चरणके प्रभावसे उसने स्त्रीपर्यायका छेद किया और सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहाँसे च्युत होकर वह वसुधारा नगरीके मकरकेतु राजाके यहाँ कामकेतु नामका पुत्र हुई और दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

यह व्रत स्वर्गापवर्ग देनेवाला है। इस व्रतके पालन करनेसे धनधान्यश्री प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि अपर विदेह क्षेत्रमें गांधिलजिनगुणसम्पत्ति नामका देश है, इसमें पाटलीपुर नामके नगरमें नागव्रतकथा सेठानी रहती थी। निर्धन होनेके कारण नागदत्त और

सुमतिको लकड़ी दोनेका कार्य करना पड़ता था। एक दिन सुमति जंगलसे लकड़ी लेनेके लिए गयी हुई थी। वह प्यासकी वेदनासे त्रस्त होकर एक वृक्षके नीचे थककर बैठ गयी। उसने देखा कि बहुतसे व्यक्ति पिहितशिव नामके केवलीकी वन्दनाके लिए जा रहे हैं। वह भी अपनी वेदना भूलकर सब लोगोंके साथ भगवान्की वन्दनाके लिए चल दी। समवशरणमें पहुँचकर उसने भक्तिभावपूर्वक भगवान्की वन्दना की और एकाग्रचित्तसे उपदेश सुनने लगी। अक्सर पाकर उसने अपने दरिद्री होनेका कारण पूछा। भगवान्ने उसके भवान्तरोका वर्णन किया तथा मुनिनिन्दाके कारण ही इस प्रकारकी दरिद्रता प्राप्त होनेकी बात कही। पश्चात् उक्त महापापसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए जिनगुणसम्पत्ति व्रत पालन करनेकी बात कही। उसने श्रद्धा और भक्तिसहित उक्त व्रत ग्रहण किया। व्रतके प्रभावसे अनेक भव धारणकर वह हस्तिनापुरमें श्वेयानस नृपति हुई, जिसने भगवान् आदिनाथको आहार दिया, पश्चात्

दिगम्बरी दीक्षा धारणकर निर्वाणपद प्राप्त किया।

हस्तिनापुरके राजा विजयसेनकी रानीका नाम विजयावती था। उसके दो पुत्रियाँ थी। मुकुटशेखरी और विविशेखरी। इन दोनों बहनोंमें मुकुटसप्तमी व्रतकथा परस्पर अत्यन्त स्नेह था, एकके बिना दूसरी रह ही नहीं सकती थी। राजाने दोनों कन्याओंका

विवाह अयोध्याके राजपुत्र तिलकर्मणिके साथ कर दिया। एक दिन राजा विजयसेनने चारण ऋद्धिधारी मुनियोंसे पूछा—‘प्रभो! मेरी कन्याओंके पारस्परिक प्रेमका क्या कारण है?’ मुनिराज कहने लगे—‘इस नगरके सेठ धनदत्तकी कन्या जिनमतीका सख्यमात्र मालीकी कन्या वसन्तीके साथ था। दोनोंने मुनिराजके उपदेशसे मुकुटसप्तमी व्रत धारण किया। एक दिन वसोवेमें इन दोनों कन्याओंको सर्पने काट लिया। णमोकार मन्त्रका ध्यान करनेके कारण वे स्वर्गमें देवियाँ हुईं। वहाँसे चयकर तुम्हारे यहाँ कन्याएँ हुई हैं। इनका स्नेह भवान्तरसे चला आ रहा है। इस प्रकार भवान्तरकी कथा सुनकर उन कन्याओंने श्रावकके दादशव्रत धारण किये तथा मुकुटसप्तमी व्रत ग्रहण किया। विधिपूर्वक व्रतका पालन किया। आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे स्त्रीलिंगका छेदकर स्वर्गमें देव हुईं। अब वहाँसे चयकर मोक्षपद प्राप्त करेंगी।

त्रिलोकतीज व्रतका पालन हस्तिनापुरके राजा विशालदत्तकी रानी विजयसुन्दरीने किया था, जिसके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर देवपद प्राप्त किया और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर निर्वाणपद पाया।

इस व्रतको गुजरात देशकी खम्हुरी नगरीके सोमशर्मा ब्राह्मणके पुत्र यज्ञदत्तकी स्त्री सोमश्रीने धारण किया था; जिसके प्रभावसे वह श्रीधर ज्येष्ठजिनवरव्रतकथा राजाकी पुत्री कुम्भश्री हुई। मुनिराजके उपदेशसे इस भवमें उसने ज्येष्ठजिनवर व्रत धारण किया। प्रति दिन अभिषेक करके गन्धोदक लाकर अपनी पूर्वपर्यायकी सासुके

इस व्रतके अनुष्ठानसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। राजगृही नगरीके मेघ-

प्रत्यक्षा

पुत्रप्राप्तिमें अन्तराय हो रहा है । अतः इस पापके शासनके लिए अध्यक्ष-दशमी व्रतका पालन करो । उन दोनोंने मुनिके आदेशानुसार विधिपूर्वक व्रतका अनुष्ठान किया । परचात् उसका उद्यापन कर दिया । व्रतके प्रभावसे रानीको सात पुत्र और पाँच कन्याओंकी प्राप्ति हुई । राजानेने आयुके अन्तमें समाधिमरण धारण किया, जिससे स्वर्गकी प्राप्ति हुई । परचात् मोक्षपद प्राप्त किया ।

श्रवणद्वादशी
व्रतकथा

भक्तकथा

अनेक कुयोनिधोंमें परिभ्रमण करनेके उपरान्त यह उक्त राजाकी कानी, कुंवड़ी और कुरूप कन्या हुई थी। मुनिराज-द्वारा श्रवणद्वारद्वयी व्रत धारण करनेके प्रभावसे त्वर्गापवर्ग प्रातिके योग्य हुई।

आख्या

वैद्यके साथ ही कर दिया था। एक दिन देशाटन करते समय भीलोंने वैद्यराजको भारकर उसका सब धन लूट लिया। विशाला किसी प्रकार

इस व्रतका सम्यक् पालन करनेके कारण गोपाल नामका भूवाला

इस व्रतका पालन उज्जयिनी नगरके राजा हैमवमाने किया था,

इस व्रतका पालन दुग्न्धा नामकी द्राक्षणा कन्याने किया था, जिसके

मुकादलिमत आख्यान

वशरणमें दीक्षा ग्रहण की और उनका गणधरपद प्राप्त किया । पीछे तप-
श्चरण द्वारा कर्मानाश कर मोक्षपद प्राप्त किया ।

मेवमालावत आख्यान

या । एकदिन एक चारण ऋद्धिधारी मुनि पधारे । सेठने मुनिसे अपनी दरिद्रताके विनाशका उपाय पूछा । मुनिराजने मेघमालाव्रत करनेका उपदेश दिया । व्रतका पालन करनेसे उस दम्पसिके सारे दुःख नष्ट हो गये । वे स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुए और वहाँसे चयकर मनुष्य होकर कर्म-नाशकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

पाटलिपुत्र नगरमें पृथ्वीपाल राजा रहता था, इसकी रानीका नाम मदनवती था। इसी नगरमें सेठ अर्हदास भी अपनी पत्नी लक्ष्मीमतीके निर्दोषसमीपवत साथ रहते थे। इन्हींके पड़ोसमें सेठ धनपति भी रहता था, जिसकी स्त्रीका नाम नन्दनी था। नन्दनीके आख्यान

मुरारीनामका इकलौता पुत्र था, जिसकी साँपके काटनेसे मृत्यु हो गयी। नन्दनीके घरमें पुत्रशोकके कारण बहुत दिनोंतक कोलहल होता रहा। लक्ष्मीमतीने समझा कि नन्दनीके घर गायन हो रहा है, अतः वह भ्रमवश हँसती हुई उसके यहाँ गई। नन्दनीको लक्ष्मीका यह वार्ताव बुरा लगा और उसने बदला लेनेकी बात सोची। एकदिन अपनी दासी द्वारा एक साँप घड़ेमें बन्दकर लक्ष्मीमतीके पास हार कहलाकर भेजा। लक्ष्मीमतीने उसे घड़ेमेंसे खोल गलेमें पहन लिया। उसने गलेमें वह सच्चा हार दिखलाई पड़ता था। एक दिन रानी मदनवतीने लक्ष्मीमतीके गलेमें उस तरहके हारको देखकर धर धाई और राजासे कहा—महाराज! मुझे लक्ष्मीमती सेठानी जैसा हार चाहिए। राजाने अगले दिन सेठ अर्हदासको बुलाकर वैसा ही हार बनवानेको कहा। सेठने उसी हारको ले जाकर राजाको भेंट किया; किन्तु यहाँ विचित्र दृश्य था। सेठके हाथका हार राजाके हाथमें जाते ही सर्प बन गया, इससे राजाको अत्यन्त आश्चर्य हुआ, और इसने मुनिराजसे इसका रहस्य पूछा। मुनिराजने निर्दोष समीपवतका प्रभाव बतलाया। राजा और सेठ अर्हदासने इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे वे देव हुए।

उज्जयिनीमें जिनदत्त सेठके पुत्र ईश्वरचन्द्र तथा उसकी पत्नी चन्दनपट्टीव्रत चन्दनाने इस व्रतका पालन किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गसुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस व्रतका पालन आजतक सहस्रों नर-नारियोंने किया है। प्रथमानुयोगमें अयोध्यानगरीके निकटवर्ती पद्मखण्ड नामक ग्राममें सोमशर्मा अनन्तचतुर्दशीव्रत ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री सोमने किया था, जिसके प्रभावसे स्वर्गादिक सुख भोगकर सोमशर्माने मोक्षपद

प्राप्त किया तथा सोमा भविष्यमें निर्वाण लाभ करेगी।

जिनरात्रिव्रतका पालन भगवान् आदिनाथके पीते मारीचके जीवने सिंहकी पर्यायमें चारणमुनि अप्रितकीर्तिके उपदेशसे किया था, जिसके प्रभावसे अनेक पर्यायोंमें सुख भोगकर अन्तमें जिनरात्रिव्रत आख्यात कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थके यहाँ अन्तिम तीर्थ-कर भगवान् महावीरका जन्म हुआ और पञ्चकल्याणक जैसे महाभ्युदय-को प्राप्तकर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस व्रतका पालन कुरुजांगलदेशमें गंगानदीके तटवर्ती राजनगर नामक ग्राममें धनपाल सेठके पुत्र धनभद्र और जिनभक्त सेठकी पुत्री कोकिलपञ्चमी जिनमतीने किया था, जिसके प्रभावसे लौकिक उत्तमोत्तम सुख भोग अवनाशी पद प्राप्त किया। यह व्रत सभी प्रकारके वैभवोंको देनेवाला है। इसके द्वारा

सभी प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण किया जा सकता है। सन्तान प्राप्ति और धनप्राप्तिके लिए इस व्रतकी उपयोगिता अधिक बतलायी गयी है। इस व्रतका पालन लक्ष्मीमती ब्राह्मणके जीवने किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि सुख भोगकर कुण्डलपुर नगरमें राजा भीष्मके यहाँ रुक्मिणी रुक्मिणी व्रताख्यान नामकी पुत्री हुई। यह सौराष्ट्रदेशके द्वारावती नगरीके राजा श्रीकृष्णचन्द्रकी पटरानी हुई और अन्तमें अपने पुत्र प्रद्युम्नकुमारके साथ दीक्षा लेकर उत्तम सुखको प्राप्त किया।

इस व्रतका पालन श्रेष्ठिपुत्री धनश्रीने किया था, जिसके कर्मनिर्जराव्रत कारण उसने स्वर्गके अनुपम सुखोंको प्राप्त किया। प्राचीनकालकी बात है कि मगधदेशके सुप्रतिष्ठ नगरके एक वीरचर्म सागरसेन नामके मुनिके पास भांसका लोखुपी एक स्नान रहता था। मुनिराजने उसे धर्मोपदेश देकर रात्रि-भोजनका अन्तीव्रताख्यान त्याग कराया और व्रत दिया। उस स्थानने उसका अपने जीवन पर्यन्त भावपूर्वक पालन किया, जिसके प्रभावसे मृत्युके उपरान्त उसी ग्राममें सेठ कुबेरदत्तके यहाँ प्रीतिकर नामका पुत्र हुआ

और दिगम्बरी दीक्षा धारण कर निर्वाण पद प्राप्त किया ।

यह व्रत भगवान् ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलि स्वामीने किया था, जिसके कारण दीक्षा लेकर निर्वाणपद प्राप्त किया । भगवान् आदिनाथकी पुत्री कवलचन्द्रायण

ब्राह्मी और सुन्दरीने भी इस व्रतको धारण किया, जिसके प्रभावसे खीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई और पुनः पुरुष पर्याय धारण कर दीक्षासे निर्वाणपद प्राप्त किया ।

निःशल्यअष्टमीव्रत यह व्रत दक्षिण देशके सुपारा नगरमें सेठ नन्दकी पुत्री लक्ष्मीमतीने ग्रहण किया था, जिसके प्रभावसे खीलिंग छेदकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

मौन व्रतका पालन कौशलदेशके कूट नामक ग्राममें कुणक्रीकी कन्या तुंगमदानीने किया था, जिसके प्रभावसे वह कौशलदेशमें यमुनाके तटवर्ती मौनव्रताख्यान

कोशाम्बी नगरीके राजा हरिवहन्तके यहाँ कोशल नामका पुत्र हुआ और संसारसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ग्रहण की । दोनों पितापुत्र विहार करते हुए किसी वनमें पहुँचे और उनके भंडारी मत्तिसागरके जीवने, जो सिंह हुआ था, पूर्वमवके बैरके कारण उन दोनोंका शरीर विदारण कर दिया । दोनों योगिगज ध्यानमें लीन रहे, अतः कर्मोंका नाशकर अन्तःकृतकेवली होकर मोक्ष गये ।

इसका पालन मालवदेशके चिंच नामक ग्राममें एक नागगौड़की पुत्री चारिजमतीने किया था, जिसके प्रभावसे नदीमें शत्रु द्वारा बहाये हुए अपने पुत्रको पुनः प्राप्त किया और उसने पछिब्रताख्यान चारिजमती आर्थिकासे दीक्षा लेकर तपस्वचरण किया, जिससे स्वर्गमें देव हुई; परचात् जिनदीक्षा ग्रहण कर कर्मनाश किया ।

गरुड़पंचमी व्रत इस व्रतका पालन चारिजमतीने किया था, जिसके आख्यान प्रसादसे पिताकी मूर्छा दूर की थी और अन्तमें मोक्षपद प्राप्त किया ।

चतुर्दशीव्रताख्यान सुजानी नामक सेठानीने विधिपूर्वक चतुर्दशीका व्रत धारण किया, जिसके प्रभावसे स्वर्गादि सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया ।

इस प्रकार प्रथमायुयोगमें व्रतोंका फल प्राप्त करनेवालोंके आख्यान-वर्णित हैं । इन आख्यानोंसे एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि नारियोंने जितने अधिक व्रतोंका पालन किया है, पुरुषोंने नहीं । व्रत पालन करनेवालोंमें सम्प्रान्त परिवारके अतिरिक्त दरिद्र-दीन परिवारोंकी नारियाँ भी हैं । मनुष्योंकी तो बात ही क्या, पशु-पक्षियोंने भी व्रत धारण किये हैं । व्रतोंसे आत्मा पवित्र हो जाती है । विषय-कषाय जन्म विकार शान्त होते हैं, जिससे अपने ऊपर विचार करनेका अवसर प्राप्त होता है । अतः समस्त नर-नारियोंको व्रतप्राप्तिके लिए प्रयास करना चाहिए । हरिवंशपुराण और पद्मपुराणमें वर्णित है कि उग्र तपस्वचरण व्रतोपवासके द्वारा ही प्राप्त होता है । कर्मनिर्जराका साधन व्रत है ।

ग्रन्थकर्त्ता

इस ग्रन्थका रचयिता कौन है, यह अनिर्णीत है । ग्रन्थके ऊपर सिंहनन्दी आचार्यका नाम लिखा है । दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थमें सिंहनन्दीकी एक कृति व्रततिथिनिर्णयका उल्लेख किया है । पर यह प्रस्तुत कृति सिंहनन्दीकी नहीं है; उनके ग्रन्थके आधारपर किन्हीं भट्टारक महानुभावने इसका सकलन किया है । ग्रन्थके आरम्भमें कहा गया है—

श्रीपद्मनिन्दमुनिना पद्मदेवेन वाउपरा ।

हरिषेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥

प्राज्ञं तच्चेदिवान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।

विधानं च व्रतानां वै प्राज्ञं प्रोक्तं समुत्तमम् ॥

श्रुतसागरसूरीशभावाशमभ्रदेवकः ।

छत्रसेनादिभ्यर्कीर्त्तिसकलादिसुकीर्त्तिभिः ॥

अर्थात्—पद्मनन्दी, पद्मदेव, हरिषेण, देवसेन, आदिसेन, श्रुतसागर, भावाशम, अभ्रदेव, छत्रसेन, आदित्यकीर्त्ति और सकलकीर्त्तिके ग्रन्थोंका अवलोकन कर प्रस्तुत रचना संकलित की गयी है । रचयिताने पूज्यपादके शिष्य, इन्द्रनन्दी, काष्ठासंघके आचार्य, मूलसंघके आचार्य, कर्णार्पित पुराणके रचयिता केदावसेन आदिके मतोंकी भी आलोचना की है । इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थका संकलन किसी भट्टारकने विक्रम संवत्की १७वीं शतीमें किया है । श्रुतसागरसूरि मूलसंघ सरस्वती गच्छ, बलात्कार-

गणमें हुए । यह तार्किक, वैयकरण और परमाणुओं में प्रवीण थे । इन्होंने अपने गुरुका नाम विद्यानन्दी बताया है । विद्यानन्ददेवेन्द्रकीर्तिके शिष्य थे और देवेन्द्रकीर्ति पद्मनन्दिके शिष्य । इन्हीं पद्मनन्दिकी शिष्य परम्परामें सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, विजयकीर्ति और शुभचन्द्र महारक हुए हैं । भुवसागर सूरिका व्रतकथाकोश प्रसिद्ध है, इसमें आकाशपञ्चमी, मुकुट-सप्तमी, चन्दनपष्ठी, अवण द्वादशी, अष्टाहिका आदि व्रतोंकी कथाओंमें उनकी विधियाँ भी बतलायी गयी हैं । शुभचन्द्र महारकने पल्यवतोद्यापन ग्रन्थ लिखा है, इस ग्रन्थमें इसकी विधिका भी जिक्र है । विक्रम संवत् १६८८ में केशवसेनसूरिने कर्णामृतपुराणकी रचना की है । उसके भी एक दो श्लोक इस ग्रन्थमें उद्धृत हैं । अतः यह निश्चित है कि इसका सकलन किसी महारकने सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिमपादमें किया । इसी कारण इसमें ११वीं शतीसे १७वीं शतीतकके आचार्यों और ग्रन्थोंके उद्धरण विद्यमान हैं । सकलन उत्तम और कमबद्ध हुआ है । आवश्यक सभी व्रतोंकी तिथियोंकी व्यवस्था प्रतिपादित कर दी गयी है ।

आत्मनिवेदन

इस ग्रन्थका सम्पादन आदर्शनीय पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकी प्रेरणासे व्यवहारोपयोगी होनेके कारण सन् १९५० में ही किया गया था । उक्त पण्डितजी इसे वर्णों ग्रन्थमालासे प्रकाशित करना चाहते थे, उस ग्रन्थमालाके सम्पादक थे । पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्रीने अपना अभिमत ग्रन्थको शीघ्र प्रकाशित करनेके लिए दिया था । किन्तु अर्थाभावके कारण उक्त ग्रन्थमालासे प्रकाशित न किया जा सका ।

इस कृतिको प्रकाशमें लानेका श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ काशीके सुयोग्य मन्त्री श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलेय एवं श्रीमूर्तिदेवी जैनग्रन्थमाला के संस्कृत-प्राकृत विभागके सम्पादकद्वय डॉ० हीरालालजी और डॉ० ए० एन० उपाध्येजीको है । मैं इन लोगोंका हृदयसे आभारी हूँ । प्रकृत देखनेमें श्री पं० महादेवजी चतुर्वेदीसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है, अतः उनका भी आभार स्वीकार करता हूँ । उपर्युक्त आदर्शनीय शास्त्रीद्वयको भी धन्य-वाद देता हूँ, जिनके प्रोत्साहनसे सम्पादन कार्य पूर्ण हुआ ।

आरा आकाशपञ्चमी, वीराब्दः २४८२ }

—नेमिचन्द्र शास्त्री

व्रततिथिनिर्णय

ॐ नमः सिद्धेश्वर्यः

मङ्गलाचरण

श्रीमन्तं वर्धमानेशं भारतीं गौतमं गुरुम् ।
नत्वा वक्ष्ये तिथीनां वै निर्णयं व्रतनिर्णयम् ॥१॥

अर्थ—श्रीमन्त—अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंगश्री और समवशरण
आदि विभूति रूप बहिरंग श्रीसे युक्त भगवान् महावीरस्वामीको, जिन-
वाणीको—सरस्वती रूप दिव्यध्वनिको एवं गुरु गौतम गणधरको नम-
स्कार कर निश्चयसे व्रतनिर्णय और तिथिनिर्णयको कहता हूँ ।

प्रस्तावना

श्रीपद्मनन्दिमुनिना पद्मदेवेन वाऽपरा ।
हरिपेणेन देवादिसेनेन प्रोक्तमुत्तमम् ॥२॥
ग्राह्यं तच्चेदिवान्यद्वा चतुर्गुणप्रकल्पितम् ।
विधानं च व्रतानां वै ग्राह्यं प्रोक्तं समुत्तमम् ॥३॥

अर्थ—श्री पद्मनन्दिमुनि, अपर पद्मदेवमुनि, हरिपेण एवं देवसेनसे
जो चतुर्गुण प्रकल्पित—प्रथा समय नियत तिथिको धारण, विधिपूर्वक
पालन, विधेय मन्त्रका जाप और प्रोपधोपवासयुक्त उत्तम व्रत कहे गये
हैं, उन्हें ग्रहण करना चाहिये । अथवा इन्होंने आचार्योंके समान अन्ध
आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रतोंको ग्रहण करना चाहिए । व्रतोंके लिए
जो विधान—विधि, नियत तिथि, जाप्य मन्त्र, अनुष्ठान करनेके नियम;
वताया गया है, उसे निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिए ।

श्रुतसागरद्वारीशभाष्यशर्माभदेवकः ।

छत्रसेनादित्यकीर्तिसकलादिसुकीर्तिभिः ॥४॥

अर्थ—श्रुतसागर आचार्य, भावशर्मा, अश्वदेव, छत्रसेन, आदित्य-कीर्ति, सकलकीर्ति आदि आचार्योंके द्वारा प्रतिपादित व्रततिथिनिर्णयको कहता हूँ ।

क्रमतोऽहं प्रवक्ष्ये वै तिथिव्रतसुनिर्णयो ।

मतं ग्राह्यं साम्प्रतं कुलाद्रिघटिकाग्रभम् ॥५॥

अर्थ—क्रमसे मैं तिथिनिर्णय और व्रतनिर्णयको कहता हूँ । इस समय व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथिका मान ग्रहण करना चाहिए । विवेचन—प्राचीन भारतमें हिमाद्रि और कुलाद्रि दो मत व्रत-तिथियोंके निर्णयके लिए प्रचलित थे । हिमाद्रि मतका आदर उत्तर भारतमें था और कुलाद्रि मतका दक्षिण भारतमें । हिमाद्रि मतमें वैदिक आचार्य तथा कतिपय इवेतम्बराचार्य परिगणित हैं । हिमाद्रि मतमें साधारणतः व्रततिथिका मान दस घटी प्रमाण स्वीकार किया गया है । हिमाद्रिमत केवल व्रतोंका निर्णय ही नहीं करता है, बल्कि अनेक सामा-जिक, पारिवारिक व्यवस्थाओंका प्रतिपादन भी करता है । हिमाद्रिमतके उद्धरण देवीपुराण, विष्णुपुराण, शिवसर्वस्य, भविष्य एवं निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मिलते हैं । इन उद्धरणोंको देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें उत्तरभारतमें इसका बड़ा प्रचार था । पारिवारिक और सामाजिक जीवनकी अर्थव्यवस्था, दण्डव्यवस्था, जीवनोन्नतिके लिए विधेय अनुष्ठान आदिका निर्णय एक मतके आधारपर ही प्रायः उत्तर-भारतमें किया जाता था । ऋषिपुत्रकी संहिताके कुछ उद्धरण भी इस मतमें समाविष्ट हैं । हेमचन्द्राचार्य द्वारा प्ररूपित नियम भी हिमाद्रि मतमें गिनाये गये हैं । गार्ग्य, बृहद् गार्ग्य और पाराशरके वचन भी हिमा-द्रिमतमें शामिल हैं ।

कुलाद्रिमत दक्षिण भारतमें प्रचलित था । इस मतकी द्रविड संज्ञा भी पायी जाती है । दिगम्बर जैनाचार्योंकी गणना भी इस मतमें की जाती थी, किन्तु प्रधानरूपसे केरलपक्ष ही इसमें शामिल था । इस मतमें बहो तिथि व्रतके लिए प्राद्य मानी जाती थी, जो सूर्योदय कालमें छः घटी हो । यों तो इस मतमें भी कई शाखा-उपशाखाएँ प्रचलित थीं, जिनमें व्रत-तिथिकी भिन्न-भिन्न घटिकाएँ परिगणित की गयी हैं ।

ज्योतिष शास्त्रमें वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिवस ये छः कालके भेद बताये गये हैं । वर्षके सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और बार्ह-स्पत्य ये पाँच भेद हैं । हेमाद्रिमतमें सौर, चान्द्र और बार्हस्पत्य ये तीन वर्षके भेद माने गये हैं । सावन वर्षमें ३६० दिन, सौर वर्षमें ३६६ दिन, चान्द्र वर्षमें ३५४^१/_३ दिन तथा अधिक मास सहित चान्द्रवर्षमें ३८३ दिन २१^१/_६ सुहूर्त्त और नाक्षत्र वर्षमें ३२७^१/_६ दिन होते हैं । बार्ह-स्पत्य वर्षका प्रारम्भ ६० पू० ३१२८ वर्षोंसे हुआ है । यह माघसे लेकर प्रायः माघतक माना जाता है । इसकी गणना बृहस्पतिकी राशिसे की जाती है, बृहस्पति एक राशिपर जितने दिन रहता है, उतने दिनोंका बार्हस्पत्य वर्ष होता है । गणना करनेपर प्रायः यह १३ महीनोंका आता है । व्यवहारमें चान्द्रवर्ष ही ग्रहण किया जाता है^१ । इसका आरम्भ चैत्र-शुक्ल प्रतिपदासे होता है । अयनके सम्बन्धमें ज्योतिष शास्त्रमें बताया है कि तीन सौर ऋतुओंका एक अयन होता है

सूर्य आकाशमण्डलमें जिस पथसे जाते हुए देखा जाता है वही मूक्ष अथवा अयनमण्डल है । यह चक्राकार है परन्तु बिल्कुल गोल नहीं, कहीं-कहीं कुछ वक्र भी है । इसके उत्तर दक्षिण कुछ दूरतक फैला हुआ एक चक्र है जो राशिचक्र कहलाता है । राशिचक्र और अयनमण्डल दोनों तीन सौ साठ ३६० अंशोंमें विभक्त हैं क्योंकि एक घूर्त्तमें चार समकोण होते हैं और प्रत्येक समकोणमें ९० अंश माने

१. स्मरते सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा ।
नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥—आष्टिषेण, नि० सि०

जाते हैं। इस प्रकार तीन सौ साठ ३६० अंशको १२ राशियोंमें विभक्त करनेपर प्रत्येक राशिका ३० अंश प्रमाण आता है। इन विभक्त राशियों के नाम ये हैं—मेघ, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

राशिचक्रका कल्पित निरक्षवृत्त विषुवरेखा कहलाता है। इस रेखाके उत्तर दक्षिण तेईस २३ अंश अष्टाहंस २८ कलाके अन्तरपर दो विन्दुओं की कल्पना की जाती है। इनमें एक विन्दु उत्तरायणान्त—उत्तर जानेकी अन्तिम सीमा, और दूसरा विन्दु दक्षिणायनान्त—सूर्यके दक्षिण जानेकी अन्तिम सीमा है। इन दोनों विन्दुओंके मध्य जो एक कल्पित रेखा है उसीका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस पथसे उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तरायण और जिस पथसे दक्षिणकी ओर जाता है उसे दक्षिणायन कहते हैं। व्यवहारमें कर्कराशिके सूर्यसे लेकर धनुराशिके सूर्य पर्यन्त दक्षिणायन और मकरसे लेकर मिथुन पर्यन्त सूर्यका उत्तरायण होता है। कुछ कार्योंमें अयनशुद्धि ग्राह्य समझी जाती है। माङ्गलिक कार्य प्रायः उत्तरायणमें ही सम्पन्न होते हैं।

दो महीनेकी एक ऋतु होती है। सौर और चान्द्र ये दो ऋतुओंके भेद हैं। चैत्र महीनेसे आरम्भ की जानेवाली गणना चान्द्रऋतु गणना होती है अर्थात् चैत्र-वैशाखमें वसन्तऋतु, ज्येष्ठ-आषाढ़में ग्रीष्मऋतु, श्रावण-भाद्रपदमें वर्षाऋतु, आश्विन-कार्तिकमें शरदऋतु, अगहन-पौषमें हेमन्तऋतु और माघ-फाल्गुनमें शिशिरऋतु होती है। सौर ऋतुकी गणना मेघ राशिके सूर्यसे की जाती है अर्थात् मेघ-वृष राशिके सूर्यमें वसन्तऋतु, मिथुन-कर्क राशिके सूर्यमें ग्रीष्मऋतु, सिंह-कन्या राशिके सूर्यमें वर्षाऋतु, तुला-वृश्चिक राशिके सूर्यमें शरदऋतु, धनु-मकर राशिके सूर्यमें हेमन्तऋतु और कुम्भ-मीन राशिके सूर्यमें शिशिरऋतु होती है। विवाह, प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य सौर मासके हिसाबसे ही किये जाते हैं^१।

१. श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याश्चान्द्रमसस्तुष्टु ।

तदभावे तु सौरतु विविति ज्योतिर्विदां मतम् ॥—निर्णयसिन्धु पृ० २

मासगणना चार प्रकारकी होती है—सावन, सौर, चान्द्र और नाक्षत्र। तीस दिनका सावनमास होना है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे लेकर अगली संक्रान्तिपर्यन्त सौरमास माना जाता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमा पर्यन्त चान्द्रमास माना जाता है। अश्विनी नाक्षत्रसे लेकर रेवती पर्यन्त नाक्षत्रमास माना गया है, यह प्रायः २७^१/_२ दिनका होता है। व्यवहारमें शुभाशुभके लिए चान्द्र और सौरमास ही ग्रहण किये जाते हैं। कर्ह आचार्योंका मत है कि विवाह और व्रतमें सौरमास, शान्तिपौष्टिकमें सावनमास, सांवल्लरिक कार्योंमें चान्द्रमास ग्राह्य माने गये हैं^१। अधिमास और क्षयमास सभी शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं। हेमाद्रिके मतसे कोई भी शुभकार्य इन दोनों मासोंमें नहीं करना चाहिए; किन्तु कुलादिमतमें अधिकमास और क्षयमासकी अन्तिम तिथियाँ त्याज्य हैं। मध्यभाग इन दोनों महीनोंका ग्राह्य ब्रताया गया है। पक्षके दो भेद हैं—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष। प्रायः सभी मांगलिक कार्योंमें शुक्लपक्ष ही ग्रहण किया जाता है। कृष्णपक्षमें पञ्चमी तिथिके पश्चात् पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा जैसे शुभ कृत्य नहीं होते हैं। प्रतिपदादि तिथियोंके नाम प्रसिद्ध हैं। अमावास्या तिथिके आठ प्रहरोंमेंसे पहले प्रहरका नाम सिनीवाली, मध्यके पाँच प्रहरोंका नाम दर्श और सातवें तथा आठवें प्रहरका नाम कुहू है। किन्हीं-किन्हीं आचार्योंका मत है कि तीनघटी रात्रि शेष रहनेके समयसे रात्रिके समाप्त क सिनीवाली, प्रतिपदासे विद्ध अमावास्याका नाम कुहू, चतुर्दशसे विद्ध अमावास्या दर्श कहलाती है। सूर्यमण्डल समसूत्रसे अपनी कक्षाके

१. सौरमासो विवाहादौ यागादौ सावनः स्मृतः ।

आदिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥

विवाहव्रतयशेषे सौरं मानं प्रशस्यते ।

पार्ष्णे त्वष्टकांश्चादे चान्द्रमिष्टं तथाद्विके ॥

आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा ।

सावनेनैव कर्त्तव्या शत्रूणां चान्युपासना ॥

—निर्णयसिन्धु पृ० ७

समीपमें स्थित परन्तु शरवशासे पृथक् स्थित चन्द्रमण्डल जब हो तो सिनीवाली, सूर्यमण्डलमें आधे चन्द्रमाका प्रवेश हो तो दर्श और जब सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल समसूत्रोंमें हों तो कुहू होती है। प्रतिपदा-संयुक्त अमावास्या भी कुहू मानी जाती है। दिनक्षय या दिनवृद्धि होने पर समस्त अमावास्या दर्श संज्ञक मानी जाती है। प्रतिपदा सिद्धि देने-वाली, द्वितीया कार्य साधन करनेवाली, तृतीया आरोम्य देनेवाली, चतुर्थी हानिकारक, पंचमी शुभप्रद, षष्ठी अशुभ, सप्तमी शुभ, अष्टमी व्याधि-नाशक, नवमी मृद्युदायक, दशमी द्रव्यप्रद, एकादशी शुभ, द्वादशी और त्रयोदशी कल्याणप्रद, चतुर्दशी उग्र, पूर्णिमा पुष्टिप्रद एवं अमावास्या अशुभ है।

व्यवहारके लिए द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथियाँ सभी कार्योंमें प्रशस्त दत्तायी गयी हैं। व्रतोंके लिए भिन्न-भिन्न आचार्योंने तिथियोंका भिन्न-भिन्न प्रमाण बताया है।

तिथिके सम्बन्धमें केशवसेन और महासेनका मत

क्रेपाञ्चित् धर्मघटिकाप्रमं सम्प्रतमसि च ।

क्रेपाञ्चिद्विंशतिघटिकाप्रमं सम्प्रतमसि च ॥ ६ ॥

क्रेपाञ्चित् केशवसेनादीनां मते कर्णावृत्तपुराणादिषु धर्म-घटिकाप्रमं मतम्। कोचिदाहुः—सेनादीनां काष्ठापार्ष्णिणं मते विंशतिघटीमतम्। तेषां ग्रन्थेषु सारसंग्रहादिषु तन्मतं तद्वयं दशप्रमं विंशतिघटीप्रमं न मूलसंवरतसूरयः समाद्रियन्ते। अतस्त्वद्वयं निर्मलसमं बहुभिः कुलाद्रिमतमाहतामिरयत अनवच्छिन्न-पारंपर्यात् तदुपदेशकवृत्तिरवाक्याच्च सर्वजनसुप्रसिद्धत्वात् रसघटीमतं श्रेष्ठमन्यतकल्पनोपेतं मतं सेनान्दिदेवा उपेक्षन्ते-ऽनाद्रियन्तेऽतः कुन्दकुन्दाद्युपदेशात् रसघटिका ग्राह्या कार्या इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अर्थ—किसीके मत (केशवसेनके मत) से दसघटी तिथि होनेपर भी—सूर्योदयसे लेकर दसघटीतक अर्थात् चार घण्टेतक तिथिके रहने पर दिनभरके लिए वही तिथि मानी जाती है। दूसरे आचार्योंके मतसे बीसघटी अर्थात् सूर्योदयसे आठ घंटोंतक रहनेपर ही तिथि दिनभरके लिए मानी गयी है।

आचार्य केशवसेनके मतसे सूर्योदय कालमें दसघटी रहनेपर ही तिथि ग्राह्य मान ली जाती है। सेनागण और काष्ठपार्ष्णिणोंके मतमें बीसघटी रहनेपर ही तिथि पूरी मानी जाती है। इन दोनों सम्प्रदायोंके मतोंको—दसघटी और बीसघटी वाले मतोंको मूलसंघके आचार्य प्रमाण नहीं मानते हैं। अतः इन दोनों मतोंके समान निर्मल बहुतांशोंके द्वारा मान्य कलाद्रिमत् माना गया है। इस मतके द्वारा समर्थित निर्दोष परम्परासे प्राप्त तथा इस निर्दोष परम्पराके उपदेशक आचार्योंके वचनोंसे एवं सभी मनुष्योंमें प्रसिद्ध होनेसे छःघटी प्रमाण तिथिका प्रमाण माना गया है। अन्य जो तिथिका मान कहा गया है, वह कल्पनामात्र है, समीचीन नहीं है। इसको सेन और नन्दिगणके आचार्य उपेक्षा अर्थात् अनादर करते हैं। अतएव कुन्दकुन्दादि आचार्योंके उपदेशसे सभी मतोंकी अपेक्षा छःघटी प्रमाण तिथिका मान ग्राह्य है।

चित्रेचन—जिस प्रकार तारीख सदा २४ घण्टेतक रहती है, उस प्रकार तिथि सदा २४ घण्टेतक नहीं रहती। तिथिमें वृद्धि और ह्रास होता रहता है। कर्मा-कर्मा एक तिथि दो दिनतक आती है, जिससे तिथिकी वृद्धि कहते हैं। कर्मा एक तिथिका लोप हो जाता है, जिससे अवम या क्षयतिथि कहते हैं। अधिकसे अधिक एक तिथि २६ घंटा ५४ मिनटकी हो सकती है अर्थात् पहले दिन जो तिथि सूर्योदयसे आरम्भ होती है, वह अगले दिन सूर्योदयके २ घंटा ५४ मिनटतक रह सकती है। एक तिथिका घट्यातमक या दण्डानुमक मान ६० घटी १५ पल होता है। प्रायः ६० घटी प्रमाण एकाध ही तिथि आती है। प्रतिदिन हीनाधिक प्रमाण तिथि होती रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब ६० घटी

प्रमाणतिथि न हो तो व्रतादिके लिए कौनसी तिथि ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि पाँच घटीके हिसाबसे तिथि वृद्धि और छःघटीके हिसाबसे तिथिक्षय होता है।

उदाहरण—ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है। जिस व्यक्तिको पञ्चमीका व्रत करना है, क्या वह मंगलवारको पञ्चमीका व्रत करेगा। यदि मंगलवारको व्रत करता है तो उस दिन ५ घटी ३० पल अर्थात् सूर्योदयके २ घण्टा १२ मिनटके पश्चात् पष्टी तिथि आ जाती है। व्रत उसे पञ्चमीका करना है पष्टीका नहीं, फिर वह किस प्रकार व्रत करे। आचार्यने विभिन्न मत-मतान्तरोंका खण्डन करते हुए कहा है कि जिस दिन सूर्योदयकालमें ६ घटीसे न्यून तिथि हो उस दिन उस तिथि सम्बन्धी व्रत नहीं करना चाहिए; किन्तु उसके पहले दिन व्रत करना चाहिए। जैसे ऊपरके उदाहरणमें पञ्चमीका व्रत मंगलवारको न कर सोमवारको ही करना पड़ेगा। क्योंकि मंगलवारको पञ्चमी ६ घटीसे कम है, यदि इस दिन पञ्चमी ६ घटी १५ पल होती तो यह व्रत इसी दिन किया जाता। तिथियोंका मान—घटी, पल प्रत्येक पञ्चांगमें लिखा रहता है।

व्रतके सिवा अन्य कार्योंके लिए वर्तमान तिथि ही ग्रहण की जाती है। अर्थात् जिस कार्यका जो काल है, उस कालमें व्यास तिथि जब हो, तभी उसको करना चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जा सकता है कि किसी व्यक्तिको ज्येष्ठशुक्ला पञ्चमीमें विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न करना है। ज्येष्ठ-पञ्चमी मंगलवारको ५ घटी ३० पल है तथा सोमवारको ज्येष्ठसुदी चतुर्थी १० घटी १५ पल है। विद्यारम्भके लिए मंगलवारकी अपेक्षा सोमवार श्रेष्ठ होता है, सोमवारको चतुर्थी ६ घटीसे ऊपर है, अतः व्रतकी दृष्टिसे इस दिन चतुर्थी ही कहलायेगी, पर यों १० घटी १५ पलके उपरान्त पञ्चमी मानी जायगी। १० घटी १५ पलके ३ घण्टा ६ मिनट हुए। सूर्योदय इस दिन ५ बजकर २० मिनटपर होता है, अतः ९ बजकर २६ मिनटके पश्चात् सोमवारको विद्यारम्भ किया जा सकता है।

यात्राके लिए भी यही बात है। यदि किसीको पश्चिम दिशामें जाना है तो वह सोमवारको पञ्चमी तिथिमें ९ बजकर २६ मिनटके उपरान्त जायगा तथा पूर्वमें जानेवाला मंगलवारको पञ्चमी तिथिके रहते हुए प्रातःकाल ७ बजकर ३२ मिनटतक यात्रारम्भ करेगा।

दान, अध्ययन, शान्ति-पौष्टिक कार्य, आदिके लिए सूर्योदय कालकी तिथि ही ग्रहण माननी गयी है। तिथियोंकी नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाएँ बतायी गयी हैं। प्रतिपदा, पष्टी और एकदशीकी नन्दा; द्वितीया, सप्तमी और द्वादशीकी भद्रा संज्ञा; तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीकी जया; चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्ता संज्ञा एवं पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्याकी पूर्णा संज्ञा है। नन्दा संज्ञक तिथियाँ मंगलवारको, रिक्ता संज्ञक तिथियाँ शनिवारको एवं पूर्णा संज्ञक तिथियाँ बृहस्पतिवारको पड़ें तो सिद्धा कहलाती हैं। सिद्धा तिथियोंमें किया गया व्यापार, अध्ययन, देन-लेन अथवा किसी भी प्रकारका नवीन कार्य सिद्ध होता है। नन्दा संज्ञक तिथियोंमें विप्रविद्या, उत्सव, गृहनिर्माण, तान्त्रिक कार्य (जड़ी, वृद्धी, तबीज आदि देनेके कार्य), कृषि सम्बन्धी कार्य एवं गीत, नृत्य प्रभृति कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न होते हैं। भद्रा संज्ञक तिथियोंमें विवाह, आयुष्पणनिर्माण, गाड़ीकी सवारी, एवं पौष्टिक कार्य; जयासंज्ञक तिथियोंमें सन्नाम, तैनिकोंका भर्ती करना, युद्ध क्षेत्रमें जाना एवं खर और तीक्ष्ण वस्तुओंका संचय करना; रिक्ता संज्ञक तिथियोंमें शस्त्रप्रयोग, विषप्रयोग, निन्दन-कार्य, शास्त्रार्थ आदि कार्य एवं पूर्णा संज्ञक तिथियोंमें माङ्गलिक कार्य,

१. यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।

सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥ —ज्योतिष ० पु० ५

२. नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चेति विप्रविता ।

हीना मध्योत्तमा शुक्ला कृष्णा तु व्यत्ययान्तिथिः ॥ आरंभ सि० पु० ४

तुलना—दिनशुद्धिदीपिका भाषा ८, धवलाटीका भाग १

ज्योतिषश्रन्द्रार्क पु० ५४

विवाह, यात्रा, यज्ञोपवीत आदि कार्य करना अच्छा होता है। अमा-
वस्याको मांगलिक कार्य नहीं किये जाते हैं। इस तिथिमें प्रतिष्ठा, जाप-
रत्न, शान्ति और पौष्टिक कार्य भी करनेका निषेध किया गया है।

चतुर्थी, पष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियोंकी
पक्षरन्ध्र संज्ञा है। इनमें उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ आदि
कार्य करना अनुभूत बताया है। यदि इन तिथियोंमें कार्य करनेकी अत्यन्त
आवश्यकता हो तो इनके प्रारम्भकी पाँच घटिकाएँ अर्थात् दो घण्टे
अवश्य ल्याज्य हैं। अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त तिथियोंमें सूर्योदयके दो
घण्टे बाद कार्य करना चाहिए।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मंगलवारको पञ्चमी,
बुधवारको तृतीया, वृहस्पतिवारको अष्टमी, शुक्रवारको नवमी और शनि-
वारको नवमी तिथिके होनेपर दण्डयोग कहलाता है। इस योगमें कार्य
करनेसे नानाप्रकारके विघ्न आते हैं। अभिप्राय यह है कि वार और
तिथियोंके संयोगसे कुछ शुभ और अनुभूत योग बनते हैं। यदि रविवार
को द्वादशी तिथि हो तो दण्डयोग कहलाता है, इसमें शुभ कार्य अरम्भ
नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आगोवाली तिथियोंको भी समझना
चाहिए।

रविवारको चतुर्थी, सोमवारको पष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुधवार-
को द्वितीया, वृहस्पतिवारको अष्टमी, शुक्रवारको नवमी और शनिवारको
सप्तमी तिथि विषमयोग संज्ञक होती हैं। अर्थात् उपर्युक्त तिथियाँ रवि
आदि वारोंके साथ मिलनेसे विषम हो जाती हैं, इन विष योगोंमें भी
कोई शुभ कार्य अरम्भ नहीं करना चाहिए। नामके समान ही यह योग
फल देता है।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको पष्ठी, मंगलवारको सप्तमी, बुध-
वारको अष्टमी, वृहस्पतिवारको नवमी, शुक्रवारको दशमी और शनिवार
को एकादशी तिथि हुताशनयोग संज्ञक होती हैं। इन तिथियोंमें भी
रवि आदि वारोंके संयोग होनेपर शुभ कार्य करना रण्यज्य है।

रवि.	सो.	मं.	बुध	वृह.	शुक्र.	शनि.	योग
१२	११	५	३	६	८	९	दण्डयोग
४	६	७	२	८	९	७	विषयोग
१२	६	७	८	९	१०	११	हुताशनयोग

चैत्रमें दोनों पक्षोंकी अष्टमी, नवमी; वैशाखमें दोनों पक्षोंकी
द्वादशी; ज्येष्ठमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, शुक्लपक्षकी त्रयोदशी; आषाढ़में
शुक्लपक्षकी सप्तमी; कृष्णपक्षकी पष्ठी, श्रावणमें द्वितीया; तृतीया, भाद्र-
पदमें प्रतिपदा, द्वितीया; आश्विनमें दशमी, एकादशी; कार्तिकमें कृष्ण-
पक्षकी पंचमी, शुक्लपक्षकी चतुर्दशी; मार्गशीर्षमें सप्तमी, अष्टमी;
पौषमें चतुर्थी, पंचमी; माघमें कृष्णपक्षकी पंचमी और शुक्लपक्षकी
पष्ठी एवं फाल्गुनमें शुक्लपक्षकी तृतीया मास शून्य संज्ञक हैं। इन
तिथियोंमें मांगलिक कार्य आरम्भ करनेसे वंश और धनकी हानि होती
है। ज्योतिष शास्त्रमें उपर्युक्त तिथियाँ निबंल बतायी गयी हैं। इनमें
विचाररम्भ, गृहारम्भ, वेदीप्रतिष्ठा, पंचकल्याणक, जिनालयारम्भ, उपनयन
आदि कार्य नहीं करने चाहिए।

मेघ और कर्क राशिके सूर्यमें पष्ठी, मीन और धनके सूर्यमें द्वितीया,
वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, कन्या और मिथुनके सूर्यमें अष्टमी, सिंह

१. पष्ठी कर्कटके मेघ चापे मीने द्वितीयकाम्।

चतुर्थी वृषमे कुम्भे दशमी सिंहदृष्टिके ॥

युग्मेऽष्टमी च कन्यायां द्वादशीं मकरे तुले।

दहलको यतस्तस्माद्वर्जनीया इमाः सदा ॥

—वसुनन्दिप्रतिष्ठा पाठ प्र० प० श्लो० १५-१६

और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी, मकर और तुलाके सूर्यमें द्वादशी तिथि दश्या संज्ञक बतायी गयी है।

मतान्तरसे धनु और मीनके सूर्यमें द्वितीया, वृष और कुम्भके सूर्यमें चतुर्थी, मेष और कर्कके सूर्यमें पष्ठी, मिथुन और कन्याके सूर्यमें अष्टमी, सिंह और वृश्चिकके सूर्यमें दशमी एवं तुला और मकरके सूर्यमें द्वादशी तिथि सूर्य-दश्या संज्ञक होती है।

कुम्भ और धनुके चन्द्रमासें द्वितीया, मेष और मिथुनके चन्द्रमासें चतुर्थी, तुला और सिंहके चन्द्रमासें पष्ठी, मकर और मीनके चन्द्रमासें अष्टमी, वृष और कर्कके चन्द्रमासें दशमी एवं वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमासें द्वादशी तिथि चन्द्र-दश्या कहलाती है। इन तिथियोंमें उप-नयन, प्रतिस्रा, गृहारम्भ आदि कार्य करना वर्जित है।

सूर्यदश्या तिथि-यन्त्र

धनु और मीनके सूर्यमें २	मिथुन और कन्याके सूर्यमें ८
वृष और कुम्भके सूर्यमें ४	सिंह और वृश्चिकके सूर्यमें १०
मेघ और कर्कके सूर्यमें ६	तुला और मकरके सूर्यमें १२

चन्द्रदश्या तिथि-यन्त्र

कुम्भ और धनुके चन्द्रमासें २	मकर और मीनके चन्द्रमासें ८
मेघ और मिथुनके चन्द्रमासें ४	वृष और कर्कके चन्द्रमासें १०
तुला और सिंहके चन्द्रमासें ६	वृश्चिक और कन्याके चन्द्रमासें १२

इस प्रकार विभिन्न कार्योंके लिए शुभाशुभ तिथियोंका विचारकर अशुभ तिथियोंका त्याग करना चाहिए। प्रत्येक शुभ-कार्यमें समय शुद्धि-का विचार करना परमावश्यक है। व्रतारम्भके लिए तिथिका प्रमाण छः घटी सर्वसम्मतसे स्वीकार किया गया है।

तिथि प्रमाणके लिए पद्मदेवका मत

इत्यादिमतमालोक्यनियतं रसघटीप्रपम् ।

अयं श्रीपद्मदेवादिद्विरभिर्ज्ञानधारिभिः ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार व्रत-तिथिके प्रमाणके लिए नाना मत-मतान्तरों का अवलोकन कर ज्ञानवान् श्रीपद्मदेव आदि महर्षियोंने रस-घटी—छः घटी प्रमाण-तिथिके मतको ही प्रमाण माना है। अर्थात् जैन मान्यतामें उद्ग्रा-तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं है, किन्तु छः घटी प्रमाण-तिथि होने-पर ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

पद्मदेवके मतका उपसंहार

तेदेव पद्मदेवाचार्योक्तं रसघटीमतं व्रतविधाने ग्राह्यम् ।

धर्मप्रामाणं मतं न ग्राह्यमिति ॥

अर्थ—व्रत-विधानके लिए छः घटी प्रमाण ही पद्मदेव आचार्यके मत से ग्रहण करना चाहिए। इस घटी प्रमाण व्रततिथिको नहीं मानना चाहिए। श्रीकुन्दकुन्दाचार्य तथा सूलसंघके अन्य आचार्योंका मत भी छः घटी प्रमाण-तिथि ग्रहण करनेका है।

प्रश्न

विधिधातिथिसमायाते क्रियते हि व्रतं कथम् ।

पद्मच्छेति गुरुं शिष्यो विनयावनतमस्तकः ॥८॥

अर्थ—एक ही दिन कई तिथियोंके आ-जानेपर व्रत कब करना चाहिए अर्थात् कभी-कभी एक ही दिन तीन तिथियाँ रह सकती हैं, ऐसी अवस्थामें व्रत कब करना चाहिये ? इस प्रकारका प्रश्न विनम्र एवं नतमस्तक होकर शिष्योंने गुरुसे पूछा।

विवेचन—मध्यम मान तिथिका यद्यपि ६० घटी है, परन्तु स्पष्ट-मान तिथिका सदा घटता-बढ़ता रहता है। कोई भी तिथि ६० घटी प्रमाण

एकाधवार ही आती है। कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता है, जब एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं। उदाहरण—ज्येष्ठ सुदी द्वितीया प्रातःकाल १ घटी १५ पल है, इसी दिन तृतीयाका प्रमाण ५२ घटी ३० पल पञ्चाङ्गमें लिखा है। सूर्योदय ५ वज्रकर १५ मिनटपर होता है, अतः इस-दिन ५ वज्रकर ४५ मिनट तक द्वितीया रही, इसके पश्चात् रात के २ वज्रकर ४५ मिनट तक तृतीया तिथि रही। तदुपरान्त चतुर्थी तिथि आ गयी। इस प्रकार एक ही दिन तीन तिथियाँ पड़ गयीं। जिस व्यक्तिको तृतीयाका व्रत करना है, वह इस प्रकारकी विद्ध तिथियोंमें कैसे व्रत करेगा। यदि इस दिन व्रत करना है तो तीन तिथियाँ रहनेसे व्रतका फल नहीं मिलेगा तथा इसके पहले व्रत करेगा तो तृतीया तिथि नहीं मिलती है, अतः किस प्रकार व्रत करना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्रमें व्रत-तिथिके निर्णयके लिए अनेक प्रकारसे विचार किया है। तिथियोंके क्षय और वृद्धिके कारण ऐसी अनेक शंकास्पद स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जब श्रद्धालु व्यक्ति पशोपेक्षमें पड़ जाता है कि अब किस दिन व्रत करना चाहिए। क्योंकि व्रतका फल तभी यथार्थ रूपसे मिलता है, जब व्यक्ति व्रतको निश्चित तिथिपर करे। तिथि टालकर करनेसे व्रतका पूरा फल नहीं मिलता। जिस प्रकार असमयकी वर्षा कृषिके लिए उपयोगी होनेके बदले हानिकर होती है, उसी प्रकार असमयपर किया गया व्रत भी फलप्रद नहीं होता। यों तो व्रत सदा ही आत्म-शुद्धिका कारण होता है, कर्मोंकी निर्जरा होती ही है, पर विधिपूर्वक व्रत करनेसे कर्मोंकी निर्जरा अधिक होती है तथा पुण्य प्रकृतियोंका वन्द्य भी होता है।

वेधातिथिका लक्षण

वेधायाः लक्षणं किमिति चेदहं ; सूर्योदयकाले त्रिमुहूर्त्त-भावात्, क्षयाभावाच्च विद्धा सा वेधा ज्ञेया। सूर्योदयकालवर्तिन्या तिथ्या वेधत्वात्।

अर्थ—वेधा तिथिका लक्षण क्या है? आचार्य कहते हैं कि सूर्योदय समयमें जो तिथि तीन मुहूर्त्त—छःघटीसे कम होने अथवा उसका क्षय-अभाव होनेके कारण अन्य तिथिके साथ सम्बद्ध रहती है—वेधा या विद्ध-तिथि कहलाती है। सूर्योदयकालमें रहनेवाली तिथिके साथ वेध-सम्बन्ध करनेके कारण वेधातिथि कहलाती है।

व्रतोपनयन आदि कार्योंके लिए तिथिमान

सोदयं दिवसं ग्राह्यं कुलाद्रिघटिक्राप्रमम्।

व्रते वटोपमागत्य गुरुः ग्राह त्विति स्फुटम् ॥१॥

अर्थ—छःघटी प्रमाण तिथिके होनेपर दिनभरके लिए वही तिथि मान ली जाती है, अतः व्रतग्रहण, उपनयन, प्रतिष्ठा आदि कार्य उसी तिथिमें करने चाहिए। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रश्नके उत्तरमें गुरुने स्पष्ट कहा है।

विवेचन—प्राचीन भारतमें तिथिज्ञानके लिए दो मत प्रचलित थे—हिमाद्रि और कुलाद्रि। हिमाद्रि मत उदयकालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था, पर कुलाद्रि मत छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिके होनेपर ही तिथिको ग्रहण करता था। घट् कुलाचल होनेके कारण छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका प्रमाण माननेसे ही इस मतका नाम कुलाद्रि मत या कुलाद्रिघटिका मत पड़ गया था। कुछ लोग हिमाद्रि मतका प्रमाण दसघटी भी मानते थे।

ज्योतिषशास्त्रमें तिथियाँ दो प्रकारकी बतायी गयी हैं—शुद्धा और विद्धा। 'दिने तिथ्यन्तरसम्बन्धरहिता शुद्धा' अर्थात् दिनमानमें एक ही तिथि हो, किसी अन्य तिथिका सम्बन्ध न हो तो शुद्धा तिथि होती है। 'तत्सहिता विद्धा' एक ही दिनमें दो तिथियोंका सम्बन्ध हो तो विद्धा तिथि कहलाती है। आरम्भसिद्धि ग्रन्थमें विद्धा तिथिका विवरेण करने हुए कहा गया है—“जो तिथि तीन वारोंमें वर्तमान रहे

वह वृद्धि तिथि कहलाती है, मतान्तरसे इसका नाम भी विद्धा तिथि है। जब एक ही दिवसे तीन तिथियाँ या दो तिथियाँ वर्तमान रहें, वहाँ पर भी विद्धा तिथि मानी जाती है। जब एक दिनमें तीन तिथियाँ वर्तमान रहती हैं तो मध्यवाली तिथिका क्षय माना जाता है तथा जब एक दिनमें दो तिथियाँ रहती हैं तो उत्तरवाली तिथिका क्षय माना जाता है। उदाहरण—जैसे रविवारकी रातमें तीन घटी रात शेष रहनेपर पञ्चमी अरम्भ हुई, सोमवारको साठ घटी पञ्चमी है तथा मंगलको प्रातःकालमें तीन घटी पञ्चमी है, पश्चात् पछी तिथि आरम्भ होती है। यहाँ पञ्चमी तिथि रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों दिनोंमें व्याप्त है अतः वृद्धितिथि मानी जायगी। यह वृद्धितिथि प्रतिष्ठा, गुहा-रम्भ, उपनयन आदि समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

तीन तिथियोंकी स्थिति एक ही दिन इस प्रकार रहती है कि शुक्रवारको प्रातःकाल अष्टमी १ घटी १५ पल है, नवमी ५२ घटी ४० पल है और दशमी ६ घटी ५ पल है तथा शनिवारको दशमी ४९ घटी २० पल है। इस प्रकारको स्थितिमें शुक्रवारको अष्टमी, नवमी और

१. त्रीनवारान् स्पृशती त्याज्या त्रिदिनस्पृशिनी तिथिः।

वारे तिथिन्नयस्तिथ्यवमं मध्यमा च या ॥

यत्र तिथेर्वृद्धिस्तत्रैका तिथिवारत्रयं स्पृशतीति सा त्रिदिनस्पृशिनी। तस्याः फल्गुरिति नाम हर्षप्रकाशग्रन्थे। यत्र तु तिथिपातस्तत्रैको वारस्तिस्त्वितिथीः स्पृशति। तासु या मध्यमा तिथिः साऽवममित्युच्यते। एते द्वे अपि त्याज्ये।

—शारम्भासिद्धि पु० ६

२. या एकस्मिन् वारसे द्वयान्ता द्वयोस्तिथ्योः यत्र समाप्तिः तत्रोत्तरा क्षयतिथिः। यथा गुरुवासरे घटिकाद्वयं तृतीया तदुत्तरं चतुर्थी पट्-पञ्चाशद्घटिकापर्यन्तं, एवमुत्तरा चतुर्थी क्षयतिथिः। एवं क्षयतिथिर्नाष्टा, सूर्योदये वारस्याप्राप्तेः। फलम्—कृतं यन्मंगलं तत्र त्रिदशसुगवमे तिथौ। भरसीभवति तत्सर्वं क्षिप्रमग्नौ यथेधनम्॥

—ज्योतिश्चन्द्रार्क पु० ५०

दशमी तीनों तिथियाँ रहें। इन तीनोंमेंसे नवमी तिथि क्षयतिथि मानी जायगी। अतः नवमीको प्रत्येक शुभ कार्यके करनेका निषेध रहेगा।

जैनाचार्योंने प्रतिष्ठा, गुहारम्भ, व्रतोपनयन प्रभृति सांगालिक कार्योंके लिए तिथि-वृद्धि और तिथिक्षय दोनोंको त्याज्य वतया है। प्रातःकालमें जबतक ६ घटी प्रमाण तिथि नहीं हो, कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

विष्णुधर्मपुराण, नारदसंहिता, वशिष्ठसंहिता, सुहृत्तं दीपिका, सुहृत्तं-माधवीय आदि वैदिक ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी धर्मकृत्यके लिए तीन सुहृत्तं अर्थात् छः घटी प्रमाण तिथिका विधान किया गया है। विद्धातिथि होने पर किसी-किसी आचार्यने तीन सुहृत्तं प्रमाण तिथिको भी अप्राज्ञ वतया है।

समस्त शुभ कार्योंमें व्यतीपात योग, भद्रा, वैधति नामका योग, अमावास्या, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, कुलिक योग, अद्वयान्त, महापात, विक्रमभ और वज्रके तीन-तीन दण्ड, परिध योगका पूर्वार्द्ध, शूलयोगके पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्डके छः छः दण्ड एवं व्याघात योगके नौ दण्ड समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं।

प्रत्येक शुभकार्यके लिए पञ्चाङ्गशुद्धि देखी जाती है—तिथि, नक्षत्र, वार, योग और करण। इन पाँचोंके शुद्ध होनेपर ही कोई भी शुभ कार्य करना श्रेष्ठ होता है। यों तो भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए भिन्न-भिन्न तिथियाँ ग्राह्य की गयी हैं, परन्तु समस्त शुभ कार्योंमें प्रायः १।१।१।१।१।१।१।३० तिथियाँ त्याज्य मानी गयी हैं। ग्राह्य तिथियोंमें भी क्षय और वृद्धि तिथियोंका निषेध किया गया है।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती ये २७ नक्षत्र हैं। धनिष्ठासे रेवतीतक पाँच नक्षत्रोंमें पञ्चक माना जाता है। इन पाँचों

नक्षत्रोंमें दृण-काष्ठका संग्रह करना, छटिया वगाना एवं झोंपड़ी छवाना निषिद्ध है। अश्विनी, रेवती, मूल, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन पाँच नक्षत्रोंमें जन्मे बालकको मूलदोष माना जाता है। कोई-कोई मघा नक्षत्रको भी मूलमें परिगणित करते हैं।

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी शुभ एवं स्थिर संज्ञक हैं। इनमें मकान बनवाना, बगीचा लगाना, जिनालय बनवाना, शान्ति और पौष्टिक कार्य करना शुभ होता है। स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र चर या चल संज्ञक हैं। इनमें मशीन चलाना, सवारी करना, यात्रा करना शुभ है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा उग्र अथवा क्रूर संज्ञक हैं। इनमें प्रत्येक शुभ कार्य त्याज्य है। विशाखा और कृत्तिका मिश्र संज्ञक हैं, इनमें सामान्य कार्य करना अच्छा होता है। हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् क्षिप्र अथवा लघु संज्ञक हैं। इनमें दुकान खोलना, ललितकलाएँ सीखना या ललितकलाओंका निर्माण करना, सुकहमा दायर करना, विद्यारम्भ करना, शाख लिखना उत्तम होता है। मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्र संज्ञक हैं। इनमें गायन-वादन करना, वस्त्र धारण करना, यात्रा करना, झोड़ा करना, आभूषण बनवाना आदि शुभ हैं। मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुण संज्ञक हैं। इनका प्रत्येक शुभ कार्यमें त्याग करना आवश्यक है।

विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, बुद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिष, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैद्यति ये २७ योग होते हैं। इन योगोंमें वैद्यति और व्यतीपात योग समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं, परिष योगका आधा भाग वर्ज्य है। विष्कम्भ और वज्रयोगकी तीन-तीन घटिकाएँ, शूलयोगकी पाँच घटिकाएँ एवं गण्ड और अतिगण्डकी-छः छः घटिकाएँ शुभ कार्योंमें वर्ज्य हैं।

वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनी, चतुषपद,

नाग और क्रिस्तुन ये ११ करण होते हैं। वव करणमें शान्ति और पौष्टिक कार्य; बालवमें गृह निर्माण, गृह प्रवेश, निधु स्थपन, दान-गुण्यके कार्य; कौलवमें पारिवारिक कार्य, मैत्री, निवाह आदि; तैतिलमें नौकरी, सेवा, राजासे मिलना, राजकार्य आदि; गरमें कृषि कार्य, वणिज-में व्यापार, क्रय-विक्रय आदि कार्य; शिष्टिमें उग्र कार्य, शकुनीमें मन्त्र-तन्त्र सिद्धि, औषधनिर्माण आदि; चतुषपदमें पशु खरीदना-बेचना, पूजा-पाठ करना आदि; नागमें स्थिर कार्य एवं क्रिस्तुनमें चित्र खींचना, नचन, गाना आदि कार्य करना श्रेष्ठ माने गये हैं। विष्टि—भद्रा समस्त शुभ कार्योंमें त्याज्य है।

वारोंमें रविवार, मंगलवार और शनिवार क्रूर माने गये हैं। इनमें शुभ कार्य करना प्रायः त्याज्य है। मत्तान्तरसे रविवार ग्रहण भी किया गया है, किन्तु मंगलवार और शनिवारको सर्वथा त्याज्य बताया है। शुक्र, गुरु और बुधवार समस्त शुभ कार्योंमें प्राह्य माने गये हैं। सोम-वारको मध्यम बताया है। राजाभिषेक, नौकरी, मन्त्रसिद्धि, औषध-निर्माण, विद्यारम्भ, संग्राम, अलंकार-निर्माण, शिल्प-निर्माण, पुण्यकृत्य, उत्सव, यात्रा-निर्माण, सूक्तिका-ज्ञान आदि कार्य रविवारको करनेसे; कृषि, व्यापार, गान, चाँदी-मोतीका व्यापार, प्रतिष्ठा आदि कार्य सोम-वारको करनेसे; क्रूरकार्य, खान खोदना, अपरेशन कराना, सूक्तिका-ज्ञान

१. न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विधारिधातादिषु तन्त्रसिद्धिः।

न कुर्यान्मङ्गलं विष्ट्यां जीवितार्थं कदाचन।

शुक्ले पूर्वावेष्टमीपञ्चदश्योभैरवाद्दश्यां चतुर्थी परार्धे।

कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात् तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशमशुतिथ्योः॥

भावार्थ—भद्रामें कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है। शुक्ल पक्षकी अष्टमी और पौर्णमासीके पूर्वार्धमें तथा एकादशी और चतुर्थीके परार्धमें एवं कृष्णपक्षकी तृतीया और दशमीके परार्धमें और सप्तमी तथा चतुर्दशीके पूर्वार्धमें भद्रा होती है।

—सुगम ज्योतिष पृ० ८५

आदि काम मंगलको करनेसे ; अक्षरारम्भ, शिलान्यास, कर्णवेध, काव्यनिर्माण, काव्य-तर्क-कला आदिका अध्ययन, व्यापारम करना, कुशली लड़ना आदि कार्य बुधको करनेसे ; दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ, औपध-निर्माण, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, सीमन्तोन्नयन, पुंस्वन, जातकर्म, विवाह, स्नानपान, सूतिकास्नान, भूसुपवेशन एवं अन्नप्राशन आदि माङ्गलिक कार्य गुरुवारको करनेसे ; विद्यारम्भ, कर्णवेध, चूड़ाकरण, वाग्दान, विवाह, व्रतोपनयन, पोद्दा संस्कार आदि कार्य शुक्रवारको करनेसे एवं गृहप्रवेश, दीक्षारम्भ तथा अन्य क्रूर कार्य शनिवारको करनेसे सफल होते हैं ।

विशेष विचारके लिए तो प्रत्येक कार्यके विहित सुहृत्तको ही ग्रहण करना चाहिए । सामान्यसे उपयुक्त तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारसिद्धिका विचारकर जो तिथि आदि जिस कार्यके लिए प्राद्य बताया गये हैं, उन्हें उस कार्यको करना चाहिए । शुभ समयपर किया गया कार्य ज्यादा फल देता है ।

व्रतके लिए छः घटी प्रमाण तिथि न माननेवालोंके यहाँ दोष

ये गृह्णन्ति सूर्योदयं शुभदिनमसद्विष्टपूर्वा नराः
तेषां कार्यमनेकधा व्रतविधिर्माणमेवेति च ॥

धर्माधर्माविचारहेतुरहिताः कुर्वन्ति मिथ्यानिशम्
तिर्यक्शुभमवाश्रिता जिनपतेर्वाह्यं गता धर्मतः ॥१०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टि सूर्योदयमें रहनेवाली तिथिको ही शुभ दिन मानते हैं, उनके व्रत और तिथियाँ अनिश्चित रहनेके कारण अनेक हो सकते हैं तथा व्रतविधि और कार्य भी अनिश्चित ही होते हैं । ये धर्म और अधर्मके विचारसे रहित होकर भ्रष्ट तिथिमें व्रत करते हैं, जिससे जैनधर्मसे विरुद्ध आचरण करनेके कारण तिर्यञ्च और नरक गतिको प्राप्त

होते हैं । अभिप्राय यह है कि उदयकालीन तिथिको ही प्रमाण मानकर व्रत करना आगमविरुद्ध है । आगमविरुद्ध व्रत करनेसे नरक और तिर्यङ्ग गतिमें भ्रमण करना पड़ता है ।

विवेचन—विधिपूर्वक व्रत करनेसे समस्त पाप-सन्ताप दूर हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा परम्परासे मोक्षकी प्राप्ति होती है । जैन-चार्योंने व्रतकी तिथिका प्रमाण सूर्योदय कालमें कमसे कम छः घटी माना है, इससे कम प्रमाण तिथि होनेपर पिछले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है । अन्य धर्मवालोंने व्रतके लिए उदय तिथिको ही ग्रहण किया है । यदि उदयकालमें एक घटी या इससे भी कम तिथि हो तो व्रतके लिए ग्रहण करनेका आदेश दिया है । उदाहरणार्थ यों कहना चाहिए कि 'क' व्यक्तिको चतुर्दशीका व्रत करना है, चतुर्दशी शनिवारको एक घटी दस पल है । जैनचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनि-वारको नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस दिन चतुर्दशी-उदयकालमें छः घटीसे न्यून है, अतः शुक्रवारको ही व्रत करना होगा । अजैन—वैदिक आचार्योंके मतानुसार चतुर्दशीका व्रत शनिवारको ही करना होगा ; क्योंकि उदयकालमें चतुर्दशी शनिवारको है । इनका कथन है कि उदय-कालीन तिथि ही दिनभरके लिए प्राद्य मानी जाती है ।

व्रतविधिमें सबसे आवश्यक अंग समयशुद्धि है । असमयका व्रत कल्याणकारी नहीं हो सकता है । समयदृष्टि श्रावक अपने समयदर्शन गुणकी विशुद्धिके लिए व्रत करता है, वह व्रतके दिनोंमें अपने रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचारको अत्यन्त पवित्र बनानेका प्रयत्न करता है । आरम्भ और परिग्रहका उत्तम समयके लिए त्याग करता है । भगवान्की पूजा करता हुआ उनके गुणोंका चिन्तन करता है, अपनी आत्मामें पवित्रताकी भावना भरता है । सारांश यह है कि वह अपनी भावना सुनिधर्मको प्राप्त करनेकी करता है । व्रती श्रावक नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकारके व्रतोंका पालन करता हुआ अपनी आत्माको उज्ज्वल, निर्मल और कर्मकलङ्कसे रहित करता है । व्रत आत्माके शोधनमें बड़े-बड़े

सहायक होते हैं। इस व्रततिथिनिर्णयमें आचार्यने व्रतोंके लिए तिथियोंका निश्चय किया है। जेनाचार्यमें व्रत-उपवासके लिए तिथियोंका विधान किया गया है। आचार्यने यहाँ कितने प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत करना चाहिए, इसका विलारसे निरूपण किया है। योग्य समयमें व्रत करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है।

तिथिद्वासे प्रकर्तव्य किं विधानम् ? सकला तिथिः का ? कथं व्रतनिर्णयः इति चेत्तदाह—

अर्थ—तिथिके हासमें व्रत करनेका क्या नियम है ? कब व्रत करना चाहिए। सकला—सम्पूर्ण तिथि क्या है। उसमें किस प्रकारका व्रत व्यक्त किया गया है ? इस प्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर आचार्य कहते हैं—

तिथिहासमें व्रत करनेका विधान

त्रिमुहूर्तेषु यत्रार्क उदेत्यस्तं समेति च ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया उपवासादिकर्मणि ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—यस्यां तिथौ त्रिमुहूर्तव्यप्रे वर्तमानेषु पद-स्वर्कः उदेति सा तिथिः दैवसिकव्रतेषु रत्नत्रयाष्टाद्विकदशाला-क्षणिकरत्नावलीकनकावलीद्विकावत्येकावलीमुक्तावलीयोडशका-रणादिषु सकला ज्ञेया। चकारात् या तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्ता-दिनातदिवसेऽपि वर्तमाना तिथ्युदयकाले त्रिमुहूर्त्तादिना गतादि-वसेऽपि वर्तमाना तिथिः त्रिमुहूर्त्तादिना सा अस्तंगता तिथिज्ञेया। तद्व्रतं गतदिवसेष्व स्यात् अर्कस्तमनकाले त्रिमुहूर्त्ताधिकत्वा-दिति हेतोः। चशब्दात् द्वितीयोऽर्थोऽपि ग्राह्यः त्रिमुहूर्तेषु सरसु

१. नमिस्तकलदेवपापतापापहारम्,

जिनपसमुद्दिष्टं जन्मपायोधितारम्।

कुरुत सकललोकाश्चरमावेन सारम्,

व्रतमिदमिति पूज्यं देवनाथस्य पूज्यम्॥—व्रतोद्यापनसंग्रह पृ० १२

यस्यामर्कः अस्तमेति सा तिथिर्जिनरात्रिर्गगनयश्चर्मचन्दनयश्च-दिषु नैशिकव्रतेषु सकला ग्राह्या; इति तारपर्यार्यः।

अर्थ—दैवसिक व्रतों में—रातयय, अष्टाद्विका, दशालक्षण, रत्न-वली, एकावली, द्विकावली, कनकावली, मुक्तावली, योडशकारण आदिमें सूर्योदयके समय तीन मुहूर्त अर्थात् छः घटीसे लेकर छः मुहूर्त अर्थात् बारहघटी पर्यन्त उक्त व्रतोंमें प्रतिपादित तिथियोंके होनेपर व्रत किये जाते हैं। रात्रिव्रतोंमें—जिनरात्रि, आकाशपञ्चमी, चंदनपष्टी, नक्षत्रमाला आदिमें अलकालीन तिथि ली गयी है अर्थात् जिस दिन तीनमुहूर्त—छःघटी तिथि सूर्यके अस्त समयमें रहे, उस दिन वह तिथि नैशिक व्रतोंमें ग्रहण की गयी है। अभिप्राय यह है कि दैवसिक व्रतोंमें उदयकालमें छःघटी तिथिका और नैशिक व्रतोंमें अस्तकालमें छःघटी तिथिका रहना आवश्यक है।

विवेचन—श्रावकके व्रत मूलतः दो प्रकारके होते हैं—नित्य व्रत और नैमित्तिक व्रत। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतोंका नित्य पालन किया जाता है, अतः वे नित्य व्रत कहे जाते हैं। नैमित्तिक व्रतोंका पालन किसी विशेष अवसरपर ही किया जाता है, इनके लिए तिथि और समय निश्चित है, तथा नैमित्तिक व्रतोंके कालमें श्रावक अपने मूल गुण और उत्तरगुणोंको विशुद्ध करता है, उत्तरोत्तर अपनी आत्माका विकास करता जाता है। नैमित्तिक व्रतोंकी संख्या १०८ है, इन १०८ व्रतोंमें कुछ पुनरुक्त व्रत होनेके कारण व्यवहारमें ८० व्रत लिखे जाते हैं। वर्तमानमें प्रमुख दस-पन्द्रह व्रतोंका ही प्रचार देखा जाता है। नैमित्तिक व्रतोंके प्रधान दो भेद हैं—दैवसिक और नैशिक। जिन व्रतोंकी समस्त क्रियाएँ दिनमें की जाती हैं, वे दैवसिकव्रत एवं जिनकी क्रियाएँ रातमें सम्पन्न की जाती हैं, वे नैशिकव्रत कहलाते हैं। दोनों ही प्रकारके व्रतोंमें प्रोषणोपवास, ब्रह्मचर्य एवं धर्मध्यानका करना आवश्यक माना गया है। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनका व्रतकी उपयोगिता और व्यावहारिकताके अनुसार रात या दिनमें करना आवश्यक है। रत्नावलीव्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत

श्रावण कृष्ण द्वितीयासे आरम्भ किया जाता है। इसमें प्रत्येक मासमें छः उपवास करनेका विधान है। व्रत करनेवाला प्रथम श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन एकाशन करता है और श्रावण कृष्ण द्वितीयाका उपवास करता है। उपवासके दिन पूजा, स्वाध्याय और जाप करता हुआ ब्रह्मचर्यसे रहता है। श्रावण कृष्ण तृतीयाके दिन दोनों समय शुद्ध भोजन करता है, पुनः चतुर्थीके दिन एकाशन करता है तथा पञ्चमीको प्रोषधोपवास करता है। सप्तमीको एकाशन करता हुआ अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन उपवास—द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमीको करता है। शुक्लपक्षमें द्वितीयाको एकाशन कर तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको एकाशन, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको एकाशन, सप्तमीको एकाशन और अष्टमीको उपवास करता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करता है। श्रावणमास वर्षका प्रथम मास माना जाता है, अतः व्रतका आरम्भ श्रावण माससे होता है। व्रत करनेवाला श्रावण में कुल छः उपवास करता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासमें कृष्णपक्षमें द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी तथा शुक्लमें तृतीया, पञ्चमी और अष्टमीको उपवास करने चाहिए। प्रत्येक महीनेमें छः उपवास करते हुए वर्षान्तक कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। रत्नावलीव्रत एक वर्षतक ही किया जाता है। द्वितीय वर्ष भाद्रपद मासमें उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापनकी शक्ति न हो तो दो वर्ष व्रत करना चाहिए।

एकावलीव्रत भी श्रावण माससे आरम्भ किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना तथा श्रावण शुक्लपक्षमें प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना; इस प्रकार श्रावण मासमें कुल सात उपवास करना। भाद्रपद आदि मासोंमें भी कृष्णपक्षकी चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी इस प्रकार कुल सात उपवास प्रत्येक मासमें करने चाहिए। वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। एक वर्ष व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए।

द्विकावलीव्रतमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है। इस व्रतके लिए भी दो उपवासोंका दिन ग्रहण किया गया है। श्रावण कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पंचमी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-अमावास्या तथा शुक्लपक्षमें प्रतिपदा-द्वितीया, पंचमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमा इस प्रकार कुल सात उपवास करने चाहिए। भाद्रपद आदि मासोंमें भी उक्त तिथियोंमें ही व्रत करना चाहिए। एक वर्षमें कुल ८४ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवास दो दिनोंका होता है।

इन दैवसिक व्रतोंके लिए सूर्योदय कालमें कमसे कम छःघटीतिथि-का रहना आवश्यक है। जैसे किसीको रत्नावलीव्रत करना है, इस व्रतका प्रथम उपवास श्रावण कृष्ण द्वितीयाको करना पड़ता है। यदि शनि-वारको द्वितीया तिथि छःघटीसे अल्प हो तो यह व्रत शुक्रवारको किया जायगा। इसी प्रकार आगे वाले व्रतोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए।

आकाशपञ्चमीव्रत भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीको किया जाता है। चतुर्थीको एकाशन कर पञ्चमीको व्रत रखना चाहिए। रात णमोकार मन्त्रका जाप करते हुए, स्नान पढ़ते हुए, शाख स्वाध्याय करते हुए चित्ताना चाहिए। रातको जानाकर चित्ताना आवश्यक है। खुले स्थानमें रातको पद्मासन लगाकर ध्यान करना चाहिए। इस व्रतके दिन रात आकाशकी ओर देखते हुए चित्ताना जाता है।

भाद्रपद कृष्णा षष्ठीको चन्द्रनषष्ठीव्रत किया जाता है। इस दिन प्रोषधोपवास करते हुए रात जागरण करना पड़ता है। चन्द्रनषष्ठी व्रतमें रातको विशेष क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। खड़े होकर पञ्च परमेष्ठीका ध्यान करते हुए रात चित्तानेका इस व्रतमें विधान है। रात्रिकी क्रियाओंकी विशेषता होनेके कारण ये व्रत नैशिक कहलाते हैं।

१. यां तिथिं समनुप्राप्य याल्यस्तं पश्चिनीपतिः।
सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ॥
यां प्राप्यास्तमुत्तर्यकः सा चेत् स्यात्त्रिमुहूर्तैर्गता।
धर्मकृत्येषु सर्वेषु सम्पूर्णां तां विदुर्बुधाः ॥ —निर्णयसिन्धु पृ० १३

नैशिक व्रतोंके लिए उदयकालीन तिथि^१ ग्रहण नहीं की जाती है। अलकालीन तिथि लेनेका विधान किया गया है। सूर्यके अल समयमें तीन घटी तिथि हो तो प्रदोष या नैशिक व्रत करने चाहिए। उदाहरण—रविवारको पञ्चमी तिथि १० घटी १५ पल है, इस दिन उदयकालीन तिथि है, पर अल समयमें पञ्चमी नहीं है, किन्तु पछी आ जाती है। अतः आकाशपञ्चमीका व्रत रविवारको न कर शनिवारको ही करना चाहिए। यद्यपि ऐसी अवस्थामें दशलक्षणव्रत रविवारसे ही आरम्भ किया जायगा, किन्तु आकाशपञ्चमीका व्रत शनिवारको ही कर लिया जायगा। 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तवते सदा' अर्थात् रात्रि-व्रतोंके लिए सन्ध्याकालीन तिथिका^१ ग्रहण करना आवश्यक है। आकाश-पञ्चमीव्रत रात्रि-व्रतोंमें परिगणित है, अतः इसके लिए सन्ध्याकालमें पञ्चमी तिथिका रहना आवश्यक है।

तिथिग्रासे सति किं विधानमिति चेत्तदाह—

अर्थ—तिथिग्रास होनेपर व्रत करनेका क्या नियम है, इस प्रश्नका आचार्य उत्तर देते हैं—

दशलाक्षणिक और अष्टाहिक व्रतोंमें दोचकी

तिथि घट जानेपर व्रत करनेका नियम

तिथिग्रासे प्रकर्तव्यं सोदये दिवसे व्रतम्।

तदादिदिनमारभ्य व्रतान्तं क्रियते व्रतम् ॥१२॥

१. त्रिमुहूर्त प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति।

नक्तं तत्र तु कर्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥ —नि० सि० ६० १५

मुहूर्तानं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।

नक्षत्रदर्शनात्कम्पाहुरन्ये गणाधिपाः ॥

प्रदोषव्यापिनी न स्याद्विचानक्तं विधीयते।

तिथौ सत्यामयो नक्तं सदैवार्कदिने दिवाः।

—ज्योतिषचन्द्रार्क संस्कृत टीका पृ० ५७

अर्थ—तिथिके क्षय होनेपर जिस दिन उदयकालमें छः घटी तिथि हो, उसी दिनसे व्रत आरम्भ करना चाहिए। तत्पर्यं यह है कि दश-लक्षण एवं अष्टाहिका आदि व्रतोंमें तिथि-क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए।

तिथिग्रासे क्षये सति वा कुलाद्रियटिकाप्रमाणहीने सति सोदये दिवसे व्रतं कार्यम्। सोदयस्य लक्षणं किमिति चेत्तर्हि सोदयं दिवसं ग्राह्यं कुलाद्रियटिकाप्रमिति वक्तव्यम्^१ व्रतप्रारम्भस्यादि-दिनमारभ्य व्रतान्तं व्रतं क्रियते। यथाष्टाहिकदिवसेषु मध्ये काचित्तिथिः क्षयं गता अतो व्रतस्यादिदिनं सप्तमीदिनं ग्राह्यम्। एवं दशलाक्षणिकदशदिनेषु मुख्यपञ्चमी चतुर्दशीपर्यन्तेषु तिथि-क्षयवशाच्चतुर्थी ग्राह्या। तथैव सर्वत्रापि ग्राह्यम्। परञ्चैतावान् विशेषः, अयं नियमः दैवसिकनियतावधिकनैशिकेषु भवति ग्राह्यः। न तु मासिकादिषु मासिकादीनि मेघमालाषोडशकार-णादीनि। तत्रापि यथा षोडशकारणव्रतं प्रतिपद्दिनमारभ्य षोडशभिरुपवासैः पञ्चदशपारणाभिश्चैकत्रीकृतैरेकत्रिंशद्विचसैः प्रतिपत्पर्यन्तं समाप्तिमुपगच्छति। यदि प्रतिपद्मारभ्य तृतीय-प्रतिपत्पर्यन्तं तिथि-क्षयवशाद्दिनसंख्याहानिः स्यात्; तदा यस्मिन् दिने प्रतिपद्मारभ्य प्रतिपत्पर्यन्तं कार्यं, तस्य प्रतिपत्त्रयमेव ग्राह्यं कथितम्, न तु मासिकजातस्य दिनं त्वपरमासे ग्राह्यं भवति, तदा व्रतकर्तुः व्रतहानिर्भवति।

अर्थ—तिथिके क्षय होनेपर अथवा उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिके न होनेपर सोदयमें—एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। सोदयका लक्षण क्या है? आचार्य कहते हैं—जिस दिन कमसे कम छः घटी प्रमाण तिथि हो, वही दिन सोदय कहलाता है। अतः तिथिक्षय होनेपर या उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिके न होनेपर व्रत प्रारम्भ होनेके एक दिन पहलेसे ही व्रत करना चाहिए और व्रतकी समाप्ति होनेके एक दिन पहलेसे ही व्रत करना चाहिए और व्रतकी समाप्ति

पर्यन्त व्रत करते रहना चाहिए। जैसे अष्टाहिका व्रत अष्टमीसे आरम्भ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है, इन आठ दिनोंके मध्यमें दशमी तिथिका अभाव है, अतः यहाँ आठ दिनके बदले सात ही दिन व्रत करना पड़ेगा। ऐसी अवस्थामें मध्यमें तिथिके क्षय होनेपर सप्तमीसे ही व्रत-रम्भ किया जायगा। इसी प्रकार दशलक्षणिकव्रतके दिनोंमें भी यदि तिथिका अभाव हो तो पञ्चमीके बदले चतुर्थीसे ही व्रत आरम्भ करने चाहिए। क्योंकि पर्युषण पर्वका आरम्भ भाद्रपद शुक्ला पञ्चमीसे लेकर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी तक माना जाता है। यह दशलक्षणव्रत दस दिनों तक किया जाता है, यदि इसमें किसी तिथिकी हानि होनेसे दिन-संख्या कम हो तो यह व्रत चतुर्थीसे ही कर लिया जायगा। हाँ, जिन्हें पञ्चमी, अष्टमी, चतुर्दशी आदिका व्रत करना होगा, उन्हें तो इन तिथियोंके आनेपर ही करना होगा।

इस नियम—तिथिका अभाव होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिये—में इतनी विशेषता है कि यह सर्वत्र लागू नहीं होता। निम्न अवधिवाले दैवसिक और नैसिक व्रतोंमें ही लागू होता है। मासिक व्रत मेघमाला और षोडशकारण आदिमें नहीं लगता है। जैसे षोडश-कारणव्रत प्रतिपदासे आरम्भ होकर सोलह उपवास और पन्द्रह पारणाएँ, इस प्रकार इकतीस दिनतक करनेके उपरान्त प्रतिपदाको समाप्त होता है। इस व्रतमें तीन प्रतिपदाएँ पड़ती हैं—पहली भाद्रपद कृष्णपक्षकी, द्वितीय भाद्रपद कृष्णपक्षकी और तृतीय आश्विन कृष्ण-पक्षकी। यदि पहली प्रतिपदा—भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तीसरी प्रतिपदा—आश्विन कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तक किसी तिथिकी हानि होनेसे दिन संख्या कम हो तो भी प्रतिपदासे आरम्भ कर तीसरी प्रतिपदा अर्थात् भाद्रपद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विन मासकी कृष्ण प्रतिपदातक व्रत करना चाहिए। यहाँ तीनों प्रतिपदाओंके ग्रहण करनेका विधान किया गया है। मासिक व्रतोंमें दूसरे महीनेके दिन ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। भाद्रपदसे आरम्भ होनेवाला व्रत

श्रावणसे आरम्भ नहीं किया जा सकता है। ऐसा करनेसे व्रत हानि है, और व्रत करनेवालेको फल नहीं मिलता।

विशेषान्वन—पर्व व्रतोंके अतिरिक्त नियत अवधिवाले भी व्रत होते हैं। पर्व व्रतोंके लिए आचार्यने तिथिका प्रमाण छः घटी नियमित किया है, जिस दिन छः घटी प्रमाण व्रत तिथि होगी, उसी दिन व्रत किया जायगा। नियत अवधिवाले व्रतोंके लिए यह निश्चय करना है कि व्रतका निश्चित अवधिके भीतर यदि कोई तिथि नष्ट—क्षय हो जाय तो कब व्रत करना चाहिए। क्योंकि तिथि क्षय हो जानेसे नियत अवधिमें एक दिन घट जायगा, पूरे दिन व्रत नहीं किया जा सकेगा। ऐसी अवस्थामें व्रत करनेके लिए क्या व्यवस्था करनी होगी? आचार्यने इसके लिए नियम बताया है कि नियत अवधिवाले दशलक्षणिक व्रत और अष्टाहिक व्रतोंके लिए बीचमें किसी तिथिका क्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए, जिससे व्रत-दिनोंकी संख्या कम न हो सके।

ज्योतिषशास्त्रमें व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रमाण निश्चित किया गया है। यद्यपि व्रतोंके लिए तिथियोंका प्रतिपादन करना आचारशास्त्रका विषय है, परन्तु उन तिथियोंका समय निर्धारित करना ज्योतिषशास्त्रका विषय है। प्राचीनकालमें प्रधान रूपसे ज्योतिषशास्त्रका उपयोग तिथि और समय निर्णयके लिए ही किया जाता था। इस शास्त्रका उत्तरोत्तर विकास भी कत्त'व्य कर्मोंके समय निर्धारणके लिए ही हुआ है। उदय-प्रभसूरि, वसुनादि आचार्य और रत्नशेखरसूरिने शुभाशुभ समयका निर्धारण करते हुए बताया है कि व्रतोंके लिए प्रतिपादित तिथियोंका यथार्थरूपसे व्रतके समयोंमें ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा असमयमें किये गये व्रतोंका फल विपरीत होता है। जो श्रावक नैमित्तिक व्रतोंका पालन करता है, वह अपने कर्मोंकी निर्जरा असमयमें ही कर लेता है। समस्त आरम्भ और परिग्रह छोड़नेमें असमर्थ गृहस्थको अपनी समाधि सिद्ध करनेके लिए नित्य नैमित्तिक व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिए।

अष्टाहिका और दशलक्षणी व्रतके लिए जो नियम बताया गया है

कि एक तिथि घट जानेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए, यह नियम षोडशकारण व्रतमें लागू नहीं होता है। यह व्रत बीचमें तिथिके घट जानेपर भी प्रतिपदासे ही प्रारम्भ किया जायगा। मासिक व्रत होनेके कारण भाद्रपद मासकी कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनमासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदातक यह किया जाता है। बीचमें एक तिथिका अभाव होनेपर यह श्रावण मासकी पूर्णिमासे आरम्भ करना होगा, जिससे तीन महीनोंमें यह व्रत सम्पन्न हुआ माना जायगा। आगममें दाही मास—भाद्रपद और आश्विनका विधान है, अतः एक दिन पहले षोडशकारण व्रत करनेसे मासव्युति नामका दोष आवेगा, जिससे पुण्यके स्थानमें व्रत करनेवालेको पापका फल भोगना पड़ेगा। प्रचलित व्रतोंमें लगातार कई दिनोंतक चलनेवाले प्रधान तीन ही व्रत हैं—दशलक्षण, अष्टाहिका और सोलहकारण। इनमें पहलेके दो व्रतोंके लिए एक तिथि घटनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान है, पर अन्तिम तीसरे व्रतके लिए यह विधान नहीं है। इस व्रतमें तीन प्रतिपदाओंका पड़ना आवश्यक है। तीनों पक्षकी तीन प्रतिपदाओंके आ जानेपर ही व्रत पूर्ण माना जाता है। जैनेतर ज्योतिषके आचार्योंने भी नियत अवधिवाले व्रतोंकी तिथियाँका निर्णय करते हुए बताया है कि एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहले और एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन वादतक व्रत करने चाहिए। तिथिकी हानि होनेपर सूर्योदयकालमें थोड़ी भी तिथि हो तो नियत अवधिके भीतर ही व्रतकी समाप्ति हो जाती है।

जैन एवं जैनेतर तिथि-निर्णयमें हतना अन्तर है कि जैन सिद्धान्त सूर्योदयकालमें तिथिका प्रमाण छः घटी मानता है, अतः सूर्योदय समयमें इससे अल्पप्रमाण तिथिके होनेपर तिथिक्षय या तिथि-ह्रासवाली बात आ जाती है। जैनेतर सिद्धान्तमें उदयकालमें अल्पप्रमाण भी तिथि होनेपर उस दिन वह तिथि व्रतोपवासके लिए ग्राह्य मान ली गयी है; जिससे नियत अवधिवाले व्रतोंको एक दिन पहले करनेकी नौबत नहीं

आती है। हाँ, कभी-कभी समग्र तिथिका अभाव होने पर एक दिन पहले व्रत करनेवाली स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

प्रोपधोपवास करनेके लिए तो आचार्यने छः घटी प्रमाण तिथि व्रत लायी है तथा दैवसिक एवं नैसिक व्रतोंके लिए भी छः घटी प्रमाण उदय और अस्तकालीन तिथियाँ ग्रहण की गयी हैं, परन्तु एकाशनके लिए तिथि कैसे ग्रहण करनी चाहिए और एकाशन करनेवाले श्रावकको कब एकाशन करना चाहिए, इसके लिए क्या नियम बताया है ?

एकाशनके लिए तिथिविचार

ज्योतिषशास्त्रमें एकाशनके लिए बताया गया है कि 'मध्याह्न्यापिनी ग्राह्या एकमन्त्रे सदा तिथिः' अर्थात् दोपहरमें रहनेवाली तिथि एकाशनके लिए ग्रहण करनी चाहिए। एकाशन दोपहरमें किया जाता है, जो एक भुक्तिका—एकवार भोजन करनेका नियम लेते हैं, उन्हें दोपहरमें रहनेवाली तिथिमें करना चाहिए। एकाशन करनेके सम्बन्धमें कुछ विवाद है। कुछ आचार्य एकाशन दिनमें कभी भी कर लेनेपर जोर देते हैं और कुछ दोपहरके उपरान्त एकाशन करनेका आदेश देते हैं। ज्योतिषशास्त्रमें एकाशनका समय निश्चित करते हुए बताया गया है कि 'दिनार्ध-समयेऽतीते भुञ्ज्यते नियमेन यत्' अर्थात् दोपहरके उपरान्त ही भोजन करना चाहिए। यहाँ दोपहरके उपरान्तका अर्थ अपराह्नकालका पूर्व-उत्तर भाग नहीं है, किन्तु अपराह्नकालका पूर्व भाग लिया गया है। जो लोग एकाशन दस बजे करनेकी सम्मति देते हैं, वे भी ज्योतिषशास्त्रकी अनभिज्ञताके कारण ही ऐसा कहते हैं। आजकलके समयके अनुसार एकाशन एक बजे और दो बजेके बीचमें कर लेना चाहिए। दो बजेके उपरान्त एकाशन करना शास्त्र-विरुद्ध है।

एकाशनके लिए तिथिका निर्णय इस प्रकार करना चाहिए कि दिन-मानमें पाँचका भाग देकर तीनसे गुणा करने पर जो गुणनफल आवे, उतने वज्यादि, मानके तुल्य एकाशनकी तिथिका प्रमाण होने पर एकाशन

करना चाहिए। उदाहरण—किसीको चतुर्दशीका एकाशन करना है, इस दिन रविवारको चतुर्दशी २३ घटी ४० पल है और दिनमान ३२ घटी ३० पल है। क्या रविवारको चतुर्दशीका एकाशन किया जा सकता है? दिनमान ३२।३० में पाँचका भाग दिया—३२।३० ÷ ५ = ६।३० इसको तीनसे गुणा किया—६।३० × ३ = १९।३० गुणनफल हुआ। मध्याह्नकालका प्रमाण गणितकी दृष्टिसे १९।३० घट्यादि हुआ। तिथिका प्रमाण २३।४० घट्यादि है। यहाँ मध्याह्न कालके प्रमाणसे तिथिका प्रमाण अधिक है अर्थात् तिथि मध्याह्न कालके पश्चात् भी रहती है, अतः एकाशनके लिए इसे ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् चतुर्दशीका एकाशन रविवारको किया जा सकता है। क्योंकि रविवारको मध्याह्नमें चतुर्दशी तिथि रहती है।

दूसरा उदाहरण—मंगलवारको अष्टमी ७ घटी १० पल है, दिनमान ३२।३० पल है। एकाशन करनेवालेको क्या इस अष्टमीको एकाशन करना चाहिए? पूर्वोक्त गणितके नियमानुसार ३२।३० ÷ ५ = ६।३० इसको तीनसे गुणा किया तो—६।३० × ३ = १९।३० घट्यादि गुणनफल आया, यही गणितागत मध्याह्नकालका प्रमाण हुआ। तिथिका प्रमाण ७ घटी १० पल है, यह मध्याह्नकालके प्रमाणसे अल्प है, अतः मध्याह्नकालमें मंगलवारको अष्टमी तिथि एकाशनके लिए ग्रहण नहीं की जायगी, क्योंकि मध्याह्नकालमें इसका अभाव है। अतः अष्टमीका एकाशन सोमवारको करना होगा।

एकाशन करनेके तिथि-प्रमाणमें और प्रोपयोपवासके तिथि-प्रमाणमें बड़ा भारी अन्तर आता है। प्रोपयोपवासके लिए मंगलवारको अष्टमी तिथि ७।३० होनेके कारण प्राद्य है। क्योंकि छः घटीसे अधिक प्रमाण है, अतः उपवास करनेवाला मंगलको व्रत करे और एकाशन करनेवाला सोमवारको व्रत करे; यह आगमकी दृष्टिसे अनुचित-सा प्रतीत होता है। जैनाचार्योंने इस विवादको बड़े सुन्दर ढंगसे सुलझाया है। मूलसंघके आचार्योंने एकाशन और उपवास दोनोंके लिए ही कुलादि—छः घटी

प्रमाण तिथि ही प्राद्य बतायी है। आचार्य सिंहनन्दिका मत है कि एकाशनके लिए विवादस्थ तिथिका विचार न कर छः घटी प्रमाण तिथि ही ग्रहण करनी चाहिए। सिंहनन्दिने एकाशनकी तिथिका विस्तार रूपसे विचार किया है, उन्होंने अनेक उदाहरण और प्रति उदाहरणोंके द्वारा मध्याह्नव्यापिनी तिथिका स्पष्टन करते हुए छः घटी प्रमाणको ही सिद्ध किया है। अतएव एकाशनके लिए पूर्वतिथियोंमें छः घटी प्रमाण तिथियोंको ही ग्रहण करना चाहिए।

‘तिथिर्यथोपवासे स्यादेकभक्तेऽपि सा तथा’ इस प्रकारका आदेश रत्नशेखर सुरिने भी दिया है। जैनाचार्योंने एकाशनकी तिथिके सम्बन्धमें बहुत कुछ उदाहरण दिए हैं। गणितसे भी कई प्रकारसे आनयन किया है। प्राकृत ज्योतिषके तिथि-विचार प्रकरणमें विचार-विनिमय करते हुए बताया है कि सूर्योदयकालमें तिथिके अल्प होने पर मध्याह्नमें उत्तर-तिथि रहेगी। परन्तु एकाशनके लिए रसघटी प्रमाण होनेपर पूर्व तिथि ग्रहण की जा सकती है। यदि पूर्व तिथि रसघटी प्रमाणसे अल्प है तो उत्तर-तिथि लेनी चाहिए। यद्यपि उत्तर-तिथि मध्याह्नमें व्याप्त है, पर कुलादि घटिका प्रमाणसे अल्प होनेके कारण उत्तरतिथि ही व्रत-तिथि है। अतएव संक्षेपमें उपवास तिथि और एकाशन-तिथि दोनों एक ही प्रमाण ग्रहण की गयी हैं। यद्यपि जैनेतर ज्योतिषमें एकाशन-तिथि-को व्रत-तिथिसे भिन्न माना है, तथा गणित द्वारा अनेक प्रकारसे उसका मान निकाला गया है, परन्तु जैनाचार्योंने इस विवादको यहीं समाप्त कर दिया है। इन्होंने उपवास-तिथिको ही व्रततिथि बतलाया है। एकाशनकी पारणा मध्याह्नमें एक बजेके उपरान्त करनेका विधान किया गया है। यद्यपि कष्टासंघ और मूलसंघमें पारणाके सम्बन्धमें थोड़ा-सा मतभेद है, फिर भी दोपहरके बाद पारणा करनेका उद्यतः विधान है।

१. छः घटी प्रमाण।

२. छः घटी प्रमाण—पट् कुलाचल होनेसे।

षोडशकारण और मेघमाला व्रतका विशेष विचार
 नहि व्रतहानिः, कथं पूर्वं प्रति पद्योपवासकार्यो भवति
 एका पारणा भवति न तु भावनोपवासहानिर्भवति प्रतिपद्दिन-
 मारभ्य तदन्तं क्रियते व्रतं एतद्व्रतं त्रिप्रतिपत्कथितम्, मासि-
 केषु च वचनात् । तथा श्रुतसागरसकलकीर्तिहृतिदामोदर-
 भद्रवादिक्थावचनाच्चेति । नतु पूर्णिमा ग्राह्या भवति । अत्र
 केषाञ्चिद् बलात्कारिणां मतं षोडशकारणनियमे तिथिहानौ वापि
 अधिके च मूल आदिदिनं न ग्राह्यं षोडशदिवसाधिकत्वाच्चेति
 विशेषः । एतावानपि विशेषश्च प्रतिपदमाधारभ्य आश्विनप्रति-
 पत्पर्यन्तं तिथिक्षयाभावेन कृते पद्यद्वयेन चैकात्रिंशदिनैः पाश्चि-
 ज्यैष समासिः । सप्तदशोपवासेन पूर्णाभिषेकेन स्यादेव सोप-
 वासो महाभिषेकं कुर्यात् । यदा तु तिथिहानिस्तदा पद्यकारण-
 मारभ्य प्रतिपद्येव पूर्णाभिषेकः, नापरदिने तथोक्तं षोडशकार-
 णवारिदमालारत्नत्रयादीनां पूर्णाभिषेके प्रतिपत्तिथिरपि नापरा
 ग्राह्येति वचनात् अपरा द्वितीया न ग्राह्येति ।

अर्थ—षोडशकारण व्रतके दिनोंमें एक तिथिकी हानि होने पर भी
 एक दिन पहलेसे व्रत नहीं किया जाता है । इससे व्रतहानिकी आशंका
 भी उत्पन्न नहीं होती है । तिथिकी हानि होनेपर दो उपवास लगातार
 पड़ जाते हैं, बीचवाली पारणा नहीं होती है । एक दिन पहले व्रत न
 करनेसे भावना—षोडशकारण भावनाओंमेंसे किसी एक भावनाकी
 तथा उपवासकी हानि नहीं होती है; क्योंकि प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा
 पर्यन्त ही व्रत करनेका विधान है, इसमें तीन प्रतिपदाओंका होना
 आवश्यक है; क्योंकि इस व्रतको मासिक व्रत कहा गया है । अतः इसमें
 तिथिकी अपेक्षा मासकी अवधिका विचार करना अधिक आवश्यक है ।
 श्रुतसागर, सकलकीर्ति, हृतिदामोदर और उग्रदेव आदि आचार्योंके
 वचनोंके अनुसार तिथि हानि होनेपर भी पूर्णमासी व्रतके लिए कर्मा नी
 ग्रहण नहीं करनी चाहिए ।

यहाँपर कोई बलात्कारणके आचार्य कहते हैं कि सोलहकारण
 व्रतके दिनोंमें तिथि हानि होनेपर अथवा तिथि वृद्धि होनेपर आदि दिवस-
 माद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको व्रतके लिए नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि
 सोलह दिनसे अधिक या कम उपवासके दिन हो जाते हैं । तात्पर्य यह
 है कि बलात्कारणके कुछ आचार्य सोलह कारण व्रतके दिनोंमें तिथि-
 क्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्णिमा या द्वितीयासे व्रतारम्भ करनेकी सलाह
 देते हैं । परन्तु इतनी विशेषता है कि तिथि हानि या तिथि-वृद्धि न
 होनेपर प्रतिपदासे व्रत आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदातक
 इकतीस दिन पर्यन्त यह व्रत किया जाता है । इस व्रतकी समाप्ति
 तीन पक्षमें ही करनी चाहिए । जब तिथिकी हानि नहीं हो तो सोलह
 उपवास और अभिषेक पूर्ण करनेके पश्चात् सत्रहवें उपवास अर्थात्
 तृतीयाके दिन महाभिषेक करे । परन्तु जब तिथि-हानि हो तो प्रतिपदाके
 दिन ही पूर्ण अभिषेक करना चाहिए, अन्य दिन नहीं । कुछ आचार्योंका
 मत है कि षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभि-
 षेकके लिए प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं । इन
 व्रतोंका पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही होना चाहिए, द्वितीयाको नहीं ।
 तात्पर्य यह है कि षोडशकारण व्रतमें तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर
 प्रतिपदा तिथि ही महाभिषेकके लिए प्राप्य है । इस व्रतका आरम्भ भी
 प्रतिपदासे करना चाहिए और समाप्ति भी प्रतिपदाको; उपवास करनेके
 पश्चात् द्वितीयाको पारणा करनेपर ।

विवेचन—सोलहकारण व्रतके दिनोंके निर्णयके लिए दो मत हैं—
 श्रुतसागर, सकलकीर्ति आदि आचार्योंका प्रथम मत तथा बलात्कार-
 णणके आचार्योंका दूसरा मत । प्रथम मतके प्रतिपादक आचार्योंने तिथि-
 हानि या तिथि-वृद्धि होनेपर प्रतिपदासे लेकर प्रतिपदा तक ही व्रत
 करनेका विधान किया है । दिन संख्या प्रतिपदासे आरम्भ की गयी है,
 यदि आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक कोई तिथि बढ़ जाय तो एक दिन या
 दो दिन अधिक व्रत किया जा सकेगा; तिथियोंके घट जानेपर एक या

दो दिन कम भी व्रत किया जाता है। यह बात नहीं है कि एक तिथिके घट जाने पर प्रतिपदाके स्थानमें पूर्णिमासे ही व्रत कर लिया जाय। व्रतारम्भके लिए नियम बतलाया है कि प्रथम उपवासके दिन प्रतिपदा तिथिका होना आवश्यक है, तथा व्रतकी समाप्ति भी प्रतिपदाके दिन ही होती है।

पोद्धारकारण व्रतकी मासिक व्रतोंमें गणना की गयी है, अतः इसमें एक या दो दिन पहले आरम्भ करनेकी बात नहीं उठती है। जो लोग यह अज्ञांक करते हैं कि तिथिके घट जाने पर उपवास और भावनाओं हानि आयोगी, उनकी यह शंका निर्मूल है। क्योंकि यह व्रत मासिक बताया गया है, अतः प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रतिपदामें ही इसकी समाप्ति हो जाती है। तिथिके क्षय होनेपर दो दिनतक लगातार उपवास पढ़ सकता है तथा दो दिनोंके स्थानमें एक ही दिन भावना की जायगी।

बलात्कारणके आचार्य तिथिवृद्धि और तिथिहानि दोनोंको महत्त्व देते हैं, उनका कहना है कि नियत अवाधिसंज्ञक सोलहकारण व्रत होनेके कारण इसकी दिन-संख्या इकतीस ही होनी चाहिए। यदि कभी तिथि-हानि हो तो एक दिन पहले और तिथिवृद्धि हो तो एक दिन पश्चात् अर्थात् पूर्णमासी और द्वितीयासे व्रतारम्भ करना चाहिए। इन आचार्यों की दृष्टिमें प्रतिपदाका महत्त्व नहीं है। इनका कथन है कि यदि प्रतिपदाको महत्त्व देते हैं तो उपवास-संख्या हीनाधिक हो जाती है। तिथि-हानि होनेपर सोलह उपवासके स्थानमें पन्द्रह उपवास करने पड़ेंगे तथा तिथिवृद्धि होनेपर सोलहके बदले सत्रह उपवास करने पड़ेंगे। अतः उपवास संख्याको स्थिर रखनेके लिए एक दिन आगे या पीछे व्रत करना आवश्यक है। इन आचार्योंने व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको ही मानी है तथा इसी दिन सोलहवाँ अभिषेक पूर्ण करने पर ज़ोर दिया है। कुछ आचार्य प्रतिपदाके उपवासके अनन्तर द्वितीयाको पारणा तथा तृतीयाको पुनः उपवास कर महाभिषेक करनेका विधान बताते हैं। बलात्कारणके आचार्य इस विषय पर सभी एक मत हैं कि व्रतकी समाप्ति प्रतिपदा

को होनी चाहिए। व्रतारम्भ करनेके दिनोंके सम्बन्धमें विवाद है, कुछ पूर्णिमासे व्रतारम्भ करनेको कहते हैं, कुछ प्रतिपदासे और कुछ द्वितीयासे।

उपपुनः दोनों ही मतोंका समीकरण एवं समन्वय करनेपर प्रतीत होता है कि बलात्कारण, सेनागण, पुत्राद्याण और काणूरगणके आचार्योंने प्रधान रूपसे सोलहकारण व्रतमें तिथिहानि और तिथिवृद्धिको महत्त्व नहीं दिया है। अतएव इस व्रतको सर्वदा भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ कर आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको समाप्त करना चाहिए। इसके प्रारम्भ और समाप्ति दोनों ही प्रतिपदाका रहना आवश्यक माना है। प्रथम अभिषेक भी प्रतिपदाको प्रथम उपवासपूर्वक किया जाता है, पारणाके दिन अभिषेक नहीं किया जाता। अन्तिम सोलहवें उपवासके दिन सोलहवाँ अभिषेक किया जाता है। सत्रहवाँ अभिषेक कर द्वितीयाको पारणा करनेका विधान है।

मेघमाला व्रत करनेकी तिथियाँ और विधि

मेघमाला व्रतके पूर्ण अभिषेकके लिए भी प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण की गयी। यह व्रत भी ३१ दिनतक किया जाता है। इसका प्रारम्भ भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे होता है और व्रतकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको बतायी गयी है। मेघमाला व्रतमें सात उपवास और चौबीस एकाशन किये जाते हैं। प्रथम उपवास भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाको, द्वितीय भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको, तृतीय भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशीको, चतुर्थ भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाको, पञ्चम भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको, षष्ठ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको और सप्तम आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको करनेका विधान है। शेष दिनोंमें चौबीस एकाशन करने चाहिए। पाँच वर्षतक पालन करनेके उपरान्त इस व्रतका उद्यापन किया जाता है। जितने उपवास बताये गये हैं उतने ही अभिषेक किये जाते हैं तथा उपवासके दिन रात जागरण पूर्वक वितायी जाती है और अभिषेक भी उपवासकी तिथिको ही किया जाता है। इस व्रतमें ३४ दिनतक ब्रह्मचर्य व्रतका

पालन तथा संयम धारण किया जाता है। संयम और ब्रह्मचर्य धारण श्रावण शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ होता है तथा आश्विन कृष्णा द्वितीयातक पालन किया जाता है। इस व्रतकी सफलताके लिए संयमको आवश्यक माना गया है।

मेघपूँकि आकाशमें आच्छन्न हो तो पञ्चलोत्र पाठ करना चाहिए। इस व्रतका नाम मेघमाला इसीलिये पड़ा है कि इसमें सात उपवास उन्हीं दिनोंमें करनेका विधान है, जिन दिनोंमें ज्योतिषकी दृष्टिसे वर्षा योग आरम्भ होता है अर्थात् वृष्टि होने या मेघोंके आच्छादित होनेसे उक्त व्रतके सातों ही दिन मेघमाला या वर्षायोग संज्ञक है। आचार्योंने इस मेघमाला व्रतका विशेष फल बताया है।

जैनाचार्योंने मेघमाला व्रतका आरम्भ भी तिथिक्षय या तिथि-वृद्धिके होनेपर भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे माना है तथा इसकी समाप्ति भी आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। इसमें तीन प्रतिपदाओंका विशेष महत्त्व है, तथा इन तीनोंका प्रमाण भी सोदय दिवस—सूर्योदय कालमें छः घटो प्रमाण तिथिका होना; को ही बताया है। सोलहकारण व्रतके समान तिथिक्षय या तिथिवृद्धिका प्रभाव इसपर नहीं पड़ता है। तिथि-वृद्धिके होनेपर एक उपवास कभी-कभी अधिक करना पड़ता है, क्योंकि तीनों प्रतिपदाओंका रहना व्रतमें आवश्यक बतलाया गया है। मेघमाला व्रतके उपवासके दिन मध्याह्नमें पूजा/पाठ करनेके उपरान्त दो घटो पर्यन्त कायोत्सर्ग करना तथा पञ्चपरमेष्ठिके गुणोंका चिन्तन करना अनिवार्य है। मध्याह्नकालका प्रमाण गणित विधिसे निकालना चाहिए।

दिनमानमें पाँचका भाग देकर तीनसे गुणा कर देनेपर मध्याह्नका प्रमाण आता है। जैसे भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदाके दिन दिनमानका प्रमाण ३१ घटी १५ पल है, इस दिन मध्याह्नका प्रमाण निकालना है अतः गणित क्रिया की—३१।१५ ÷ ५ = ६।७ इसको तीनसे गुणा किया तो—६।७ × ३ = १८।२१ गुणफल अर्थात् १८ घटी २१ पल मध्याह्नका प्रमाण है। षष्ठ्यभिन्नतमें यही प्रमाण ७ घंटा २० मिनट २४ सेकण्ड हुआ

अर्थात् सूर्योदयसे ७ घंटा २० मिनट २४ से० के पश्चात् मध्याह्न है। यदि इस दिन सूर्य ५।३० बजे उदित होता है तो १२ बजकर ५० मिनट २४ से० से मध्याह्नका आरम्भ माना जायगा। मेघमाला व्रतमें उप-वासके दिन ठीक मध्याह्नकालमें सामायिक और कायोत्सर्ग करने चाहिए। मेघमाला व्रतके समान रत्नत्रय व्रतमें भी अभिषेक प्रतिपदाको ही किया जाता है अर्थात् इन दोनों व्रतोंकी समाप्ति प्रतिपदाको होती है।

रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय

रत्नत्रयेऽप्येवमवधारणं कार्यं, यतः तस्य तिथिवातत्वाभा-
धिका, अतः यथा व्रतं कार्यं तथा नान्यथा भवति।

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको सम्पन्न करनेके लिए यह अवधारण करना चाहिए कि इस व्रतकी तिथि संख्या अधिक नहीं है। अतः इस प्रकार व्रत करना चाहिए, जिससे व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे।

विवेचन—रत्नत्रय व्रत एक वर्षमें तीन बार किया जाता है—भाद्रपद, माघ और चैत्र। यह व्रत उक्त महीनोंके शुक्लपक्षमें ही सम्पन्न होता है। प्रथम शुक्लपक्षकी द्वादशीको एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका तेल करना चाहिए। पश्चात् प्रतिपदाको एकाशन करना चाहिए। इस प्रकार पाँच दिन तक संयम धारण कर ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना चाहिए। तीन वर्षके उपरान्त इसका उद्यान करने हैं। यह व्रत करनेकी उत्कृष्ट विधि है। यदि शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको भी एकाशन किया जा सकता है, परन्तु चतुर्दशीका उपवास करना आवश्यक है। प्रधान रूपसे इस व्रतमें तीन उप-वास लगातार करनेका नियम है। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों तिथियोंमें व्रत, पूजन और स्वाध्याय करते हुए उपवास करना चाहिए। अतः इस व्रतके तीन ही दिन बताया गये हैं। एकाशन और संयमके दिन मिलातेसे यह पाँच दिनका हो जाता है।

यदि रत्नत्रय व्रतकी प्रधान तीन तिथियाँ—त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमासे किसी एक तिथिकी हानि हो तो क्या करना चाहिए। क्या

तीन दिनोंके बदलेमें दो ही दिन उपवास करना चाहिए या एक दिन पहले से उपवासकर व्रतको नियत दिनोंमें पूर्ण करना चाहिए। सेनागण और बलात्कारगणके आचार्योंने एकमत होकर रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निश्चय करते हुए कहा है कि तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। किन्तु इस व्रतके सम्बन्धमें इतना विशेष है कि चतुर्दशीका उपवास रसवाटिका प्रमाण चतुर्दशीके होनेपर ही किया जाता है। यदि ऐसा भी अवसर आवे जब उदयकालमें चतुर्दशी तिथि न मिले तो जिस दिन वद्यत्सक मानके हिसाबसे अधिक पड़ती हो, उसी दिन चतुर्दशीका उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी समाप्तिके लिए प्रतिपदाका रहना भी आवश्यक माना गया है। जिसदिन प्रतिपदा उदयकाल में छः घटी प्रमाण हो अथवा उदयकालमें छःघटी प्रमाण प्रतिपदाके न मिलनेपर वद्यत्सक रूपसे ज्यादा हो उसी दिन महाभिषेकपूर्वक व्रतकी समाप्ति की जाती है।

आचार्य सिहानिन्दने रत्नत्रय व्रतकी तिथियोंका निर्णय करते समय स्पष्ट कहा है कि व्रतमें किसी प्रकारका दोष न आवे, इस प्रकारसे व्रत करना चाहिए। तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन अधिक व्रत करना ही पड़ता है, परन्तु चतुर्दशीके दिन प्रोषधोपवास और प्रतिपदाके दिन अभिषेक करना परमावश्यक बताया गया है। इन दोनों तिथियोंको टलने नहीं देना चाहिए। चतुर्दशीको मध्याह्नमें विशेषरूपसे 'हुँ' ह्रीं सम्प्रदर्शनज्ञानचारित्र्योभयो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। मध्याह्नकालका प्रमाण गणितसे जाना चाहिए। यथा चतुर्दशीके दिन दिनमानका प्रमाण २८।२० है, इस दिन सूर्योदय ६।५० मिनट पर होता है। मध्याह्नकाल जाननेके लिए—२८।२० ÷ ५ = ५।१६ इसको तीनसे गुणा किया तो—५।१६ × ३ = १५।४८ इसका षण्दर्भसक मान ६।२१ ४८ हुआ, सूर्योदय कालमें जोड़ा तो १ बजकर १२ मिनट ४८ से० पर मध्याह्नकाल आया।

१. २३ घटीका एक घण्टा, २३ फलका एक मिनट तथा २३ विपल का एक सैकण्ड होता है।

मुनिसुव्रत पुराणके आधारपर व्रततिथिका प्रमाण

तदुक्तं मुनिसुव्रतपुराणे—

पण्यांशोऽप्युदये ग्राह्यः तिथिव्रतपरिग्रहैः।

पूर्वमन्यतिथेयोंगो व्रतहानिः करोति च ॥ १ ॥

अस्यार्थः—व्रतपरिग्रहैः सूर्योदये तिथेः पण्यांशमपि ग्राह्यं, अत्रापिशब्देन पण्यांशादधिको ग्राह्य इति निर्विवादः, न न्यूनांश इति द्योत्यते कुतः यस्मात् व्रतपरिग्रहाणां पण्यांशात् पूर्वमन्य-तिथिसंयोगव्रतहानिकरः व्रतनाशकरो भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—व्रत करनेवालोंको सूर्योदयकालमें पण्यांश तिथिके रहनेपर व्रत करना चाहिए। पण्यांशसे अधिक तिथि होनेपर तो व्रत किया जा सकता है, पर न्यूनांश होनेपर व्रत नहीं किया जा सकेगा। क्योंकि अन्य तिथिका संयोग होनेसे व्रतहानि होती है, व्रतका फल नहीं मिलता है।

इस श्लोकमें अपि शब्द आया है, जिसका अर्थ पण्यांशसे अधिक तिथि ग्रहण करनेका है अर्थात् पण्यांशसे अधिक या पण्यांश तुल्य तिथि उदयकालमें हो तभी व्रत किया जा सकता है। पण्यांशसे अल्प तिथिके होनेपर व्रत नहीं किया जाता।

विवेचन—आचार्य ग्रन्थान्तरोंके प्रमाण देकर व्रततिथिका निर्णय करते हैं। मुनिसुव्रतपुराणमें बताया गया है कि उदयकालमें पण्यांश तिथि या पण्यांशसे अधिक तिथिके होनेपर ही व्रत करना चाहिए। तिथि-का मध्यम मान ६० घटी प्रमाण माना जाता है, स्पष्ट मान प्रतिदिन भिन्न-भिन्न होता है। स्पष्टमानका पता लगाना ज्योतिषीका ही काम है, साधारण व्यक्तिका नहीं। किन्तु मध्यममान ६० घटी प्रमाण निश्चित है, इसका पण्यांश दस घटी हुआ, अतः यह अर्थ लेना अधिक संगत होगा कि जो तिथि उदयकालमें दस घटी कमसे कम अवश्य हो वही व्रतके लिए उपयुक्त मानी गयी है। दस घटीसे कम प्रमाण तिथिके रहनेपर, उससे पहले दिन व्रत करनेका आदेश दिया है। मुनिसुव्रत पुराणकारका

यह मत निर्णयसिन्धुमें प्रतिपादित दीपिकाकारके मतसे मिलता-जुलता है। दीपिकाकार भी तिथिका प्रमाण पद्यांश ही मानते हैं। परन्तु उन्होंने स्पष्ट तिथिका प्रमाण न प्रहण कर मध्यम ही लिया है। आचार्यने स्पष्ट माना है—उदाहरण—बुधवारको पंचमी तिथि ८ घटी १२ पल है तथा इसके पहले मंगलवारको चतुर्थी तिथि १० घटी १५ पल है, अब गणितसे निकालना यह है कि पंचमी तिथिका स्पष्ट मान क्या है? मंगलवारको चतुर्थी १० घटी १५ पल है; उपरान्त पंचमी मंगलवारको आरम्भ हो जाती है। अतः ६० घटी अहोरात्र प्रमाणसे चतुर्थी तिथिके घट्यादि घटाया—(६०।०)—(१०।१५) = ४९।४५ मंगलवारको पंचमी तिथिका प्रमाण आया। बुधवारको पंचमी तिथि ८ घटी १२ पल है, दोनों दिनकी पंचमी तिथिके प्रमाणको जोड़ दिया तो कुल पंचमी तिथि = (४९।४५) + (८।१२) = ५७।५७ पञ्चमी तिथि हुई, इसका षष्ठांश लिया तो ५७।५७ ÷ ६ = ९।३९।३० हुआ। बुधवारको पञ्चमी-तिथि ८ घटी १२ पल है, जो पञ्चमीतिथिके षष्ठांश ९ घटी ३९ पल और ३० विपलसे कम है, अतः मुनिसुव्रतपुराणकारके मतसे पञ्चमीका व्रत बुधवारको नहीं किया जा सकता, यह व्रत मंगलको ही कर लिया जायगा। दीपिकाकारने गणित क्रियासे वचनेके लिए मध्यम तिथिका मान स्वीकार कर उसका षष्ठांश दस घटी स्वीकार कर लिया है अर्थात् सूर्योदयकालमें दस घटीसे कम तिथि होनेपर अग्राह्य मानी जायगी। मुनिसुव्रतपुराणकारके मतसे भी तिथिका प्रमाण उदयकालमें दस घटी ही लेना चाहिए।

व्रततिथि निर्णयके लिए निर्णयसिन्धुके मतका

निरूपण तथा खण्डन

पुनः प्रश्नं करोति यस्यां तिथौ सूर्योदयो भवति सा तिथिः सम्पूर्णा ज्ञातव्या? तदुक्तम्—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।

सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥१॥

१. निर्णयसिन्धु पु० १४ तथा ज्योतिश्चन्द्रार्क पु० ५३ श्लो० ६६

इति तस्योत्तरमेतद्वचनं निर्णयसिन्धौ वैष्णवे ज्ञातव्यं न तु जिनमते पञ्चसारग्रन्थे ॥

अर्थ—यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वही तिथि सम्पूर्ण दिनके लिए मानी जाती है, अतः उसका नाम सकला है। कहा भी है कि जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वह तिथि दान, अध्ययन, पोद्घ्या संस्कार आदिके लिए पूर्ण मानी गयी है। आप व्रतके लिए छः घटी प्रमाण या समस्त तिथिका षष्ठांश प्रमाण उदयकालमें होनेपर तिथिको ग्राह्य मानते हैं; ऐसा क्यों? इसका उत्तर निर्णयसिन्धु नामक ग्रन्थमें दिया गया है। क्योंकि वैष्णव व्रतमें दान, अध्ययन, पूजा, अनुष्ठान, व्रत आदिके लिए उदया तिथिको ही प्रमाण माना गया है, जैनमतमें नहीं। जैनआचार्योंने पञ्चसार नामक ग्रन्थकी चतुर्थसन्धि और १२२ वें श्लोकमें इस मतका खण्डन किया है। तात्पर्य यह है कि वैष्णव मतमें व्रत और अनुष्ठानके लिए उदयकालमें रहनेवाली तिथिको ही ग्राह्य माना है, जैनमतमें नहीं।

विवेचन—ज्योतिश्चन्द्रार्कमें बताया है कि “यां तिथिं समनुप्राप्य आसाद्य उदयं भास्करः याति स्वाक्षितिजेऽर्द्धोदितो भवति सा तिथिः सम्पूर्णादिनेऽपि बोध्या। कुत्र, दानाध्ययनकर्मसु दानादि-पुण्यकर्मसु अध्ययनकर्मसु च। यथा पूर्णिमा प्रातर्मुहूर्तार्द्धमात्र-स्यापि स्नानदानादौ समस्तदिनेऽपि मन्तव्या। तथैव प्रतिपदा अध्ययनकर्मसु मन्तव्या”। अर्थात् जिस समय सूर्य आकाशमें आया उदित हो रहा है, उस समय जो तिथि रहती है, सम्पूर्ण दिनके लिए वही तिथि मान ली जाती है। दान, अध्ययन, व्रत आदि पुण्यकार्य उसी तिथिमें किये जाते हैं। जैसे पूर्णिमा प्रातःकालमें एक घटी रहनेपर भी स्नान, दान, व्रत आदि कार्योंके लिए प्रशस्त मानी जाती है, उसी प्रकार प्रतिपदा अध्ययन कार्यके लिए सूर्योदय समयमें एक घटी या

१. सन्धिः ४ श्लो० १२२।

इससे भी अल्प-प्रमाण रहनेपर प्रशस्त मान ली गयी है। अतएव व्रतके लिए उदयप्रमाण ही तिथि लेनी चाहिये। जैनाचार्योंने इस उदय-कालीन तिथिकी मान्यताका जोरदार खण्डन किया है। उन्होंने अपने मतके प्रतिपादनमें अनेक युक्तियाँ दी हैं।

उदयकालीन तिथिको व्रतके लिए सम्पूर्ण माननेमें तीन दोष अतः हैं—विद्धा तिथि होनेके कारण दोष, उदयके अनन्तर अल्पकालमें ही तिथिके क्षय हो जानेसे व्रततिथिके प्रमाणका अभाव और निषिद्ध तिथिमें व्रत करनेका दोष। यदि उदयकालमें एक घटी प्रमाण व्रततिथि मान ली जाय तो उदया तिथि होनेके कारण वैष्णवोंमें प्राद्य मानी जायगी, परन्तु जैनमतके अनुसार इसमें पूर्वोक्त तीनों दोष वर्तमान हैं। यह तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद ही नष्ट हो जायगी, तथा आगेवाली तिथि सूर्योदयके २४ मिनट बाद आरम्भ हो जायगी। अतः व्रत सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठान व्रतवाली तिथिमें नहीं होंगे, बल्कि वे अव्यक्तिक तिथिमें सम्पन्न किये जायँगे, जिससे असमयमें करनेके कारण उन धार्मिक अनुष्ठानोंका यथोचित फल नहीं मिलेगा। उदाहरणके लिए यों मान लिया जाय कि किसीको अष्टमीका व्रत करना है। मंगलवारको अष्टमी एक घटी पन्द्रह पल है अर्थात् सूर्योदयकालमें आधा घण्टा प्रमाण है। यदि सूर्योदय ५ बजकर १५ मिनट पर होता है तो ५ बजकर २५ मिनट से नवमी तिथि आरम्भ हो जाती है। व्रती सूर्योदय कालमें सामान्यिक, स्तोत्रपाठ करता है, इन क्रियाओंको उसे कमसे कम ४५ मिनट तक करना चाहिये। सूर्योदय काल में ३० मिनट अष्टमी है, पश्चात् नवमी तिथि है, क्रियाएँ ४५ मिनट तक करनी हैं, अतः इनमें पहला दोष विद्ध तिथिमें प्रातः-कालीन क्रियाओंको करनेका आता है। विद्ध तिथिमें की गयी क्रियाएँ, जो कि व्रतविधिके भीतर परिगणित हैं, व्यर्थ होती हैं। पुण्यके स्थानमें

१. व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकादि या भवेत्।

उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतुके ॥

—निर्णयसिन्धु पृ० १३

अज्ञानातके कारण पाप बन्धकारक हो जाती हैं। अतः प्रथम दोष विद्ध तिथिमें प्रारम्भिक व्रत सम्बन्धी अनुष्ठानके करनेका है।

दूसरा दोष यह है कि व्रतारम्भ करनेके समय व्रत-तिथिका प्रभाव क्षीण रहता है, जिससे उपर्युक्त उदाहरणमें कल्पित अष्टमी व्रतकी क्रियाओंमें आती ही नहीं। आचार्योंका कथन है कि उदयकालमें कमसे कम दशमांश तिथिके होनेपर ही तिथिका प्रभाव माना जा सकता है। छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिका मान इसीलिए प्रामाणिक माना गया है कि मध्यम मान तिथिका ६० घटी होता है, इसका दशमांश छः घटी है, अतः तिथिका प्रभाव छः घटी है, अतः तिथिका प्रमाण छः घटी होने पर पूर्ण माना जाता है। कारण स्पष्ट है कि सूर्योदयके पश्चात् रस घटी प्रमाणवाली तिथि कमसे-कम २१ घंटे तक रहती है, जिससे प्रारम्भिक धार्मिक कृत्य करनेमें विद्ध तिथि या अव्यक्तिक तिथिका दोष नहीं आता है। मात्र उदयकालीन तिथि स्वीकार कर लेनेसे व्रतके समस्त कार्य पूजा-पाठ, स्वाध्याय आदि अव्यक्तिक तिथिमें सम्पन्न किये जायँगे, जिससे व्रत करनेका फल नहीं मिलेगा।

ज्योतिषशास्त्रमें गणित द्वारा तिथिके प्रमाणका साधन किया जाता है। व्रतयां गया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उत्तरे प्रमाणके पश्चात् तिथिमें अपना प्रभाव या बल आता है। दिनमान के पञ्चमांशसे अल्पतिथि विलुल निर्बल होती है, यह उस वस्तुके समान है, जिसके हाथ-पैरमें शक्ति नहीं, जो गिरता-पड़ता कार्य करता है। जिसकी वाणी भी अपना व्यवहार सिद्ध करनेमें असमर्थ है और जो सब प्रकारसे अशक्त है, अतः निर्बल तिथिमें व्रतादि कार्य सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। जो व्यक्ति उदयकालमें रहनेवाली तिथिको ही व्रतके लिए ग्रहण करनेका विधान बतलाते हैं, उनके यहाँ प्रभावशाली या बलवान् तिथि व्रतके लिए हो ही नहीं सकती है। अधिकसे अधिक दिनमान ३३ घटीका हो सकता है और कमसे कम २७ घटीका। ३३ घटीका पंचमांश ६ घटी ३६ पल हुआ और २७ घटीका पंचमांश ५ घटी २४ पल हुआ।

अतएव बड़े दिनोंमें जब कि दिनमान अधिक होता है ६ घटी ३६ पलके होनेपर तिथिमें अपना बल आता है, पंचमांशसे अल्प होनेपर तिथि अशेष शिशु मानी जाती है। अतएव उदयकालीन तिथि व्रतके लिए प्राप्ता नहीं है। सर्वदा व्रत सबल तिथिमें किया जाता है, निर्बल में नहीं। अतः जैनाचार्योंने व्रत-तिथिका प्रमाण छः घटी माना है, वह ज्योतिष-शास्त्रसे सम्मत है। गणितके द्वारा भी इसकी सिद्धि होती है।

तीसरा दोष जो उदयकालीन तिथि माननेमें आता है, वह व्रतके लिए निश्चित तिथियोंमें याथा उपपन्न करता है। जब व्रत समयमें गणितागत सबल तिथि ही नहीं रही तो फिर व्रतोंके लिए तिथियोंका निश्चय क्या रहेगा तथा क्रमका भंग हो जानेपर अकस्मिक दोष भी आवेगा। अतएव व्रतके लिए उदयकालीन तिथि ग्रहण नहीं करनी चाहिये, किन्तु छः घटी प्रमाण तिथिको स्वीकार करना चाहिये।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रतोंको तिथिका विचार

काऽधिका तिथिमध्ये च क्षणो नैव कारयेत्।
गणितोद्दिष्टमार्याणां संयमादिप्रसाधनम् ॥१३॥

अर्थ—आचार्योंने व्रतके दिनोंमें तिथिवृद्धि हो जानेपर किस तिथिको व्रत करनेका व्रतोंके लिए निषेध किया है। तात्पर्य यह है कि शिष्य गुरुसे प्रश्न करता है कि हे प्रभो! आपने तिथिक्षय होनेपर व्रत करनेका विधान बतला दिया, अब कृपाकर यह बतलाइये कि संयमादिका साधन व्रत तिथि-वृद्धि होनेपर किस दिन नहीं करना चाहिये?

विवेचन—ज्योतिष शास्त्रमें तिथिक्षय होनेपर तथा तिथिवृद्धि होनेपर व्रतकी तिथियोंका निर्णय बतलाया गया है। सिंहानन्दि आचार्योंने पूर्वमें तिथिक्षय होनेपर व्रत कब करना चाहिये, तथा नियत अवधिवाले व्रतोंको मध्यमें तिथिक्षय होनेपर कब करना चाहिये, इसका विस्तार सहित निरूपण किया है। यहाँ से आचार्य तिथिवृद्धिके प्रकरणका वर्णन

करते हैं कि तिथिके बह जानेपर क्या व्रत एक दिन अधिक किया जायगा या मध्यकी कोई तिथि छोड़ दी जायगी, उस दिन व्रत ही नहीं किया जायगा। आचार्य स्वयं इस प्रश्नका उत्तर आगेवाले श्लोकमें देंगे। यहाँ यह विचार करना है कि तिथि बढ़ती क्यों है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि तिथिका मध्यममान ६० घटी बताया गया है, किन्तु स्पष्टमान सदा घटा-बढ़ता है। इस वृद्धि और ह्रासके कारण ही कभी एक तिथिकी हानि और कभी एक तिथिकी वृद्धि हो जाती है। गणित-द्वारा तिथिका साधन निम्न प्रकार किया गया है—

स्पष्ट चन्द्रमासे स्पष्ट सूर्यको घटाकर जो शेष आवे उसके अंशादि बना लेना चाहिये। इस अंशादिमें १२ का भाग देनेपर लब्ध तुल्य गत तिथि होती है और जो शेष बचे वह वर्तमान तिथिका भुक्त भाग होता है। इस भुक्त भागको १२ अंशोंमेंसे घटानेपर वर्तमान तिथिका भोग्य भाग आता है। इस भोग्य-भागको ६० से गुणाकर गुणनफलमें चन्द्र-सूर्यके गत्यन्तरका भाग देनेसे वर्तमान तिथिके भोग्य-घटी पल निकलते हैं। उदाहरण—स्पष्ट चन्द्रमा राश्यादि २।१४।४३।३४ मेंसे स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ८।२३।३०।४ घटाया तो शेष राश्यादि ५।२१।१३।३०; इसके अंशादि बनाये तो १७१।१३।३० हुए। इनमें १२ का भाग दिया तो लब्ध-तुल्य १४ चतुर्दशी गत तिथि हुई। शेष अंशादि ३।१३।३० वर्तमान तिथि पूर्णिमाका भुक्तभाग हुआ। इसे १२ अंशोंमेंसे घटाया तो पूर्णिमाका भोग्यभाग अंशादि ८।४६।३० हुआ। इसकी विकलाष्ट बनाया तो ३१५९० हुई। चन्द्र गतिकलादि ७८७।५ मेंसे सूर्य गतिकलादि ६१।२३ को घटाया तो गत्यन्तर कलादि ७२५।४२ हुआ। इसकी विकलाष्ट बनाई तो ४३५४२ हुई। अब त्रैराशिक की कि ६० घटीमें चन्द्रमा-की आपेक्षिक गति ४३५४२ विकला है तो कितनी घटीमें उसकी आपेक्षिक गति ३१५९० विकला होगी? अतः $\frac{३१५९० \times ६०}{४३५४२} =$ घट्यादि-

मान ४३।३२ हुआ।^१ अर्थात् पूर्णिमाका प्रमाण ४३ घटी ३२ पल आया। इस प्रकार प्रतिदिनका स्पष्ट तिथिमान कभी ६० घटीसे अधिक हो जाता है, जिससे एक तिथिकी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि अहोरात्र-मान ६० घटी ही माना गया है। अतः एक ही तिथि दो दिन भी रह जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि रविवारको प्रतिपदाका स्पष्टमान ६७।१० आया। रविवारका मान सूर्योदयसे लेकर अगले सूर्योदयके पहले तक अर्थात् ६० होता है, अतः प्रथम दिन ६० घटी तिथि चौबीस घण्टेतक रही, शेष ७ घटी और १० पल प्रमाण प्रतिपदा तिथि अगले दिन अर्थात् सोमवारको रहेगी। शिष्यका प्रश्न तिथि-वृद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंकी तिथि संख्या निश्चित करनेके लिए है।

तिथिवृद्धि होनेपर व्रत-तिथिकी व्यवस्था

पुनरष्टाह्निकामध्ये तिथिवृद्धिर्यदा भवेत्।

तदा नवदिनानि स्युर्व्रते चाष्टाह्निकार्यके ॥१४॥

सिद्धचक्रस्य मध्ये तु या तिथिवृद्धिमाप्नुयात्।

तद्विधिस्साधिका कुर्यादधिकस्याधिकं फलम् ॥१५॥

अर्थ—यदि अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचमें कोई तिथि बढ़ जाय तो व्रतोंको नौ दिन तक अष्टाह्निका व्रत करना चाहिए। सिद्धचक्र—अष्टाह्निका तिथियोंके मध्यमें तिथि बढ़ जाने पर सिद्धचक्र विधान करने-वालेको नौ दिन तक विधान करना चाहिए। क्योंकि अधिक दिन तक करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। अतः तिथिवृद्धि होने पर व्रत एक दिन कम करनेकी आपत्ति नहीं आती है।

विवेचन—नियत अवधिवाले दैवसिक और नैसिक व्रतोंके मध्यमें तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होने पर उन व्रतोंके दिनोंकी संख्याको निर्धारित किया है। तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए,

१. ज्योतिर्गणित कौमुदी पृ० ३२, ग्रहलाघव, सूर्यसिद्धान्तका तिथि प्रकरण।

किन्तु तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन वाढ़को नहीं किया जाता है। तिथिक्षयमें नियत अवधिमेंसे एक दिन घट जाता है, जिससे दिनसंख्या नियत अवधिमेंसे कम हो जानेके कारण अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे व्रतोंमें एक दिन कम हो जानेका दोष आयागा। अष्टाह्निका व्रतके लिए आठ दिन निश्चित हैं तथा यह व्रत शुक्लपक्षमें किया जाता है। तिथिक्षय होनेपर शुक्लपक्षमें ही एक दिन पहलेसे व्रत करनेकी गुंजाइश है; क्योंकि अष्टमीके स्थानमें सप्तमीसे भी व्रत करनेपर शुक्लपक्ष ही रहता है। इसी प्रकार दशलक्षण व्रतमें भी चतुर्थीसे व्रत करने पर शुक्लपक्ष ही माना जायागा। यहाँ एक-दो दिन पहले भी व्रत कर लेनेपर पक्ष या मास बदलनेकी सम्भावना नहीं है। जिस नियत अवधिवाले व्रतमें पक्ष या मासके बदलनेकी सम्भावना प्रकट की गयी है, उसमें व्रत निश्चित तिथिसे ही आरम्भ किया जाता है। जैसे पोद्दशकारण व्रतके सम्बन्धमें पहले कहा गया है कि तिथिके घट जानेपर भी यह व्रत प्रतिपदासे ही आरम्भ किया जायागा। तिथिक्षयका प्रभाव इस व्रत पर नहीं पड़ता है और न तिथि-वृद्धिका प्रभाव ही कुछ होता है।

तिथि-वृद्धि हो जानेपर व्रत एक दिन और अधिक किया जाता है, इसकी दिन संख्या तिथि-वृद्धिके कारण घटती नहीं; बल्कि बढ़ी हुई तिथि में भी व्रत किया जाता है। अष्टाह्निका व्रतकी तिथियोंके बीचमें यदि एक तिथि बढ़ जाय तो उस बढ़ी हुई तिथिको भी व्रत करना होगा। तिथि-वृद्धिके समय व्रत-तिथिका निर्णय यही है कि जिस दिन व्रतारम्भ करनेकी तिथि है, उसी दिन व्रतारम्भ करना चाहिए। बीचमें जो तिथि बढ़ती हो, उसका भी व्रत करना पड़ेगा। तिथि-वृद्धिका परिणाम यह होगा कि कर्मा-कर्मा वेला उपवास कर जाना पड़ेगा। तथा कर्मा ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब दो दिन लगातार पारणा हो की जाय। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि मंगलवारको अष्टमी दिन भर है, बुधवारको भी प्रातःकाल अष्टमी तिथिका प्रमाण ७ घटी १३ पल है। यहाँ दो अष्टमियाँ हुई हैं, प्रथम अष्टमी भी पूर्ण है और द्वितीय अष्टमीको भी

सूर्योदयकालमें छः घटी प्रमाण होनेसे व्रतके लिए प्राद्य माना है, अतः यहाँ व्रत करनेवालेको दोनों अष्टमियोंके उपवास करने पड़ेंगे। नवमीका दिन अष्टाहिका व्रतमें पारणाका है, यदि दो नवमी पढ़ जायँ तो दो दिन लगातार पारणा करनी होगी। कुछ लोग बड़ी हुई तिथिको उपवास ही करनेका विधान बतलाते हैं। सिद्धचक्र विधानके करनेमें भी बुद्धि-मत् तिथिको ग्रहण किया गया है अर्थात् आठ दिनोंके स्थानमें नौ दिन तक विधान करना चाहिए। अधिक दिनतक विधान करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होगी। जो लोग यह आशंका करते हैं कि नियत अवधिके अनुष्ठान और व्रतोंमें अवधिका उल्लंघन क्यों किया जाता है ? यदि अवधिका उल्लंघन ही अभीष्ट था तो फिर तिथि-क्षयके समय अवधि स्थिर रखनेके लिए क्यों एक दिन पहलेसे व्रत करनेको कहा ?

इस प्रश्नका उत्तर आचार्योंने बहुत विचार-विनिमय करनेके उपरान्त दिया है। आचार्य सिंहनन्दिने बताया है कि यों तो समस्त व्रतोंका विधान तिथिके अनुसार ही किया गया है। जिस व्रतके लिए जो विधेय तिथि है, वह व्रत उसी तिथिमें सम्पन्न किया जाता है। परन्तु विशेष परिस्थितिके आ जानेपर मध्यमें तिथिक्षयकी अवस्थामें नियत अवधिवाले व्रतोंकी अवधिको ज्योंकी त्यों स्थिर रखनेके लिए एक दिन पहले करनेका नियम है। तिथिबुद्धिमें विधेय तिथिकी ही प्रधानता रहती है, अतः एक दिनके बड़ जानेपर भी नियत अवधि ज्योंकी त्यों स्थिर रहती है। नियत अवधिके व्रतोंमें अवधिका तात्पर्य वस्तुतः व्रत समाप्तिके दिनसे है। व्रत-समाप्ति निश्चित तिथिको ही होगी। उदाहरण—अष्टाहिका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होनी चाहिए। यदि पूर्णिमाका कदाचित् क्षय हो और आगोवाली प्रतिपदा हो तो प्रतिपदाको इस व्रतकी समाप्ति न होकर पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशीको ही इस व्रतकी समाप्ति की जायगी। क्योंकि चतुर्दशीकी छायामें पूर्णिमा अवश्य आ जायगी। सर्वथा तिथिका अभाव कभी नहीं होता है, केवल उदयकालमें तिथिका क्षय दिखलाया

जाता है। जिस तिथिका पंचांगमें क्षय लिखा रहता है, वह तिथि भी पहलेवाली तिथिकी छायामें कुछ घटी प्रमाण रहती है। अतएव अष्टाहिका व्रतकी समाप्ति प्रतिपदाको कभी नहीं की जायगी। पूर्णिमाके अभावमें चतुर्दशी ही प्राद्य बतायी गयी है, क्योंकि चतुर्दशी आगे आने-वाली पूर्णिमामें विद्य है।

इसी प्रकार एक तिथि बड़ जानेपर भी अष्टाहिका व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको ही होगी। यदि कदाचित् दो पूर्णिमाएँ हो जायँ और दोनों ही पूर्णिमा उदयकालमें छः घटीसे अधिक हों तो किस पूर्णिमाको व्रतकी समाप्ति की जायगी ? प्रथम पूर्णिमाको यदि व्रतको समाप्ति की जाती है तो आगोवाली पूर्णिमा भी सोदयतिथि होनेके कारण समाप्तिके लिए क्यों नहीं ग्रहण की जाती है ? आचार्य सिंहनन्दिने इसीका समाधान 'अधिक-स्थायिक फलम्' कहकर किया है। अर्थात् दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए; क्योंकि दूसरी पूर्णिमा भी रस घटी प्रमाण उदयकालमें होनेसे प्राद्य है। एक दिन अधिक व्रत कर लेनेसे अधिक ही फल मिलेगा। अतएव दो पूर्णिमाओंके होने पर आगोवाली—दूसरी पूर्णिमाको व्रत समाप्त करना चाहिए।

जब दो पूर्णिमाओंके होनेपर पहली पूर्णिमा ६० घटी प्रमाण है और दूसरी पूर्णिमा तीन घटी प्रमाण है, तब क्या दूसरी ही पूर्णिमाको व्रत समाप्त किया जायगा। आचार्यने इस आशंकाका निर्मूलन करते हुए बताया है कि दूसरी पूर्णिमा छः घटीसे कम होनेके कारण व्रतको पूर्णिमा ही नहीं है, अतः उसे तो पारणाके लिए प्रतिपदा तिथिमें परिगणित किया गया है। व्रतकी समाप्ति ऐसी अवस्थामें प्रथम पूर्णिमाको ही कर ली जायगी तथा आगोवाली पूर्णिमा जो कि प्रतिपदासे संयुक्त है, पारणा तिथि मानी जायगी।

जब कभी दो चतुर्दशियाँ अष्टाहिका व्रतमें पड़ती हैं तो तीन उपवासके पश्चात् प्रतिपदाको पारणा करनेका नियम है। साधारणतया चतुर्दशी और पूर्णिमा इन दोनों तिथियोंका एक उपवास करनेके उपरान्त

प्रतिपदाको पारणा की जाती है। अष्टाहिका व्रतका महाभिषेक पूर्णिमाको ही हो जाता है।

या तिथिर्व्रतपूर्णं तु वृद्धिर्भवति सा यदा।

तस्यां नाडीप्रमाणायां पारणा क्रियते व्रती ॥१६॥

अर्थ—व्रतकी समाप्ति होनेपर जो तिथि वृद्धिको प्राप्त होती है, यदि वह एक नाडी—घटी प्रमाण हो तो उसीमें पारणा की जाती है। अभिप्राय यह है कि जब व्रतकी समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम तिथिमें व्रतको समाप्तकर द्वितीय तिथि छः घटी प्रमाणसे अल्प हो तो उसीमें पारणा करनी चाहिए। यदि छः घटी प्रमाणसे द्वितीय तिथि अधिक हो या छः घटी प्रमाण हो तो उसीमें ही व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए।

विवेचन—जब व्रत समाप्तिवाली तिथिकी वृद्धि हो तो प्रथम या द्वितीय तिथिको व्रतको पूर्ण करना चाहिए? इसपर आचार्योंके दो मत हैं—प्रथम मत प्रथम तिथिको व्रतकी समाप्तिकर अगली तिथिके एक घटी प्रमाण रहनेपर पारणा करनेका विधान करता है। दूसरा मत अगली तिथिके छः घटी या इससे अधिक होनेपर उसीदिन व्रत समाप्ति पर जोर देता है तथा अगले दिन पारणा करनेका विधान करता है। जैनाचार्योंने तिथिवृद्धि होने पर व्रत करनेकी अवधिका बड़ा सुन्दर विरलेपण किया है।

गणितज्योतिष व्रतके लिए दो तिथियोंको ग्राह्य नहीं मानता। इसकी दृष्टिमें तिथि बढ़ती ही नहीं है और न कभी तिथिका अभाव होता है। तिथिवृद्धि और तिथिक्षय साधारण व्यक्तियोंको मालूम होते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि दो तिथियाँ परस्परमें विद्ध प्रायः रहती हैं। पर तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त तथा उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त होती है। व्रतमें पूर्व तिथि उत्तर तिथिसे संयुक्त ग्राह्य की गयी है; उत्तर तिथि पुनरागत पूर्व तिथिसे संयुक्त ग्रहण नहीं की जाती है। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि सोमवारको अष्टमी ७ घटी ३०

पल है, पञ्चात् नवमी प्रारम्भ हो जाती है। वहाँ अष्टमी पर या पूर्व तिथि है जो नवमीसे संयुक्त है; क्योंकि ७ घटी ३० पलके उपरान्त नवमी तिथिका प्रारम्भ होनेवाला है। यद्यपि पञ्चांगमें नवमी तिथि मंगलवारको ही लिखी मिलेगी, अतः उदयकालमें ही तिथिका प्रमाण लिखा जाता है। अथवा यों कहना चाहिए कि पर या पूर्व तिथिका ही तिथ्यादि मान पञ्चांगमें अंकित रहता है, उत्तर तिथिका नहीं। जो तिथि पञ्चांगमें अंकित है वह पर या पूर्व और जो अंकित नहीं है, वह उत्तर कहलाती है। पुनरागत पूर्व तिथि वह है, जो उत्तर तिथिके समाप्त होनेपर अगले दिन आनेवाली हो। जैसे पूर्व उदाहरणमें अष्टमीके उपरान्त नवमी तिथि व्रतायी गयी है, यदि इसी दिन नवमी भी समाप्त हो जाय और पुनरागत दशमीसे संयुक्त हो तो यह उत्तर तिथि पुनरागत पूर्वतिथिसे संयुक्त नहीं जाती है। व्रतके लिए यह तिथि त्याज्य है।

तिथितत्त्व नामक ग्रन्थमें बताया गया है कि दो प्रकारकी तिथियाँ होती हैं—परयुक्त और पदयुक्त। व्रत विधिके लिए द्वितीया, एकादशी, अष्टमी, त्रयोदशी और अमावास्या परयुक्त होनेपर ग्राह्य नहीं हैं। अभिप्राय यह है कि इन तिथियोंको व्रतके लिए पूर्ण होना चाहिए। जब तक ये तिथियाँ दिनभर नहीं रहेंगी, इनमें प्रतिपादित व्रत नहीं किये जा सकते हैं। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि अष्टमी तिथि यदि उदयकालमें ७ घटी ३० पल है तो परयुक्त होनेके कारण इस दिन व्रत नहीं करना चाहिए। परन्तु जैनाचार्य तिथितत्त्वके इस मतको अप्रामाणिक ठहराते हैं। उनका कथन है कि छः घटी प्रमाण उदयकालमें तिथिके होनेपर, वह विधेय तिथि व्रत के लिए स्वीकार की गयी है।

पुनरप्यन्येषां सेनगणस्य सूरीणां वचनमाह—

मेरुव्रतं विना शेषव्रते येनाधिका तिथिः।

यद्भोकरसपद्धीना जिविधा तिथिसंस्थितिः ॥१७॥

अर्थ—व्रत-समाप्ति-तिथिकी वृद्धि होनेपर व्रतके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए, इसके लिए सेनगणके अन्य आचार्योंके मतको कहते हैं—

मेरुव्रतके विना समस्त व्रतोंमें बुद्धिगत तिथि जितनी अधिक होती है, उसमेंसे एक घटी, छः घटी और चार घटी प्रमाण घटानेपर तीनों प्रकारसे व्रत-तिथिकी स्थिति आ जाती है।

विवेचन—पाँच मेरु सम्बन्धी ८० चैथालयोंके व्रत मेरुव्रतमें किये जाते हैं। पहले चार उपवास भद्रशाल वनके चारों मन्दिर सम्बन्धी करने चाहिए। पश्चात् एक वेला करनेके उपरान्त नन्दनवनके चार उपवास करने चाहिए। पुनः एक वेला करनेके उपरान्त सौमनस वनके चार उपवास किये जाते हैं, पश्चात् एक वेलाके उपरान्त पाण्डुक वनके चार उपवास किये जाते हैं, उपरान्त एक वेला करनी चाहिए। इस प्रकार एक मेरुके सोलह प्रोषधोपवास, चार वेला तथा बीस एकाश्व होते हैं। तात्पर्य यह है कि मेरुव्रतके उपवासोंमें प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी सोलह चैथालयोंके सोलह प्रोषधोपवास करने पड़ते हैं। प्रथम सुदर्शन मेरुके चार वन हैं—भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वन। प्रत्येक वनमें चार जिनालय हैं। व्रत करनेवाला प्रथम भद्रशाल वनके चारों चैथालयोंके प्रतीक चार प्रोषधोपवास करता है। प्रथम वनके प्रोषधोपवासोंमें आठ दिन लगते हैं अर्थात् चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ इस प्रकार आठ दिन लग जाते हैं। द्वितीय वनके प्रोषधोपवासोंमें भी आठ ही दिन लग जाते हैं अर्थात् चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ करनी पड़नी हैं।

सौमनस वनके प्रतीक भी चारों चैथालयोंके चार उपवास और चार पारणाएँ करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार पाण्डुक वनके उपवासोंमें भी चार प्रोषधोपवास और चार पारणाएँ की जाती हैं। इस प्रकार प्रथम सुदर्शन मेरुके सोलह चैथालयोंके प्रतीक सोलह उपवास, सोलह पारणाएँ और प्रत्येक वनके उपवासोंके अन्तमें एक—वेला दो दिनका उपवास; इस तरह कुल चार वेलाएँ करनी पड़ती हैं। प्रथम मेरुके व्रतोंमें कुल ४४ दिन लगते हैं। १६ प्रोषधोपवासके १६ दिन, १६ पारणाओंके १६ दिन और ४ वेलाओंके ८ दिन तथा प्रत्येक वेलाके उपरान्त एक

पारणा की जाती है अतः ४ वेलाओं सम्बन्धी ४ दिन; इस प्रकार कुल $१६ + १६ + ८ + ४ = ४४$ दिन प्रथम मेरुके व्रतोंमें लगते हैं। ४४ दिन पर्यन्त शील व्रतका पालन किया जाता है तथा धर्मयज्ञानपूर्वक अपने समयको व्यतीत किया जाता है। प्रथम मेरुके व्रतोंके पश्चात् लगातार ही द्वितीय मेरुविजयके भी उपवास करने चाहिए।

विजयमेरुके सोलह चैथालय सम्बन्धी सोलह उपवास तथा प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। प्रत्येक मेरुपर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक ये चारों वन रहते हैं तथा प्रत्येक वनमें प्रधान चार चैथालय हैं। प्रत्येक वनमें चैथालयोंके उपवासोंके अनन्तर वेला की जाती है तथा प्रत्येक वेलाके उपरान्त एक पारणा भी। इस प्रकार द्वितीय मेरु सम्बन्धी सोलह उपवास, चार वेलाएँ तथा बीस पारणाएँ की जाती हैं। इनकी दिन संख्या भी $१६ + ८ + ४ + १६ = ४४$ ही होती है।

तृतीय अचल मेरु सम्बन्धी उपवास भी १६, वेलाएँ ४ तथा पारणाएँ २०, अतः इसकी दिन संख्या भी ४४ ही होती है। इसी प्रकार पुष्कराक्षिके दोनों मेरु मन्दिर और विद्युन्माली सम्बन्धी उपवासोंकी संख्या तथा दिन संख्या पूर्ववत् ही है। पंच मेरु सम्बन्धी व्रत करनेकी दिनसंख्या $४४ \times ५ = २२०$ होती है। इस व्रतमें ८० प्रोषधोपवास, २० वेलाएँ और १०० पारणाएँ की जाती हैं। इन उपवास, वेला और पारणाओंकी दिनसंख्या जोड़नेपर भी पूर्ववत् ही आती है। क्योंकि २० वेलाओंके ४० दिन होते हैं अतः $८० + ४० + १०० = २२०$ दिन तक व्रत करना पड़ता है। व्रतके दिनोंमें पूजन, सामायिक तथा भावनाओंका चिन्तन विशेष रूपसे किया जाता है।

मेरु व्रतका प्रारम्भ श्रावण माससे माना जाता है। शुग या वर्षका प्रारम्भ प्राचीन भारतमें इसी दिनसे होता था। श्रावण कृष्ण प्रतिपदासे प्रारम्भकर लगातार २२० दिन तक यह व्रत किया जाता है। एक बार व्रत करनेके उपरान्त उसका उद्यापन कर दिया जाता है।

आचार्यने बताया है कि तिथि-बुद्धिका प्रभाव मेरुव्रत पर कुल भी

नहीं पड़ता है; क्योंकि यह व्रत लगातार वर्षमें ७ महीने १० दिन तक करना होता है। इसमें तिथिवृद्धि और तिथिक्षय बराबर होते रहनेके कारण दिन-संख्यामें बाधा नहीं आती है।

एक अन्य हेतु यह भी है कि मेरुव्रतके करनेमें किसी तिथिका ग्रहण नहीं किया गया है। इस व्रतका तिथिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह तो एक दिन उपवास, दूसरे दिन पारणा, फिर उपवास, पश्चात् पारणा इस प्रकार चार उपवास और चार पारणाओंके अनन्तर एक बेला—दो दिन तक लगातार उपवास करना पड़ता है। पश्चात् पारणा की जाती है। इस प्रकार उपयुक्त विधिके अनुसार उपवास और पारणाओंका सम्बन्ध किसी तिथिसे नहीं है। बल्कि यह सावन दिनसे सम्बन्ध रखता है; इसलिए इस व्रतपर तिथिवृद्धि और तिथिक्षयका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। आचार्यने इसी कारण मेरुव्रतको छोड़ शेष समस्त व्रतोंके सम्बन्धमें विधान बतलाया है कि नियत अवधिवाले व्रतोंकी अन्तिम तिथिके बढ़ने पर पारणाकी तिथि इस प्रकार निकाली जाती है कि वृद्ध-तिथि प्रमाणसे एक घंटी, छः घंटी और चार घंटी प्रमाण घटा देने पर जो शेष आवे वही पारणाका समय आता है अर्थात् पारणाके लिए तीन प्रकारकी स्थिति बतलायी है।

तात्पर्य यह है कि यदि वृद्धितिथि अगले दिन छः घंटी प्रमाण हो, चार घंटी प्रमाण हो अथवा एक घंटी प्रमाण हो तो उस दिन व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु पारणा की जायगी। यदि वृद्धि तिथि अगले दिन छः घंटी प्रमाणसे अधिक है तो उस दिन भी व्रत ही करना पड़ेगा। सेनाणके आचार्योंने एकमतसे स्वीकार किया है कि अगले दिन वृद्धि तिथिका प्रमाण छः घंटीसे ऊपर अर्थात् सात घंटी होना चाहिए। वीचमें तिथिवृद्धि होनेपर उपवास या एकाशन करना चाहिए। व्रत-समाप्ति वाली तिथिके लिए ही यह नियम स्थिर किया गया है।

मेरु व्रतका सम्बन्ध सावन दिनसे है, अतः इसकी समाप्ति या मध्यमें तिथियोंकी उदयास्त संज्ञाएँ या तिथियोंकी घटिकाएँ गृहीत नहीं

की गयी हैं। जिन व्रतोंका सम्बन्ध चान्द्र तिथियोंसे है, उनके लिए तिथिवृद्धि और तिथिक्षय ग्रहण किये जाते हैं। आचार्यने यहाँ पर अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर उसकी व्यवस्था बतलायी है।

मेरु व्रतकी विधि—प्रथम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धियपोऽशजिनालयेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप त्रिकाल करना चाहिए। द्वितीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनों में 'ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धियपोऽशजिनालयेभ्यो नमः', तृतीय मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धियपोऽशजिनालयेभ्यो नमः' चतुर्थ मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धियपोऽशजिनालयेभ्यो नमः' और पंचम मेरु सम्बन्धी व्रतोंके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं विद्युन्मालीमेरुसम्बन्धियपोऽशजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

पारणाके दिनोंमें एक अनाजका ही प्रयोग करना चाहिए। फलोंमें सेब, नारियल, आम, नारंगी, मौसमीका उपयोग कर सकते हैं। रात्रि जागरण करना भी आवश्यक है। व्रतके दिनोंमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। पंचमेरुकी पूजाके साथ त्रिकाल-चौबीसी, विद्यमान विंशति तीर्थंकर और पंचपरमेष्ठी पूजा करनी चाहिए। शीलव्रतका पालन भी आवश्यक है।

इस व्रतका फल—लौकिक और पारलौकिक अभ्युदयको प्राप्तिके साथ स्वर्गसुख और विदेहमें जन्म होता है। तीन-चार भवमें जीव निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

व्रत तिथिके प्रमाणके सम्बन्धमें विभिन्न

आचार्योंके मत

कर्णाटकप्रान्ते रविमित्रघटी तिथिः प्राह्या। मूलसंघे रस-घटी तिथिर्प्राह्या। जिनसेनावाक्यतः काष्ठासंघे त्रिमुहूर्तात्मिका तिथिर्प्राह्या। तिथिर्प्राह्याता वसुपलहीनं द्विघटीमितं मुहूर्ताभिस्तु-च्यते ॥

अर्थ—कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी प्रमाण व्रतके लिए तिथि ग्रहण की गयी है। मूल संघके आचार्योंने छः घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है। जिनसेनाचार्यके वचनोंसे काष्ठासंघमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिका मान ग्रहण किया गया है। आठ पल हीन दो घटी अर्थात् एक घटी वाचन पलका एक मुहूर्त्त होता है।

विवेचन—व्रत तिथिका प्रमाण निश्चित करनेके सम्बन्धमें जैन-चार्योंमें भी मतभेद है। भिन्न-भिन्न देशोंके अनुसार व्रतके लिए तिथिका प्रमाण भिन्न-भिन्न माना गया है। कर्णाटक प्रान्तमें बारह घटी व्रत तिथिके होनेपर ही व्रतके लिए तिथि ग्राह्य बताया गया है। श्रीधराचार्यने अपनी ज्योतिर्ज्ञान विधिमें व्रत तिथिका विचार करते हुए कहा है कि जो तिथि अपने सम्पूर्ण प्रमाणके पञ्चमांश हो वही व्रतके लिए ग्राह्य होती है। श्रीधराचार्यके उक्त मतपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि बारह घटी प्रमाण तिथिका मान मध्यम तिथिके हिसाबसे लिया गया है। दक्षिण भारतमें जैनेतर विद्वानोंमें भी श्रीधराचार्यके मतका आदर है।

जब मध्यम तिथिका मान साठ घटी मान लिया जाता है, उस समय पञ्चमांश बारह घटी ही आता है; किन्तु स्पष्ट मान बारह घटी ग्राह्य ही कभी आयेगा। गणितकी दृष्टिसे स्पष्ट मान निम्न प्रकार लाना चाहिए। उदाहरण—गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है तथा बुधवारको चतुर्थी १८ घटी ३० पल है। यहाँ पञ्चमीका कुल मान निकालकर यह निश्चय करना है कि गुरुवारको पञ्चमी श्रीधराचार्यके मतसे ग्राह्य हो सकती है या नहीं? तिथिका कुल मान तभी मालूम हो सकता है जब एक तिथिके अन्तसे लेकर अहोरात्र पर्यन्त जितना मान हो उसे पञ्चांग अंकित तिथि मानमें जोड़ दिया जाय। यहाँ पर पञ्चमीका मान निकालना है; बुधवारको चतुर्थीको समाप्ति १८।३० के उपरान्त हो जाती है, अर्थात् पञ्चमी तिथि बुधवारको सूर्योदयके १८।३० घट्यारम्भक मानके उपरान्त आरम्भ हो गयी है। अतः बुधवारको पञ्चमीका प्रमाण =

(६०।०) - (१८।३०) = (अहोरात्र—व्रतमान तिथि) = ४१।३० घट्यादि मान बुधवारको पञ्चमीका हुआ। गुरुवारको पञ्चमी १५ घटी २० पल है, अतः दोनों मानोंको जोड़ देने पर पञ्चमी तिथिका कुल प्रमाण निकल आयागा। (४१।३०) + (१५।२०) = ५६।५०। इसका पञ्चमांश निकाला तो ५६।५० ÷ ५ = ११।२२ अर्थात् ११ घटी २२ पल प्रमाण यदि सूर्योदय कालमें पञ्चमी होगी, तभी व्रतके लिए ग्राह्य मानी जा सकेगी। परन्तु हमारे उदाहरणमें १५ घटी २० पल प्रमाण गुरुवारको पञ्चमी उदयकालमें बतायी गयी है, जो कि गणितसे आये हुए पञ्चमांश से ज़्यादा है। अतः गुरुवारको पञ्चमीका व्रत किया जायगा। सुनिश्चित पुराणकारने व्रतकी तिथिका मान कुल तिथिका पञ्चांश स्वीकार किया है। दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रान्तमें पञ्चमांश प्रमाण तिथि, तमिल प्रान्तमें पञ्चांश प्रमाण तिथि एवं तैलुगु प्रान्तमें त्रिमुहूर्त्तलिम्बिका तिथि व्रतके लिए ग्रहण की गयी है। उत्तर भारतमें प्रायः सर्वत्र रस घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्राह्य मानी गयी है।

मूलसंघ और सेनागणके आचार्य तिथि-प्रभाव और तिथि शक्तिर्भी अपेक्षा छः घटी प्रमाण तिथि ही व्रतके लिए ग्रहण करते हैं। काशी, कोशाल, मगध एवं अवन्ति आदि समस्त उत्तर भारतके प्रदेशोंमें मूल संघका ही मत तिथिके लिए ग्राह्य माना जाता था। काष्ठा संघके प्रधान आचार्य जिनसेन हैं, इन्होंने व्रतकी तिथिका प्रमाण तीन मुहूर्त्त अर्थात् ५ घटी ३६ पल बताया है। हस्तिनापुर, मथुरा और कोशाल देशमें प्राचीनकालमें इस मतका प्रचार था। मूलसंघ और काष्ठासंघके व्रततिथि प्रमाणमें कोई विशेष अन्तर नहीं। मात्र चौबीस पलका अन्तर है, जो कि मध्यम और स्पष्ट मानके अन्तरसे हो सकता है। यहाँ सभी मतोंका समन्वय करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्रत करनेके लिए तिथिका प्रमाण छः घटीसे ज़्यादा होना चाहिए। सेनागणके कतिपय आचार्योंने इसी कारण व्रत तिथिका मान तीन मुहूर्त्तसे लेकर छः मुहूर्त्त तक बताया है। तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथि लेकर व्रत करनेसे जवन्म फल, चार मुहूर्त्त

प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे मध्यम फल एवं छः सुहृत् प्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे उत्तम फल मिलता है। तीन सुहृत्से अल्पप्रमाण तिथिमें व्रत करनेसे व्रत निरफल हो जाता है। निर्णयसिन्धुमें हेमाद्रि मतका निरूपण करते हुए बताया गया है कि विवाद उपस्थित होनेपर व्रतके लिए तिथिका प्रमाण समस्त पूर्वाह्णकाली लेना चाहिए। पूर्वाह्णकाल प्रमाण गणितसे निकालते हुए बताया है कि दिनमानमें पाँचका भाग देकर जो लब्ध आवे, उसे दोसे गुणा करनेपर पूर्वाह्णकालका मान आता है। उदाहरण दिनमान बुधवारको २८ घटी ४० पल है तथा चतुर्दशी तिथि इस दिन ६ घटी ७ पल है, क्या यह तिथि पूर्वाह्णकाली है? इसे व्रतके लिए ग्रहण करना चाहिए?

दिनमान २८।४० में पाँचका भाग दिया तो—२८।४० ÷ ५ = ५।४४। इसको दोमें गुणा किया तो—५।४४ × २ = ११।२८ घटी तक पूर्वाह्ण माना जायगा। जो तिथि पूर्वाह्णकाली नहीं होगी, वह व्रतके लिए प्राह्य नहीं हो सकती। अतः बुधवारको चतुर्दशी व्रतकी तिथि नहीं मानी जा सकती है; क्योंकि इसका प्रमाण पूर्वाह्णके प्रमाणसे अलग है।

यह हिमाद्रि मत कर्णाटकप्रान्तीय श्रीधराचार्यके मतसे मिलता-जुलता है। केवल गणित प्रक्रियामें थोड़ा-सा अन्तर है। गणितसे निष्पन्न फल दोनोंका प्रायः एक ही है। दीपिकाकार एवं मदनरत्नकार सत्यव्रतने उदय तिथिका खण्डन करते हुए बताया है कि जब तक पूर्वाह्णकालमें तिथि न हो तब तक व्रतारम्भ और व्रत समाप्ति नहीं करनी चाहिए। देवलने भी उक्त मतका समर्थन किया है तथा जो केवल उदय तिथिको ही प्रमाण मानते हैं, उनका खण्डन किया है। देवल और सत्यव्रतका मत बहुत कुछ मूल संघके आचार्योंके मतके साथ समानता रखता है। तिथि-शक्ति और तिथिके बलावलको प्रधान हेतु मानकर पूर्वाह्णकाल व्यापी तिथिको व्रतके लिए प्राह्य माना है^१। गणितसे पूर्वाह्णका प्रमाण

१. उदयरथा तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यमाक्।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ॥—निर्णय० पु० १७।

भी एक विलक्षण ढंगसे निकाला है, इन्होंने दिनमानका मान्य पञ्चमांश ही पूर्वाह्ण माना है। यद्यपि अन्य गणितके आचार्योंने पञ्चमांशपर पूर्वाह्णका प्रारम्भ और दो पञ्चमांशपर पूर्वाह्णकी समाप्ति मानी है। दिनमानका मान्य पञ्चमांश कह देनेसे ही पूर्वाह्णका ग्रहण हो जाता है।

निकर्ष यह है कि अनेक मतमतान्तरोंके रहनेपर भी जैनाचार्योंने व्रतके लिए छः घटीसे लेकर बारह घटी तक तिथिका प्रमाण बताया है।

दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी

अवधिका निर्धारण

कारणे लक्षणे धर्मे दिनानि दशषोडशात्।

न्यूनाधिकदिनानि स्युराद्यन्तविधिसंयुते ॥१८॥

अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसप्तमैः ॥

आदिमध्यान्तमेदेषु यथाशक्तिर्विधीयते ॥१९॥

अर्थ—दशलक्षण और सोलहकारण व्रतके दिनोंकी संख्या क्रमसे दश और सोलह है। तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें व्रत प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर व्रत समाप्त करनेकी तिथि तक न्यूनाधिक दिन संख्या भी हो जाती है। मध्यमें जब तिथिक्षय हो जाता है तो दिन संख्या कम और जब तिथिवृद्धि हो जाती है तो दिन संख्या बढ़ जाती है।

व्रतके जानकार विद्वान् लोगोंने तिथिवृद्धि होनेपर एकदिन अधिक-व्रत करनेका आदेश दिया है; अतः आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें शक्ति-के अनुसार व्रत करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि एक तिथिके बढ़ जानेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। व्रतके आदि, मध्य अथवा अन्तमें तिथिके क्षय होनेपर शक्तिके अनुसार व्रत करना।

विशेषतः—यद्यपि सोलहकारणव्रतके दिनोंकी संख्या तथा उसकी अवधिके सम्बन्धमें पहले ही विस्तारसे कहा जा चुका है। सोलहकारण व्रतमें एक तिथिके बढ़ जानेपर दिनसंख्या बढ़ जाती है किन्तु व्रतके दिनोंके मध्यमें एक तिथिके घट जानेपर दिनसंख्यामें एक दिन कम

किया जाता है। यह व्रत भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, अतः वीचकी तिथिके नष्ट हो जानेपर भी तिथि-अवधि ज्यों-की-त्यों रहती है। व्रत आरम्भ और व्रत समाप्त करनेकी तिथियाँ इसमें निश्चित रहती हैं, अतः तिथिक्षयमें एक दिन आगेसे व्रत नहीं किया जाता है, जिससे ३१ दिन की जगह ३० दिन ही किया जाता है।

दशलक्षण व्रतमें एक दिनके घट जानेपर एक दिन आगेसे व्रत करने-को परिपटा भी है तथा यह शास्त्रसम्मत भी है। दशलक्षण व्रतके वीचमें जब किसी तिथिका क्षय रहता है, तो उसे पूरा करनेके लिए एक दिन आगे व्रत किया जाता है। इस दिनोंके स्थानमें यह व्रत कभी भी नौ दिनोंमें नहीं किया जाता है। जब तिथि बढ़ जाती है तो इस व्रतकी अवधि ग्यारह दिनकी हो जाती है, तिथि बढ़ जानेपर एक दिन घटता नहीं है। व्रतकी समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। तिथि घट जानेपर भी व्रतको समाप्ति चतुर्दशीको की जाती है। हाँ, पञ्चमीको व्रत आरम्भ न कर तिथि-क्षयकी स्थितिमें चतुर्थीको व्रतारम्भ किया जाता है। सेनागणके आचार्योंने व्रत समाप्तिकी तिथि निश्चित कर दी है। व्रतारम्भके सम्बन्धमें काष्ठसंघ और मूल संघमें थोड़ा-सा मतभेद है। मूल संघके आचार्य मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको ही व्रतारम्भ मान लेते हैं, उन्होंने बतलाया है कि मध्यमें तिथिक्षयकी अवस्थामें पञ्चमी विद्ध चतुर्थी ग्रहण की गई है। सूर्यास्त समयमें पञ्चमी तिथि आ ही जाती है। ऐसा नियम भी है कि जब दशलक्षण व्रतके मध्यमें किसी तिथिका क्षय होता है तो चतुर्थी तिथि मध्याह्नके पड़चात् पञ्चमीसे विद्ध हो जाती है। अतएव मूलसंघके आचार्योंने एक दिन पहलेसे व्रत करनेका विधान किया है। यद्यपि उदयकालमें रसवटी प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य बताया है, परन्तु 'त्रिमुहूर्त्तैषु यत्रार्क उदयेत्यस्तं समेति च' श्लोकमें च-शब्दका पाठ रखा है, जिससे स्पष्ट है कि सूर्यास्तकालमें तीन मुहूर्त्त प्रमाण तिथिके होनेपर भी तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है।

यद्यपि आचार्यने स्पष्ट कर दिया है कि यह विधान नैशिक व्रतोंके लिए ही है। 'त्रिमुहूर्त्तैषु यत्रार्कः' श्लोककी संस्कृत व्याख्यामें बताया है, "या तिथिरुदयकाले त्रिमुहूर्त्तार्दिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः उदयकाले त्रिमुहूर्त्तार्दिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना तिथिः" आचार्य-के इस कथनसे स्पष्ट है कि अस्तकालमें तीन घटी रहनेवाली तिथि भी व्रतके लिए ग्राह्य मान ली जाती है। यद्यपि आगे चलकर अपने व्याख्यानमें नैशिक व्रतोंके लिए अस्तकालीन तिथिका उपयोग करनेके लिए कहा गया है। फिर भी व्याख्यामें दो बार "त्रिमुहूर्त्तार्दिनागतदिवसेऽपि वर्तमाना" पाठ आजानेसे यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि दशलक्षण और अष्टाहिका व्रतके मध्यमें तिथिका अभाव होनेपर पञ्चमी विद्ध चतुर्थी तथा अष्टमी विद्ध सप्तमी व्रत करनेके लिए ग्रहण कर ली जाती है, जिससे नियत अवधिमें भी बाधा नहीं पड़ती है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर उपर्युक्त व्यवस्था मान ली जायगी, किन्तु आदि और अन्तमें तिथिक्षय होनेपर उक्त दोनों व्रतोंके लिए क्या व्यवस्था रहेगी? आचार्य सिंहनन्दीने इस प्रश्नका उत्तर भी उपर्युक्त पद्याँ दिया है। आपने बतलाया है कि आदि तिथिका क्षय होनेका अर्थ है—दश-लक्षणके लिए पञ्चमीका ही अभाव होना। जब सूर्योदयकालमें पञ्चमी नहीं रहेगी तो चतुर्थी विद्ध पञ्चमी ही व्रतके लिए पञ्चमी मान ली जायगी। गणित प्रक्रियाके अनुसार यही सिद्ध होता है कि जब उत्तर तिथिका अभाव होता है तो पूर्व तिथि भी पिछले दिन अल्प प्रमाण ही रहती है, जिससे क्षय होनेवाली तिथि उस दिन भुक्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जिस पञ्चमीका अभाव हुआ है, वस्तुतः वह उसके पहले दिन उदयकालमें चतुर्थीके रहनेपर भुक्त हो चुकी है, जिससे अगले दिन उदय कालमें उसका अभाव हो गया है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि बुधवारको चतुर्थी ६ घटी २० पल है, गुरुवारको पञ्चमीका अभाव है और पष्टी ५० घटी १९ पल है। ऐसी अवस्थामें व्रतके लिए पञ्चमी कौन सी माननी जायगी?

बुधवारको ६ घटी २० पलके उपरान्त पञ्चमी आ जायगी, और उसी दिन ५९ घटी २५ पल पर समाप्त हो जाती है। गुरुवारको पञ्चमीका सर्वथा अभाव है। अतः व्रतारम्भ बुधवारसे किया जायगा। यह नियम है कि जब उदयकालमें तिथि नहीं मिलती है, तो अपराह्नकालीन तिथिको ग्रहण कर लिया जाता है। अतएव आदि तिथिके क्षय होनेपर दशलक्षण व्रत चतुर्थी से और अष्टाह्निका व्रत सप्तमीसे किया जाता है। यदि अन्तिम तिथि क्षय हो तो यह व्यवस्था है कि जिस दिन गणितके हिसाबसे अन्तिम तिथि पड़ती हो, उसी दिन व्रत समाप्त करने चाहिए। अर्थात् तिथिक्षय-के पहलेवाले दिनको व्रत समाप्त हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्रत समाप्तिके दिन तिथि एक या दो घटी ही नाममात्रको होती है, ऐसी अवस्थामें छः घटी प्रमाणसे कम होनेके कारण अग्राह्य है; परन्तु क्षय सदृश होनेपर भी एक दिन व्रत अवधिमेंसे न्यून रहनेके कारण व्रत समाप्तिके लिए छः घटीसे कम प्रमाण तिथि भी ग्रहण कर ली जाती है। निष्कर्ष यह है कि अन्तिम तिथिके क्षय होनेपर दशलक्षण व्रत नौ दिन तथा अष्टाह्निका व्रत सात दिन तक ही करने चाहिए। एक दिन पहलेसे व्रत करने लगाना ठीक नहीं है।

व्रततिथि निर्णयके लिए अन्य मतमतान्तर

इति दामोदरकथितं रसघट्यां व्रतं नीतं देशसौराष्ट्र-शान्तिहृतमध्यदेशेषु विख्यातं कर्णाटके, द्राविडे देशे च प्रसिद्धम् ॥

अर्थ—इस प्रकार दामोदरके द्वारा कथित रस घटी प्रमाण तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यह मत सौराष्ट्र—गुजरात, शान्तिहृत—उत्तर प्रदेश और विहार प्रान्तका उत्तर पूर्वीय भाग, मध्य प्रदेशमें प्रसिद्ध तथा कर्णाटक और द्राविड देशमें मान्य है।

विवेचन—दामोदर नामके एक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने व्रततिथि-का प्रमाण छः घटी माना है। इन्होंने तिथिनिर्णय नामका एक प्रसिद्ध

ग्रन्थ लिखा है। इनके रसघटी प्रमाण मतका उद्धरण इन्द्रनन्दि संहिता-में भी पाया जाता है तथा इन्द्रनन्दि आचार्यने स्वयं इनका उल्लेख किया है। तिथि प्रमाणके लिए अनेक मतभेदोंके होनेपर भी बहुमतसे छः घटी मान ही ग्राह्य माना गया है। यह मत गुजरात, मध्यदेश, उत्तर प्रदेश, कर्णाटक और द्राविड देशमें मान्य है। यद्यपि कर्णाटक देशमें सामान्यतः तिथिमान बारह घटी माननेका उल्लेख किया गया है, परन्तु विशेषरूपसे जैनाचार्योंने छः घटी प्रमाणको ही ग्राह्य बताया है। तथा तिथिका तत्त्वभाग पन्द्रह घटी प्रमाण तक माना है।

कर्णाटक देशके जैनेतर आचार्योंने व्रत तिथिका मान समस्त तिथिका दशमांश अथवा दिनमानका पष्ठांश माना है। इसका समर्थन दामोदर आचार्यके वचनोंसे भी होता है। यह मत जैनोंमें तामिल प्रदेशमें आदरणीय समझा जाता था। इन्द्रनन्दि और माधवन्दि आचार्योंके वचनोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। अत्रदेवके वचनोंसे भी प्रतीत होता है कि सूक्ष्म विचारके लिए व्रततिथिका मान समस्त तिथिका दशमांश या दिनमानका पष्ठांश मानना चाहिए। जैसे अर्जित सम्पत्तिका पष्ठांश दानमें दिया जाता है, उसी प्रकार दिनमानका पष्ठांश व्रतके लिए ग्राह्य होता है। उदाहरण—बुधवारको सप्तमी १५ घटी १० पल है, गुरुवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है। यहाँ यह देखना है कि माधवन्दि और इन्द्रनन्दि के सिद्धान्तानुसार गुरुवारकी अष्टमी व्रतके लिए ग्राह्य है या नहीं? अहोरात्र मानमेंसे सप्तमी तिथिके प्रमाणको घटाया तो अष्टमीका प्रमाण आया—(६००) - (१५१०) = (अहोरात्र—व्रत तिथिके पहले-की तिथि) = ४४१५० = अर्थात् व्रततिथि; जो कि पञ्चाममें अंकित नहीं की गयी है। इसमें पञ्चांग अंकित तिथि जोड़नेपर समस्त तिथिका प्रमाण होगा—

(अर्थात् व्रततिथि-पञ्चांग अंकित व्रत तिथि) = (४४१५०) + (७१५४) = ५१२६४ समस्त तिथिका मान। इसका दशमांश = ५१२६४ ÷ १० = ५१२६४ अर्थात् चार घटी, अष्टावन पल और चौबीस

विषय प्रमाण या इससे अधिक होनेपर तिथि व्रतके लिए ग्राह्य है। यहाँ पर अष्टमी ७ घटी ५४ है, यह मान गणितागत मानसे अधिक होनेके कारण व्रत तिथिके लिए ग्राह्य है। दिनमान २९ घटी ४० पल है, इसका षष्ठांश लिया तो—(२९।४०) ÷ ६ = ४।९६।४० अर्थात् ४ घटी ५६ पल ४० विषय हुआ। गुरुवारको अष्टमी ७ घटी ५४ पल है जो कि गणित द्वारा आगत मानसे ज्यादा है, अतः यह तिथि भी व्रतके लिए सर्व प्रकारसे ग्राह्य है। माघानन्दि आचार्यने तिथिके लिए और भी अनेक मतोंकी समीक्षा की है, परन्तु सूक्ष्म विचारसे उन्होंने दिनमानके षष्ठांशको ही दान, अध्ययन, व्रत और अनुष्ठानके लिए ग्राह्य बताया है।

इतिन्द्रनन्दिवचनम्; अधिकायामुक्तं नियमसारे समयभूषणे च-

- अधिका तिथिरादिष्टा व्रतेषु बुधसन्तमेः।

आदिमध्यानव्रतेषु शक्तितश्च विधीयते ॥१॥

अर्थ—यह इन्द्रनन्दि आचार्यके वचन हैं। अधिक तिथि—तिथिके बड़े जानेपर नियमसार और समयभूषणमें व्यवस्था बतायी गयी है कि अधिक तिथिके होनेपर विवेकी श्रावकोंको आदि, मध्य और अन्त भेदों में—दिनोंमें शक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए। यह श्लोक पहले भी आया है। सिंहनन्दि आचार्यका ही यह श्लोक है, यद्यपि इसी श्लोकके भावका श्लोक इन्द्रनन्दीका भी है। पर तिथि-व्यवस्था सिंहनन्दीकी ही है।

तथा चोक्तं सिंहनन्दि विरचित पञ्चनमस्कारदीपिकायाम्—
शक्तिहीनं करोतु वाप्यधिकस्याधिकं फलम्।

सशक्तिके च निःशक्तिके द्वेयं नेदमुत्तरम् ॥१॥

अर्थ—सिंहनन्दी विरचित पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थमें भी कहा है—तिथिवृद्धि होनेपर जिसमें शक्ति नहीं है, उसको भी एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए, क्योंकि एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। जो यह प्रश्न करते हैं कि जिसमें शक्ति नहीं है, वह किस प्रकार अधिक दिन व्रत करेगा। शक्तिशालीको ही

एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए। शक्तिके अभावमें एक दिन अधिक व्रत करनेका प्रश्न उठता नहीं है। आचार्य इस योगी दलीलका खण्डन करते हैं तथा कहते हैं कि व्रत करनेवाला शक्तिशाली या शक्ति-रहित है, यह कोई उत्तर नहीं है। व्रत सभीको तिथि-वृद्धि होने पर एक दिन अधिक करना चाहिए। व्रत ग्रहण करनेवाला अपनी शक्तिको देखकर ही व्रत ग्रहण करता है।

विवेचन—आचार्य सिंहनन्दीने पञ्चनमस्कारदीपिका नामक ग्रन्थ लिखा है। आपने इस ग्रन्थमें तिथिवृद्धि होने पर व्रत कितने दिन करना चाहिए, इसकी व्यवस्था बतलायी है। कुछ लोग यह आशंका करते हैं कि जिसमें शक्ति है, वह तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करेगा और जिसमें शक्ति नहीं है, वह नियत अवधि पर्यन्त ही व्रत करेगा। आचार्यने इस प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि व्रत करनेमें शक्ति, अशक्तिका प्रश्न नहीं है। अधिक दिन व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। जो शक्तिहीन हैं, उनको तो व्रत ग्रहण नहीं करना चाहिए। अपनेको शक्तिहीन समझना बहिरात्मा बनना है। आत्मामें अनन्त शक्ति है, कर्म-बन्धनके कारण आत्माकी शक्ति आच्छादित है; कर्मबन्धनके दृढते ही या शिथिल होते ही पूर्ण या अपूर्ण रूपमें शक्ति उद्भूत होती है।

व्रत करनेका मुख्य ध्येय यही है कि कर्मबन्धन शिथिल हो जायँ और ऐसा अवसर मिले जिससे इस कर्मबन्धनको तोड़नेमें समर्थ हो सकें। व्रत करके भी अपनेको निःशक्ति समझना बहिरात्माका लक्षण है। यद्यपि जैनागम शक्तिप्रमाण व्रत करनेका आदेश देता है। यदि उपवास करनेकी शक्ति नहीं है तो एकाग्रान करना चाहिए। परन्तु शक्ति-प्रमाण व्रत करनेका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अपनी शक्तिको छिपाया जाय। व्रत करनेसे शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जो अपनेको निःशक्ति समझते हैं, उन्हें आत्माका पक्का श्रद्धान नहीं हुआ है—भेदविज्ञानकी जागृति नहीं हुई है। भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही इस जीवको अपनी वास्तविक शक्तिका अनुभव हो जाता है।

शरीरसे मोह करनेके कारण ही यह जीव अपनेको शक्तिहीन समझता है। परन्तु जैनदर्शनमें शारीरिक शक्ति आत्माकी शक्तिसे ही अनुप्राणित बतलायी है। अतः अनन्त बलशाली आत्माको कभी भी शक्तिहीन नहीं समझना चाहिए। मैं चतुर हूँ, पण्डित हूँ, ज्ञानी हूँ आदि मानना बहिरात्मापना है। रागी, द्वेषी, लोभी, मोही, अज्ञानी, दीन, धनी, दरिद्री, सुरुप, कुरूप, बालक, कुमार, तरुण, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, काला, गोरा, मोटा, पतला, निर्बल, सबल आदि अपनेको पुकान्तरूपसे समझना मिथ्यात्वका द्योतक है। जिसको शरीरमें आत्माकी प्रतिष्ठा हो जाती है, जो शरीरके धर्मको ही आत्माका धर्म मानता है, वह मिथ्या दृष्टि बहिरात्मा है। अतः व्रत करनेमें सर्वदा अपनेको शक्तिशाली ही समझना चाहिए।

जो लोग अपनेको शक्तिहीन कहकर व्रत करनेसे भागते हैं, वे वस्तुतः आत्मानुभूतिसे हीन हैं। रत्नत्रय आत्माका स्वरूप है, इसकी प्राप्ति व्रतचरणसे ही हो सकती है। व्रतचरण संसार और शरीरसे विरक्त उत्पन्न करता है। मोहके कारण यह आत्मा अपने स्वरूपको भूल है; मोहके दूर होते ही स्वरूपका भाव होने लगता है। शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य। यह अनादि, स्वतःसिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष है। इस आत्माको तीक्ष्ण शब्द काट नहीं सकते हैं, जलछावन इसे भिगा नहीं सकता। पवनकी शोषक शक्ति इसे सुखा नहीं सकती। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्पत्त्व, अशुल्लसुख आदि स्वाभाविक आठ गुण इसमें वर्तमान हैं। ये गुण इस आत्माके स्वभाव हैं, आत्मासे अलग नहीं हो सकते। जो व्यक्ति इस मानव शरीरको प्राप्तकर आत्माकी साधना करता है, व्रतोपवास द्वारा विषय-कपायजन्य प्रवृत्तियोंको दूर करता है, वह अपने मनुष्य जीवनको सफल कर लेता है।

शरीरके नाश होने पर भी यह आत्मा इस प्रकार नष्ट नहीं होती है जैसे मकानके भीतरका आकाश जो मकानके अकारका होता है, मकानके गिरा देने पर भी मूलस्वरूपमें व्योम्का-रूपों अविकृत रहता है।

ठीक इसी प्रकार शरीरके नाश हो जानेपर भी आत्मा व्योम्की-रूपों मूलरूपमें रहती है। इसीलिए आचार्योंने इस ज्ञान, दर्शनमय आत्मतत्त्वको प्राप्त करनेका साधन व्रतोपवास आदिको माना है। उपवास करनेसे इन्द्रियों की उद्दाम शक्ति क्षीण हो जाती है, विषयकी ओर उनकी दौड़ कम हो जाती है। उपवासको आचार्योंने शरीर और आत्मशुद्धिका प्रधान साधन कहा है। प्रमाद, जो कि आत्माकी उपलब्धिमें बाधक है, उपवाससे दूर किया जा सकता है। शरीरको संतुलित रखनेमें भी उपवास 'बड़ा भारी' सहायक है। धर्म, ध्यान, पूजापाठ और स्वाध्यायपूर्वक उपवास करनेका फल तो अद्भुत होता है। आत्माकी वास्तविक शक्ति प्रादुर्भूत हो जाती है।

सम्प्रदायि श्रावक अपने सम्प्रदायदर्शन व्रतको विद्युद्ध करनेके लिए नित्य, नैमित्तिक सभी प्रकारके व्रत करता है। पञ्चाणुव्रतोंके द्वारा अपने आचरणको सम्प्रकृ करता हुआ मोक्षमार्गमें अग्रसर होता है। जैनागममें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि श्रावकको सर्वदा साध्वान रहते हुए आत्मशोधनमें प्रवृत्त होना चाहिए। यह गृहस्थ धर्म भी इस आत्माको संसारके वन्धनसे छुड़ानेमें सहायक है। यद्यपि मुनिधर्म धारण किये बिना पूर्ण स्वतन्त्रता इस जीवको नहीं प्राप्त हो सकती है, क्योंकि गृहस्थ-धर्ममें परावलम्बन अधिक रहता है। अत्रेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावक-चारमें स्पष्ट लिखा है कि समाधिमरणमें सहायक दशलक्षण आदि व्रतोंको इस जीवको अवश्य धारण करना चाहिए। व्रतोंके प्रभावसे समाधि-मरण सिद्ध होता है।

व्रततिथिके निर्णयके लिए विभिन्न मत

तथा व्रतोद्योते—

रसघटीमतं चापि मतं दशघटीप्रमम् ।

विशानाडीमतं चापि मूले दारुमतद्वये ॥१॥

मूलसङ्घे घटीपट्कं व्रतं स्याच्छुद्धिकारणम् ।

काष्ठसङ्घे च पष्ठांशं तिथेः स्याच्छुद्धिकारणम् ॥२॥

पूज्यपादस्य शिष्यैश्च कथितं षट्यष्टीमतम् ।

प्रातः सकलसङ्घेषु पारम्पर्यसमागतम् ॥३॥

अर्थ—मूल संघके आचार्योंके मतानुसार छः घटी प्रमाण तिथिका मान है । काष्ठसंघके आचार्योंके दो मत हैं—एक सिद्धान्तके आचार्य दस घटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं तथा दूसरे सिद्धान्तके आचार्य बीसघटी प्रमाण व्रतकी तिथिका मान बतलाते हैं । मूलसंघमें व्रतकी शुद्धि छः घटी प्रमाण तिथि होनेपर मानी है, किन्तु काष्ठसंघमें षष्ठांश प्रमाण तिथि ही व्रतशुद्धिका कारण मानी गयी है । पूज्यपादके शिष्योंने भी छः घटी प्रमाण व्रततिथिको कहा है । इस तिथि प्रमाणको ही परम्परागत आचार्योंके मतानुसार ग्रहण करना चाहिए ।

विवेचन—व्रततिथिके निर्णयके सम्बन्धमें अनेक मतमतान्तर हैं । मूलसंघ, काष्ठसंघ, पूज्यपाद आदि आचार्योंकी परम्पराके अनुसार व्रततिथिका मान भी भिन्न-भिन्न प्रकारसे लिया गया है । यद्यपि व्यवहारमें मूलसंघके आचार्योंका मत ही प्रमाण माना जाता है, फिर भी विचार करनेके लिए यहाँ सभी मतोंका प्रतिपादन किया जा रहा है ।

काष्ठसंघके आचार्योंमें दो प्रकारके सिद्धान्त पाये जाते हैं । कुछ आचार्य तिथिका प्रमाण षष्ठांश मात्र और कुछ तृतीयांश मात्र मानते हैं । तृतीयांश मात्र प्रमाण माननेवालोंका कथन है कि जितनी अधिक तिथि व्रतके दिन सूर्योदयकालमें होगी, उतना ही अच्छा है । क्योंकि पूर्ण तिथिका फल भी पूरा ही मिलेगा । मध्य मान तिथिका ६० घटी होता है, अतः तृतीयांशका अर्थ २० घटी मात्र है । यदि स्पष्ट तिथिका मान निकालकर तृतीयांश लिया जाय तो अधिक प्रामाणिक न होगा । परन्तु स्पष्टतिथिके मानका गणित करना होगा तभी तृतीयांश ज्ञात हो सकेगा । उदाहरण—सोमवारको सप्तमी तिथिका मान पञ्चांगमें १५ घटी २५ पल अंकित है और मंगलवारको अष्टमी १० घटी ४० पल अंकित की गयी है । कुल अष्टमीका प्रमाण निम्न प्रकार हुआ—

(अहोरात्र प्रमाण-पञ्चांग अंकित पूर्वतिथि-सप्तमी) = अनंकित

व्रततिथि=अष्टमीका प्रमाण=(६०।०) - (१५।२५) = ४४।३५ अनंकित व्रततिथि अष्टमी (अनंकित व्रततिथि + पञ्चांग अंकित व्रततिथि) = (४४।३५) + (१०।४०) = ५४।७५ = ५४।७५ इसका तृतीयांश निकाला तो—५४।७५ ÷ ३ = १८।२५ अर्थात् १८ घटी २५ पल तृतीयांश प्रमाण आया । यदि अष्टमी सूर्योदय कालमें १८ घटी २५ पलके तुल्य हो या इससे अधिक हो तभी काष्ठसंघके द्वितीय मतके अनुसार ग्राह्य हो सकती है । प्रस्तुत उदाहरण में १० घटी ४० पल ही है, अतः व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती है । व्रत करनेवालेको सोमवारके दिन ही इस सिद्धान्तके अनुसार व्रत करना पड़ेगा ।

तृतीयांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि माननेवाले

मतकी आलोचना

मध्यममान या स्पष्टमानसे समस्त तिथिका तृतीयांश व्रतके लिए प्रमाण मानना उचित नहीं जैचता है । क्योंकि उदयकालमें तृतीयांशमात्र शायद ही कभी तिथि मिलेगी, ऐसी अवस्थामें व्रत सदा अनंकित तिथिमें ही करना पड़ेगा । मध्यममानकी अपेक्षा २० घटी प्रमाण उदय तिथिका मान आवेगा और स्पष्टमानकी अपेक्षासे कभी २० घटीसे अधिक २२ घटीके लगभग हो सकता है और कभी २० घटीसे न्यून ही प्रमाण रहेगा । ऐसी अवस्थामें उदयकालमें उक्त प्रमाण तुल्य व्रतके लिए तिथि मिलना सम्भव नहीं होगा । वर्षमें दो-चार बार ही ऐसी स्थिति आवेगी, जब २० घटी प्रमाण या इसके लगभग तिथि मिल सकेगी, अतः अधिकंशा व्रतोंमें उदयकालीन तिथिको छोड़ अस्तकालीन तिथि ही ग्रहण करनी पड़ेगी ।

दूसरी आपत्ति तृतीयांश मात्र व्रततिथि माननेमें यह भी आती है कि प्रोपयोपवास करनेवालेका प्रत्येक पूर्व सम्बन्धी प्रोपयोपवास कभी भी यथासमयपर नहीं होगा । क्योंकि प्रोपयोपवासके लिए पुकारानकी तिथिका विधान है, उपवासके लिए भी निश्चित तिथि होनी चाहिए तथा

पारणके लिए भी विहित तिथिका होना आवश्यक है। जैसे किसी व्यक्तिको चतुर्दशीका प्रोपधोपवास करना है। सोमवारको त्रयोदशी ८ घटी २० पल है, मंगलको चतुर्दशी ७ घटी ५० पल है और बुधवार को पूर्णिमा ६ घटी ३० पल है। इस प्रकारकी तिथि व्यवस्था होनेपर क्या चतुर्दशीका प्रोपधोपवास मंगलवारको किया जा सकेगा और पूर्णिमाको पारणा हो सकेगी ?

प्रत्येक तिथिका तृतीयांश प्रमाण निकालनेके लिए गणित किया की। रविवारको द्वादशी १२ घटी ४० पल है। अतः (अहोरात्र—एकाशानके पूर्वकी तिथि) = (६०।०) — (१२।४०) = ४७।२० अर्थात् त्रयोदशी तिथि, (अर्थात् तिथि + अर्थात् तिथि) = (४७।२०) + (८।२०) = ५५।४० त्रयोदशी, इसका तृतीयांश = ५५।४० ÷ ३ = १८।३३।२० घट्यादि मान त्रयोदशीका।

(अहोरात्र—व्रतके पूर्वकी तिथि) = (६०।०) — (८।२०) = ५१।४० अर्थात् चतुर्दशी (अर्थात् तिथि + अर्थात् चतुर्दशी) = (५१।४०) + (७।५०) = ५९।३० समस्त चतुर्दशी, इसका तृतीयांश ५९।३० ÷ ३ = १९।५० चतुर्दशीका तृतीयांश।

(अहोरात्र—व्रततिथि) = (६०।०) — (७।५०) = ५२।१० अर्थात् व्रतके बादकी पारणा तिथि; (अर्थात् पारणा + अर्थात् पारणा) = (५२।१०) + (६।३०) = ५८।४०, इसका तृतीयांश ५८।४० ÷ ३ = १९।३३।२० घट्यादि पूर्णिमाका।

प्रस्तुत उदाहरणमें एकाशानकी त्रयोदशी तिथि सोमवार को ८ घटी २० पल है, स्पष्टमानपरसे तृतीयांशका प्रमाण १८।३३।२० घट्यादि आया है। एकाशानकी तिथिका प्रमाण तृतीयांशके प्रमाणसे अलग है, अतः सोमवारको एकाशान नहीं करना चाहिए क्योंकि उस दिन त्रयोदशी तिथि है ही नहीं। यदि रविवारको एकाशान किया जाता है, तो उदय कालमें १२ घटी ४० पल तक द्वादशी तिथि भी रहती है, अतः धर्मग्रन्थान, सामायिक आदि क्रियाएँ, जिनका सम्बन्ध प्रोपधोपवाससे है, त्रयोदशीमें सम्पन्न नहीं हो सकेंगी।

चतुर्दशीको प्रोपधोपवास करना है, यह भी मंगलवारको ७ घटी ५० पल प्रमाण है। गणितसे चतुर्दशीका तृतीयांश १९।५० घट्यादि आया है, अतः मंगलको उपवास नहीं किया जा सकता, उपवास सोमवारको करना पड़ेगा। इसी प्रकार पारणा भी मंगलवारको नहीं होगी। उपवास और पारणाकी क्रियाएँ सम्पन्न करनेकी तिथियोंमें व्यतिक्रम हो जाता है, जिससे नियमित समयपर धार्मिक क्रियाएँ नहीं हो सकेंगी।

तीसरा दोष तृतीयांश प्रमाण तिथि माननेसे यह आता है कि स्पष्ट मानके अनुसार तिथिका तृतीयांश लेनेपर एकाशानकी तिथिके अनन्तर एक दिन बीचमें योंही खाली रह जायगा तथा उपवासकी तिथि एक दिन बाद हो पड़ेगी। उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्ति-को चतुर्दशीका प्रोपधोपवास करना है। त्रयोदशी बुधवारको १५।१२ है, गुरुवारको चतुर्दशी १६ घटी १० पल है। और शुक्रवारको पूर्णिमा १७ घटी १५ पल है। ऐसी अवस्थामें मंगलवारको त्रयोदशीका एकाशान करना पड़ेगा, बुधवारको यों ही रहना पड़ेगा, तथा गुरुवारको चतुर्दशीका उपवास करना पड़ेगा तथा शुक्रवारको पारणा। यह प्रोपधो-पवास यथार्थ प्रोपधोपवास नहीं कहलाएगा। विधिमें भी व्यतिक्रम हो जायगा, अतः तृतीयांश प्रमाण तिथिको स्वीकार कर व्रत करना उचित नहीं है।

सामान्यतः तृतीयांश मान तिथिका ग्रहण किया जाय तो ठीक है, पर उदयकालमें तृतीयांश प्रमाण मानना उचित नहीं जँचता है। इस प्रमाणमें अनेक दोष आते हैं, तथा व्रत करनेमें व्यतिक्रम भी होता है।

द्वादशी प्रमाण भी तिथिका मान काष्टासंधके कुछ आचार्य मानते हैं। उनका कथन है कि समस्त तिथिका षष्ठांश व्रतके लिए ग्राह्य है। यदि उदयकालमें कोई भी तिथि अपने प्रमाणके षष्ठांश भी हो तो उसे व्रतके लिए विहित माना गया है। दान, अध्ययन, उपवास और अनुष्ठान इन चारों कार्योंके लिए षष्ठांश प्रमाण तिथिके अतिरिक्त विधेय वस्तुओंका मान भी षष्ठांश ही कहा है। अर्थात् दान उपार्जित सम्पत्तिका षष्ठांश

देना चाहिए। अध्ययन समस्त अहोरात्र प्रमाणका पष्टांशमात्र समय अध्ययन—स्वाध्यायमें अवश्य लगाना चाहिए। उपवासके लिए भी विहित तिथिका समस्त तिथिके पष्टांश प्रमाण होना आवश्यक है। अनुष्ठानमें—विधान, प्रतिष्ठा, मन्त्रसिद्धि आदिमें संचित सम्पत्तिका पष्टांश खर्च करना चाहिए तथा अपने समयके छठवें भागको भुभोपयोगमें बिताना आवश्यक है। अतएव काष्ठासंधके आचार्योंने व्रतके लिए विहित तिथिका उदयकालमें दस घटी प्रमाण माननेके लिए जोर दिया है। इससे कम प्रमाण तिथिके होनेपर व्रत नहीं किये जा सकते हैं। यद्यपि स्पष्ट तिथिके प्रमाणानुसार दस घटीसे हीनाधिक भी प्रमाण व्रततिथिका हो सकता है, परन्तु ऐसी स्थिति बहुत ही कम स्थलोंमें आती है। उदाहरण—सोमवारको त्रयोदशी ४० घटी १५ पल है और मंगलवारको चतुर्दशी २४ घटी ३० पल है। अतः मंगलको चतुर्दशीका पष्टांश कितना हुआ, इसके लिए गणित क्रिया की— $(६००) - (४०१५) = १९४५$ । $(१९४५) \div (३४३०) = ५४१५$ समस्त चतुर्दशी, इसका पष्टांश $५४१५ \div ६ = ९०१$ मंगलवारको चतुर्दशी यदि उदयकालमें ९ घटी २ पल ३० विपल हो तो यह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य मानी जायगी।

षष्ठांश प्रमाण व्रतके लिए उदयकालमें तिथि

माननेवाले मतकी समीक्षा

काष्ठासंधका पष्टांश प्रमाण व्रतके लिए तिथि मानना तृतीयांश प्रमाण माने गये व्रतकी अपेक्षासे उत्तम है। यह व्यावहारिक दृष्टिसे भी ग्राह्य हो सकता है। इसमें व्रतविधियोंमें व्यतिक्रमकी गुंजाइश भी नहीं है। यद्यपि छः घटी प्रमाण व्रत तिथिको मान लेनेपर, सभी व्रत सम्बन्धी विधान निश्चित तिथियोंमें हो जाते हैं। किसी भी प्रकारकी बाधा पष्टांश तिथिमानमें उपस्थित नहीं होती है। परन्तु सब प्रकारसे ठीक होनेपर भी एक बाधा इस तिथिको स्वीकार कर लेनेपर आ ही जाती है और वह है मानाधिक्य होनेसे सर्वदा अंकित तिथियोंमें व्रत नहीं किया

जा सकेगा। एकाघवार ऐसा भी समय आ सकेगा, जब उदयकालीन तिथियोंको छोड़कर अस्तकालीन तिथियोंको ग्रहण करना पड़ेगा।

वास्तवमें व्रतका फल तभी मिलता है, जब सूर्योदयकालमें विधेय तिथि कम-से-कम दो घटी सामायिक, प्रतिक्रमण और आलोचनाके लिए तथा तीन घटी प्रमाण पूजाके लिए और एक घटी प्रमाण आत्मचिन्तनके लिए और उपवास सम्बन्धी नियम ग्रहण करनेके लिए रहे। मूल संधके आचार्योंने इसी कारण छः घटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माना है। दसघटी प्रमाण तिथिको व्रतके लिए ग्राह्य माननेमें सिर्फ दो युक्तियाँ हैं—प्रथम “पष्टांशमापि ग्राह्यं दानाध्ययनकर्मणि” यह आगम वाक्य है। इसके अनुसार दान-पूजा-पाठ आदिके लिए पष्टांश तिथि ग्रहण करनी चाहिए। दूसरी युक्ति जो कि अधिक बुद्धिसंगत प्रतीत होती है, वह है सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ, स्वाध्याय और आत्म-चिन्तनके लिए दो-दो घटी समय निर्धारित करना। व्रत करनेवाले श्रावकको व्रतके दिन प्रातःकाल दो घटी सामायिक, दो घटी प्रतिक्रमण, दो घटी पूजापाठ, दो घटी स्वाध्याय और दो घटी आत्मचिन्तन करना चाहिए। अतः जो विधेय तिथि व्रतके दिन कम-से-कम दस घटी नहीं है, उनमें धार्मिक क्रियाएँ प्रयत्न रूपसे सम्पन्न नहीं की जा सकती हैं। अतएव दस घटी या इससे अधिक प्रमाण तिथिको ही व्रतके लिए ग्राह्य मानना चाहिए।

छः घटी प्रमाण मूलसंध और पुत्र्यपादकी शिष्यपरम्परा व्रततिथि-का मान स्वीकार करती हैं। इसकी उपपत्ति दो प्रकारसे देखनेको मिलती है। कुछ लोग कहते हैं कि तिथिकी चार अवस्थाएँ होती हैं, बाल, किशोर, युवा और वृद्ध। उदयकालमें पाँच घटी प्रमाण तिथि बालसंज्ञक मानी जाती है, पाँच घटीके उपरान्त दस घटी तक किशोर संज्ञक और दस घटीसे लेकर बीस घटी तक युवा संज्ञक तथा अर्धशत तिथि वृद्ध संज्ञक कही गयी है। युवा संज्ञक तिथिके कुछ लोगोंने दो-भेद किये हैं—पूर्व युवा और उत्तर युवा। दिनमान पर्यन्त पूर्ण युवा

और दिनमात्रके पश्चात् उत्तर शुवासंज्ञक तिथियाँ व्रताधी गयी हैं। इस परिभाषाके प्रकाशमें देखनेपर अवगत होता है कि सूर्योदय कालमें पाँच घटी तकका समय बालसंज्ञक है, इसके पश्चात् किशोरसंज्ञक काल आता है। बालसंज्ञक समयमें तिथि निर्बल मानी जाती है तथा किशोरसंज्ञा में तिथि बली समझी जाती है। इसी कारण तिथिका प्रमाण छः घटी माना गया है। व्रत समयमें तिथि बालसंज्ञाको छोड़ किशोर अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। तिथिका समस्त सार और शक्ति किशोर अवस्थाको प्राप्त होता है। रसघटी प्रमाणतिथिका मान मान लेनेमें दूसरी शक्ति यह है कि तिथिका शक्तिशाली काल धर्मस्थान और आत्मचिन्तनमें विताने-का विधान चार घटी सूर्योदयके उपरान्त किया गया है, जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि तिथि-तत्त्वको अवगत कर ही आचार्योंने, यह विधान किया है।

व्रतके आदि-मध्य-अन्तमें तिथिहानि होनेपर

अश्रदेवका मत

आदिमध्यावसानेषु हीयते तिथिसत्तमा।

आदौ व्रतविधिः कार्यः प्रोक्तं श्रीमुनिपुङ्गवैः ॥१॥

अर्थ—अश्रदेवने अपने व्रतोद्योतन श्रावकाचारमें व्रतके प्रारम्भ, मध्य और अन्तमें तिथिके घट जानेपर व्यवस्था बतलायी है कि—यदि आदि, मध्य और अन्तमें नियत अवधिवाले व्रतोंकी तिथियोंमेंसे कोई तिथि घट जाय तो व्रत करनेवाले व्रती श्रावकोंको एक दिन पहलेसे व्रतको करना चाहिए। ऐसा श्रेष्ठ मुनियोंने कहा है।

विवेचन—यद्यपि तिथिहास और तिथि-शुद्धिके होनेपर किस व्रतको कबसे करना चाहिए तथा किस-किस व्रतको एक दिन अधिक करना चाहिए और किसको नहीं। तिथि-शुद्धि और तिथिहासका प्रभाव किन्-किन व्रतोंपर नहीं पड़ता है, यह भी पहले विस्तारसे लिखा जा चुका है। यहाँपर आचार्यने अश्रदेवका मत उद्धृत कर यह बतलानेका प्रयत्न

किया है कि जैनमान्यताओंमें नियत अवधिवाले कुछ व्रतोंके लिए चान्द्र तिथियाँ ग्रहण नहीं की गयी हैं, बल्कि सावन दिन मान कर ही व्रत किये जानेका विधान है। जो व्रत केवल एक दिनके लिए ही रखे जाते हैं, उनमें चान्द्रतिथिका ही विचार ग्रहण किया जाता है। योद्धा कारण व्रतों में भी चान्द्रमास और चान्द्र तिथिका ही ग्रहण किया गया है, अतः यह तिथिहास होनेपर भी व्रत एक दिन पहलेसे नहीं किया जाता है। मेघमाला व्रतको सावन दिनोंके अनुसार किया ही जाता है, इस व्रतके लिए चान्द्र तिथियोंका विधान भी नहीं है, प्रसूत सावन दिन ही ग्रहण किये गये हैं। इसी कारण यह किसी खास निश्चित तिथिको नहीं किया जाता है। यद्यपि कुछ आचार्योंने श्रावणमासकी कृष्ण प्रतिपदासे इस व्रतके करनेका आदेश दिया है, परन्तु यह सावन व्रत ही। इसी कारण इसमें सावन दिनोंका ग्रहण किया गया है। एकावली, द्विकावली व्रत भी सावन ही हैं, इनके करनेके लिए भी चान्द्र तिथियोंका कोई निश्चित विधान नहीं है। यद्यपि उक्त दोनों व्रतोंमें उपवास करनेकी तिथियाँ निश्चित हैं, फिर भी इन्हें चान्द्र दिन सम्बन्धी व्रत मानना उपयुक्त नहीं जँचता है। इन दोनों व्रतोंको सौर दिन सम्बन्धी व्रत माना जाय, तो अधिक उपयुक्त हो सकता है।

तिथि घटनेका प्रभाव सबसे अधिक दशलाक्षणी, रत्नत्रय और अष्टाहिका इन तीनों व्रतोंपर पड़ता है। क्योंकि ये तीनों व्रत निश्चित अवधिवाले होते हुए भी सौर और चान्द्र दोनों ही प्रकारके दिनोंसे सम्बन्ध रखते हैं। व्रतरम्भके दिन तिथिसंख्या यथार्थ होनेपर चान्द्र तिथि ग्रहण की जाती है। तात्पर्य यह है कि उदयकालमें कमसे कम छः घटी प्रमाण पञ्चमी तिथिके होनेपर दशलाक्षण व्रत आरम्भ किया जाता है, तथा समाप्ति चतुर्दशीको। यदि आदि, मध्य और अन्तमें तिथि-हानि हो तो एक दिन पहले अर्थात् चतुर्थीसे ही व्रत आरम्भ कर दिया जाता है। समाप्ति सर्वदा चतुर्दशीको ही की जाती है। अष्टाहिका व्रतोंमें भी यही बात है, यह व्रत भी आदि, मध्य और अन्तमें तिथिकी हानि

होनेपर एक दिन प पहलेसे प्रारम्भ कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको होती है। रत्नत्रय व्रतको भी तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे करना चाहिए। इन सब व्रतोंको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहलेसे करते हैं, किन्तु तिथिचुद्धि होनेपर एक दिन और अधिक करते हैं। व्रत तिथियोंके आदि, मध्य और अन्तमें तिथिकी चुद्धि हो जानेपर नियत अवधि तक ही व्रत नहीं किया जाता। बल्कि एक दिन अधिक व्रत किया जाता है।

निथिक्षय होनेपर गौतमादि सुनोद्वचरोंका मत

आदिमध्याह्नतमेदेषु विधिर्यदि विधीयते ।

तिथिद्वासे समुद्दिष्टं गौतमादिगणेश्वरैः ॥ २ ॥

अर्थ—आदि, मध्य और अन्तमें यदि तिथिक्षय हो तो गौतमादि सुनोद्वचरोंका कथन है कि एक दिन पहलेसे व्रत विधिको सम्पन्न करना चाहिए ।

विवेचन—जैनाचार्योंने तिथिहास और तिथिचुद्धि होनेपर नियत अवधिके व्रतोंको कितने दिनतक करना चाहिए, इसका विस्तार सहित विचार किया है। श्री गौतमगणधर तथा श्रुतज्ञानके पारगामी अन्य आचार्योंने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा है कि तिथिहास होनेपर भी व्रतको अपनी निश्चित दिनसंख्यातक करना चाहिए। मध्यमें अथवा आदि, अन्तमें तिथिक्षय हो तो एक दिन आगेसे व्रतका निश्चित दिनोत्तक पालन करना चाहिए। दशलक्षण, रत्नत्रय और अष्टाहिका ये तीनों व्रत अपनी निश्चित दिन संख्यातक किये जाते हैं। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमेंसे प्रत्येक दिन एक-एक धर्मके स्वरूपको मनन किया जाता है। तिथि-हासके कारण यदि एक दिन कम व्रत किया जाय तो एक धर्मके स्वरूपके मननका अभाव हो जायगा, जिससे समग्रव्रतका फल नहीं मिल सकेगा। जैनाचार्योंने तिथिहास होनेपर विभिन्न व्रतोंके लिए विभिन्न व्यवस्था बतलायी है।

कुन्दकुन्द, पूरुषपाद, जिनसेन, अश्वदेव, सिंहनन्दी, दामोदर आदि आचार्योंने दशलक्षण और अष्टाहिका व्रतके लिए मध्य, अन्त या आदिमें तिथिक्षय होनेपर एक मतसे स्वीकार किया है कि एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। गौतमगणधर आदि प्राचीन आचार्योंसे भी उक्त मतही समर्थित है। सिंहनन्दि आचार्यने तिथिक्षयकी व्यवस्था करते हुए कहा है कि प्रत्येक तिथिमें पाँच सुहृत् पाये जाते हैं—आनन्द, सिद्ध, काल, क्षय और अमृत। इन पाँच सुहृत्तोंमें तिथिक्षयकी अवस्थामें अर्थात् उदयकालमें तिथिके न मिलनेपर तिथिमें तीन सुहृत् रहते हैं—काल, आनन्द और अमृत। तिथिक्षयवाला दिन अशुभ इसीलिए माना गया है कि इसमें प्रातःकाल छः घटीतक काल सुहृत् रहता है, जो समस्त कार्योंको बिगाड़नेवाला होता है। उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिके होनेपर प्रथम आनन्द सुहृत् आता है, तथा छः घटीके उपरान्त बारह घटीतक सिद्ध सुहृत् रहता है जिससे इसमें किये गये सभी कार्य सफल होते हैं। व्रतोपवास और धर्मध्यानकी क्रियाएँ भी सफल होती हैं, क्योंकि आनन्द और सिद्धसुहृत् अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं। मूलसंधके आचार्योंने इसी कारण व्रततिथिका प्रमाण छःघटी माना है। काष्ठसंधमें व्रततिथिका प्रमाण समस्त तिथिका पष्ठांश माना गया है, वह भी इसी कारण युक्तिसंगत है कि सिद्ध सुहृत्तक काष्ठसंधके आचार्योंने तिथिको ग्रहण किया है। जो बीसघटी प्रमाण व्रततिथिका मान मानते हैं, उनका मत सदैव प्रतीत होता है, क्योंकि काल और क्षयसुहृत्, जो कि अपने नामके समान ही फल देते हैं, उनके द्वारा मानी हुई तिथिके अन्तमें विद्यमान रहते हैं। तिथिक्षयके दिन सबसे प्रथम काल सुहृत् आता है, जो यथानाम तथा गुणवाला होता हुआ अमंगलकारक होता है। परन्तु तिथिक्षयके दिन मध्याह्नके उपरान्त काल सुहृत् का प्रभाव घट जाता है और आनन्द तथा अमृत सुहृत् अपना फल देने लगते हैं। आचार्योंने एक दिन पहले जो व्रत करनेकी विधि बतलायी है, उसका अर्थ यह है कि पहले दिनवाली तिथिका

अन्तिम सुहृत्, जो कि अमृत संज्ञक कहा गया है, व्रत तिथिके दिनके लिए फलदायक हो जाता है।

व्रततिथिकी व्यवस्था

अवाप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं सुहृत्त्रयवाहिनीं च ।

धर्मेषु कार्येषु वदन्ति पूर्णां तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीश्वराः ॥

व्याख्या :—यां तिथिम् अवाप्य प्राप्य सूर्याऽस्तं याति, अस्तमुपगच्छति । कथम्भूतां तिथिं प्रातर्मुहूर्त्तत्रयव्यापिनीम् ; चकारात् सूत्रसंघरताः व्रतज्ञानधरा मुनीश्वराः, उदयव्यापिनीमपि तिथिं गृह्णन्ति । यथा पूर्वमुदयकालव्यापिनी तिथिर्ग्रहीता, चकारात् अस्तकालव्यापिन्याः तिथेरपि ग्रहणं भविष्यति तथैवात्रापि अवधेयम् । तां पूर्वोक्तां तिथिम् अखिलेषु धर्मेषु कार्येषु गौतमादिगणेश्वराः पूर्णं वदन्ति ॥

अर्थ—प्रातःकालमें तीन सुहृत् रहनेवाली जिस तिथिको प्रातःकर सूर्य अस्त होता है, धर्मादि कार्योंमें वह तिथि पूर्ण मानी जाती है; इस प्रकारका कथन व्रत धारण करनेवाले मुनीश्वरोंका है। इस श्लोकमें 'च' संबद्ध आया है, जिसका अर्थ यह है कि सूर्योदयके पूर्व तीन सुहृत् रहनेवाली तिथि भी नैशिक व्रतोंके लिए ग्राह्य है। तात्पर्य यह है कि इस श्लोकके अनुसार व्रत तिथिका ज्ञान दोनों प्रकारसे ग्रहण किया गया है—उदय और अस्तकालमें रहनेवाली तिथिके अनुसार। उदयकालके उपरान्त कम-से-कम तीन सुहृत्—५ घटी ३६ पल प्रमाण विधेय तिथिके रहने पर ही व्रत ग्राह्य माना जाता है। इसी प्रकार व्रतवाली तिथिके सूर्योदयके पहले तक रहनेपर भी नैशिक व्रतोंके लिए तिथि ग्राह्य मान ली गयी है।

विवेचन—व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए इस श्लोकमें तिथिका विधान किया गया है। यद्यपि सामान्यतः व्रतके लिए कितनी तिथि ग्राह्य होती है, इसका विचार पहले खूब किया जा चुका है। इस समय व्रत ग्रहण और उद्यापनके लिए कितनी तिथि ग्रहण करनी चाहिये,

अचार्य विधान बतलाते हैं। व्रत ग्रहण और व्रतोद्यापनके लिए द्वैवसिक और नैशिक व्रतोंके निमित्त पृथक् पृथक् तिथिका विधान बतलाते हैं। प्रथम नियम तो यह है कि सूर्योदय कालके उपरान्त ढाई घण्टे तक व्रतकी विधेय तिथि हो तो व्रतका प्रारम्भ और उद्यापन करना चाहिये। किन्तु यह नियम द्वैवसिक व्रतोंके लिए ही है, नैशिक व्रतोंके लिए नहीं। नैशिक व्रतोंका यह है कि सूर्योदयके पूर्व जो तिथि ढाई घण्टे रही हो, वही ग्राह्य हो सकती है। उदाहरण—भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी बुधवारको प्रातःकाल १०।१५ घट्यादि है और भाद्रपद चतुर्थी मंगलवारको १८।१० घट्यादि है। अब विचारणीय यह है कि द्वैवसिक व्रतोंके लिए किस दिन पञ्चमी मानी जायगी और नैशिक व्रतोंके लिए किस दिन। बुधवारको १०।१५ घट्यादि मान पञ्चमीका है, इस दिन सूर्य पञ्चमीके इस मानके साथ अस्त होता है अतः द्वैवसिक व्रतोंके लिए बुधवारको ही पञ्चमी ग्राह्य होगी।

नैशिक व्रतोंके लिए मंगलवारको पंचमी ग्राह्य नहीं हो सकती है। क्योंकि मंगलवारको उदयके पूर्व पञ्चमी नहीं रहती है; किन्तु सोमवारको उदयके पश्चात् और मंगलवारको उदयके पूर्व ही पञ्चमी रहती है। अतः नैशिक व्रतोंके लिए पञ्चमी सोमवारकी ग्रहण की जायगी। मूलसंघके आचार्योंने उदयमें रहनेवाली छःघटी प्रमाण या इससे अधिक तिथिको द्वैवसिक और नैशिक दोनों ही प्रकारके व्रतोंके लिए ग्राह्य मान लिया है। इस प्रकारसे एक ही प्रकारका तिथिमान स्वीकार कर लेनेसे पूर्वापर विरोध नहीं आता है तथा तिथि भी व्रतके लिए सब प्रकारसे ग्राह्य मान ली जाती है।

तथा चोक्तं पृष्ठांशोपरि कर्णामृतपुराणे सप्तमस्कन्धे-

“यथोक्तविधिना तिथ्युदये व्रतविधिं चरेत्” ।

अखण्डवर्त्तिमार्त्तण्डः यद्यखण्डा तिथिर्भवेत् ॥

व्रतप्रारम्भणं तस्यामानस्तशुक्रशुक्रयुत् ॥

अर्थ—कर्णामृतपुराणके सप्तम स्कन्धमें भी कहा गया है कि पृष्ठांश

मात्र तिथिका प्रमाण व्रतके लिए मानना चाहिए। व्रतकी तिथिके दिन कहीं हुई व्रतविधिके अनुसार व्रतका आचरण करना चाहिए।

जिस दिन सूर्योदयकालमें तिथि पञ्चांगमात्र हो अथवा समस्त दिन तिथि रहे, उस दिन वह तिथि अखण्डा—सकला कहलाती है। इस सकला तिथिको गुरु और शुक्रके उदय रहते हुए व्रतको ग्रहण करनेकी क्रिया करनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि व्रत ग्रहण करने और उद्यापन करनेके समय गुरु और शुक्रका अस्त रहना उचित नहीं है। इन दोनों ग्रहोंके उदित रहनेपर ही व्रतोंका ग्रहण और उद्यापन किया जाता है।

विवेचन—अपनी-अपनी गतिसे चलनेवाले ग्रह जब सूर्यके निकट पहुँचते हैं, तो लोगोंको दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, इसीका नाम ग्रहोंका अस्त होना कहलाता है। जब वे ही ग्रह अपनी-अपनी गतिसे चलते हुए सूर्यसे दूर निकल जाते हैं, तो लोगोंको दिखालायी पड़ने लगते हैं, यही ग्रहोंका उदय होना कहलाता है। वास्तवमें ग्रह न उदय होते हैं और न अस्त। केवल सूर्यके प्रकाशसे आच्छादित हो जाते हैं तथा सूर्यसे आगे-पीछे होनेपर दृश्य होते हैं।

मंगल, गुरु और शनि सूर्यसे अल्प गतिवाले हैं, अतः अस्त होनेपर सूर्य ही इनसे आगे निकल जाता है। बुध सूर्यसे तेज गतिवाला है, अतः यह अस्त होनेपर सूर्यसे आगे निकल जाता है। यद्यपि मध्यम रवि, शुक्र और बुध तुल्य ही होते हैं, फिर भी स्पष्ट रवि और स्पष्ट बुध शीघ्र फलान्तरके तुल्य आगे-पीछे रहते हैं। जब दोनों एकत्रित हो जाते हैं, तो बुध अस्त माना जाता है। बुधके पूर्व दिशामें अस्त होनेके बाद ३२ दिनोंमें पश्चिममें उदय, पश्चिमोदयसे ३२ दिनोंमें वक्रो, वक्र होनेसे ३ दिनोंमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे १६ दिनोंमें पूर्व दिशामें उदय, उदयसे ३ दिनोंमें मार्ग, मार्गसे ३२ दिनोंमें पूर्वमें ही अस्त होता है। शुक्रका पूर्वास्तसे २ मासमें पश्चिमोदय, उसके बाद ८ मासमें वक्र, वक्रसे २२।३० दिनोंमें पश्चिममें अस्त, अस्तसे साढ़े सात दिनोंमें पूर्वदिशामें उदय, उदयसे पौनमासमें मार्ग, मार्गसे ८ महीनेमें फिर पूर्वमें अस्त होता है।

मंगलका अस्तके बाद ४ मासमें उदय, उदयसे १० मासमें वक्र, वक्रसे २ मासमें मार्ग, मार्गसे १० मासमें फिर अस्त होता है। बृहस्पतिका अस्तसे १ मासमें उदय, उदयसे सवाचार मासमें वक्र, वक्रसे ४ मासमें मार्ग, मार्गसे सवाचार मासमें अस्त होता है। शनिके अस्तसे सवामासमें उदय, उदयसे साढ़ेतीन मासमें वक्र, वक्रसे साढ़े चार मासमें मार्ग, मार्गसे साढ़े तीनमासमें फिर अस्त होता है। इस प्रकार उदय-अस्तकी परिपाटी चलती रहती है। आचार्यने बताया है कि शुक्र और गुरुके अस्त होनेपर उद्यापन और व्रत ग्रहण करना वर्ज्य है। दशलक्षण, पौड्याकारण, रत्नत्रय, मेरुपंक्ति, एकावली, द्विकावली, मुक्त-वली आदि व्रतोंके ग्रहण करनेके लिए यह आवश्यक है कि गुरु और शुक्र उदित अवस्थामें रहें। इनके अस्त रहनेपर शुभ-कृत्य करना वर्जित है।

गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर प्रतिष्ठा, मन्दिर-निर्माण, विधान, विवाह, यज्ञोपवीत आदि कार्य भी नहीं किये जाते हैं। गणितसे शुक्रास्त और गुरु अस्तका प्रमाण केन्द्रांश बनाकर निकाला जाता है। इन दोनों ग्रहोंके अस्त होनेपर शुभ कृत्य वर्ज्य माने गये हैं। शेष ग्रहोंके अस्त-कालमें शुभ कृत्य सम्पन्न किये जाते हैं। आरम्भसिद्धि नामक ग्रन्थमें उदयप्रभसुरिने शुक्र और गुरुके उदय होनेपर भी उनका बाल्यकाल माना है। इस बाल्यकालमें भी शुभ कृत्योंके करनेका निषेध किया गया है। अस्त होनेके पूर्व इनकी वृद्धावस्थाका काल भी माना गया है, जिस कालमें सभी कृत्य करना वर्ज्य माना है। “गुरुशुक्रयोः शुभयोः पितृशोः रुद्रेऽस्ते च बाल्यं वार्द्ध्यं च सप्ताहमेवाहुः। अन्योः बाल्ये वार्द्ध्ये च सति शुभकार्यं न करणीयम्” अर्थात् उदय हो जानेपर भी गुरु और शुक्रका बाल्यकाल एक सप्ताह माना गया है। इस कालमें शुभ कृत्य करनेका निषेध किया गया है।

कुल आचार्योंने शुक्रका पूर्व दिशामें पाँच दिन तक वार्द्ध्य काल^१ १. जीर्णः शुक्रोऽहोनि पञ्च प्रतीच्यां प्राच्यां बालजीष्महानीह हेयः। त्रिपान्येव तांनि दिव्येपरीत्ये, पक्षं जीवोऽन्ये तु सप्ताहमाहुः ॥

—आरम्भसि० पृ० २००

माना है तथा तीन दिन कालकाल रक्षोकार किया है। ये दोनों ही काल शुभ कार्योंके लिए व्याज्य है। कुछ लोग कहते हैं कि पूर्व में उदय होनेपर शुक्रका कालकाल तीन दिन और पश्चिम में उदय होनेपर नौ दिन व्याज्य-काल रहता है। पूर्व में शुक्र अथवा होनेपर पन्द्रह दिन पार्थक्य काल और पश्चिम में अथवा होनेपर पाँच दिन पार्थक्यकाल होता है। गुरुका भी तीन दिन कालकाल और पाँच दिन पार्थक्य काल होता है। बाल्य और बाल्यर काल में शुभ कार्योंका करना व्याज्य माना है।

ज्योतिषमें प्रायः शुभ कार्योंके लिए शुक्र और गुरुका बल, चन्द्रशुद्धि और सूर्य शुद्धि ग्रहण की जाती है। इन ग्रहोंके बलके विना शुभ कार्योंका करना व्याज्य माना है। चन्द्रशुद्धिसे तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वारकी शुद्धि अभिप्रेत है तथा विराट् रूपसे चन्द्र राशिका विचार कर उसके शुभाशुभाशयके अनुसार फलको ग्रहण करना है। चन्द्र शुद्धि प्रायः कार्योंकी होती है। विषयादिकी शुद्धि लेना तथा उसके बल-बलत्वका विचार करना एवं सूक्ष्म विचारके लिए सुहृत् मानके आधार-पर शुभाशुभाशयको ग्रहण करना चन्द्र शुद्धिसे अभिप्रेत है। यात्रा, विवाह, उपनयन, प्रतिष्ठा, गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि समस्त कार्योंके लिए चन्द्र-शुद्धिका विचार करना आवश्यक है।

सूर्य शुद्धि भी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण माझलिक कार्योंमें ग्रहण की गयी है। यद्यपि चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्यका स्थान महत्त्वपूर्ण है फिर भी छोटे-बड़े सभी कार्योंमें इसके अनुकूलत्व और प्रतिकूलत्वका विचार नहीं किया गया है। सूर्य-शुद्धिमें सूर्यकी राशिका शुभाशुभाव तथा चान्द्र-मास और चान्द्रतिथिपर पड़नेवाले सूर्यके प्रभावका विचार किया जाता है।

गुरु और शुक्रकी शुद्धि तो देखी ही जाती है, पर विशेषतः इनके बलबलत्वका विचार किया जाता है। शुक्रकी अपेक्षा गुरुकी शुद्धि अधिक माझलिक कार्योंके लिए ग्रहण की गयी है। जब तक गुरु अनुकूल नहीं होता है तब तक विवाह, प्रतिष्ठा, उपनयन एवं व्रत ग्रहण आदि कार्य

समाप्त नहीं किये जाते हैं, अतः इनके लिए गुरु और शुक्रके अन्वेषण विचार करना आवश्यक है।

प्रतिपदा और द्वितीया तिथिके प्रत्यक्षी व्यवस्था

विशेषः पञ्चांगोऽपि प्रत्यक्षरतः साधारणतः, प्रत्यक्षशुद्धयः सप्तमसूर्ये विधान यमः। विद्वांसोऽपि पूर्ण करानिकरविषयसन्निभिर, द्वितीयेननुः सर्वैः कनकनिचयागोऽपि नमिमतः॥

अर्थ—व्रत करनेवाले नक्षत्राभूत आचमको सर्वदा इनकी शुद्धिके लिए उदय कालमें रहनेवाली पञ्चांग प्रमाण तिथिको ग्रहण करना चाहिए। अपनी किरणोंके समुदायसे अन्वेषणको दूर करनेवाले पूर्ण चन्द्रमाकी छोड़ अर्थात् प्रतिपदा तिथिके दिन तथा द्वितीयाके दिन पूर्वोदय कालमें रहनेवाली पञ्चांग प्रमाण तिथिको ही प्रत्यक्षे लिए ग्रहण करना चाहिए।

विशेष—काष्ठसंघके आचार्योंने पूर्णिमा, प्रतिपदा एवं द्वितीया तिथिमें होनेवाले व्रतोंकी व्यवस्था करते हुए बताया है कि समस्त तिथि-का पञ्चांगानाम् व्रतके लिए प्रामाण्य है। इसकी उपपत्ति बलवत्ते हुए उन्होंने कहा है कि तीस सुहृत्तोंका एक दिन—अष्टारात्र होता है। इन तीस सुहृत्तोंमें ये पन्द्रह सुहृत्त दिनमें और पन्द्रह सुहृत्त रातमें होते हैं। रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैशदेव, अभिजित्, रोहिण, बल, विजय, नैर्ऋत, वरुण, अर्यमत् और भाग्य ये सुहृत्त प्रत्येक तिथिमें द्विको रहते हैं।

रात्रिमें सावित्र, ध्रुव, दात्रक, यम, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त,

१—रौद्रः श्वेतश्च मैत्रश्च ततः सारभटोऽपि च।

दैत्यो वैरोचनश्चान्यो वैशदेवोऽभिजितश्च॥

रोहिणो बलनामा च विजयो नैर्ऋतोऽपि च।

वरुणश्चार्यमा च स्युर्भाग्यः पञ्चदशो दिने॥

२—सावित्रो ध्रुवसंज्ञश्च दात्रको यम एव च।

वायुर्हुताशनो भानुर्वैजयन्तोऽष्टमो निधिः।

सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विक्षोभ, योग्य, पुण्यदन्त, सुगन्धर्व और अरण ये पन्द्रह सुहृत् रहते हैं। प्रत्येक सुहृत् दोघटी प्रमाण कालतक रहता है। कुछ आचार्य दिनमें पाँच सुहृत् ही मानते हैं तथा कुछ छः सुहृत्। दिनके पन्द्रह सुहृत्में रौद्र, इवेत, मैत्र, सारभट और दैत्य आदिका गुण और स्वभाव बतलाते हुए कहा गया है कि प्रथम रौद्र सुहृत्, जो कि उदयकालमें दोघटीतक रहता है, स्वर और तीक्ष्ण कार्योंके लिए शुभ होता है। इस सुहृत्में किसी विलक्षण असाध्य और भयंकर कार्यको आरम्भ करना चाहिए। इस सुहृत्का आदि भाग शुभ, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग निष्ठुर होता है। इस सुहृत्का स्वभाव उग्र, कार्य करनेमें प्रवीण, साहसी और वंचक बताया गया है। दूसरे इवेत सुहृत्का आरम्भ सूर्योदयके दो घटी—४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह भी दो घटी तक अपना प्रभाव दिखलाता है। इसका आदि भाग साधारण, शक्तिहीन, पर मांगलिक कार्योंके लिए शुभ, नृत्य गायनमें प्रवीण, आमोद-प्रमोदको रुचिकर समझनेवाला एवं आह्लादकारी होता है। मध्यभाग इस सुहृत्का शक्तिशाली, कठोर कार्य करनेमें समर्थ, दृढ़ स्वभाववाला, श्रमशील, दृढ़ अध्यवसायी एवं प्रेमिल स्वभावका होता है। इस भागमें किये गये सभी प्रकारके कार्य सफल होते हैं। अन्तभाग निष्ठुर है।

तीसरा सुहृत् सूर्योदयके एक घंटा ३६ मिनट पश्चात् आरम्भ होता है। यह भी दो घटी तक रहता है। यह सुहृत् विशेष रूपसे पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशीको अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाता है। इसका स्वभाव मृदु, स्नेहशील, कर्तव्यपरायण और धर्मात्मा माना है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदि भाग शुभ, सिद्धिदायक, मंगलकारक एवं कल्याणप्रद होता है। इसमें जिस कार्यका

सिद्धार्थः सिद्धसेनश्च विक्षोभो योग्य एव च।

पुण्यदन्तः सुगन्धर्वो मुहूर्त्तोऽप्योऽरुणो मतः ॥

—धवला टीका जि० ४ पु० ३१८—१९

आरम्भ किया जाता है, वह कार्य अवश्य सफल होता है। तथैव, और कार्य करनेमें रुचि विशेषतः जाग्रत होती है। विघ्न बाधाएँ उत्पन्न नहीं होती।

तीसरे सुहृत्का मध्यभाग सबल, विचारक, अतुरागी और परिश्रमसे भागनेवाला होता है। इसका स्वभाव उदासीन माना है। यद्यपि इसमें आरम्भ किये जानेवाले कार्योंमें नाना प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कार्य अधूरा ही रह जायगा, फिर भी काम अन्ततोगत्वा पूरा हो ही जाता है। इस भागका महत्त्व अध्ययन, अध्यापन एवं आराधनके लिए अधिक है। स्वाध्याय आरम्भ करनेके लिए यह भाग श्रेष्ठ माना गया है। जो व्यक्ति गणितसे तीसरे सुहृत्के मध्यभागको निकालकर उसी समयमें विद्यारम्भ या अक्षरारम्भ करते हैं, वे विद्वान् बन जाते हैं। यों तो इस समस्त सुहृत्में सरस्वतीका निवास रहता है, पर विशेष रूपसे इस भागमें सरस्वतीका निवास है। तीसरे सुहृत्का अन्तिम भाग व्यापार, अध्यवसाय, शिल्प आदि कार्योंके लिए प्रशस्त माना है। इस भागमें किये जानेवाले कार्य कठोर श्रमसे पूरे होते हैं। इस भागका स्वभाव मिलनसार, लोकव्यवहारज्ञ और लोभी माना गया है। इसी कारण व्यापार और बड़े-बड़े व्यवसायोंके प्रारम्भ करनेके लिए इसे प्रशस्त बतलाया है। यह सुहृत् स्थिरसंज्ञक भी है, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, कूपारम्भ, जिनालयारम्भ, व्रतोपनयन आदि कार्य इस सुहृत्में विधेय माने गये हैं।

चौथा सारभट नामका सुहृत् सूर्योदयके दो घण्टा ३६ मिनटके पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका समय भी दो घटी अर्थात् ४८ मिनट है। इस सुहृत्की विशेषता यह है कि प्रारम्भमें यह प्रमादी, उत्तरकालमें श्रमशील, विचारक और स्नेही होता है। इसके भी तीन भाग हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदिभाग शक्तिशाली, अध्यवसायी, कार्यकुशल और लोकप्रिय होता है। इस भागमें कार्य करनेपर कार्य सफल होता है, किन्तु अध्यवसाय और परिश्रमकी आवश्यकता पड़ती

है। पूजा-पाठ, धार्मिक अनुष्ठान एवं शान्ति-पौष्टिक कार्योंके लिए यह ग्राह्य माना गया है। इसमें किये जाने पर उक्त कार्य प्रायः सफल होते हैं। यद्यपि कार्योंके अन्त होने पर विघ्न-वाधाएँ आती हुई दिख-लाई पड़ती हैं, परन्तु अव्यवसाय-द्वारा कार्य सिद्ध होनेमें विलम्ब नहीं लगता है।

चौथे सुहृत्तंका द्वितीय भाग भी आनन्द संज्ञक है। इसके ५ पलोंमें अमृत रहता है। जो व्यक्ति इसके अमृत भागमें कार्य करता है या अपने आत्मिक उत्थानमें आगे बढ़ता है, वह निश्चय ही सफलता प्राप्त करता है। इसका तीसरा भाग, जिसे अन्त भाग कहा जाता है, साधारण है। इसमें कार्य करनेपर कार्योंमें विशेष सफलता नहीं मिलती है। अधिक परिश्रम करनेपर भी फल अल्प मिलता है। जो व्यक्ति इस भागमें माझलिक कार्य आरम्भ करते हैं, उनके वे कार्य प्रायः असफल हो रहते हैं।

पाँचवाँ दैत्य नामका सुहृत्तं है जो कि सूर्योदयके तीन घण्टा १२ मिनट पश्चात् प्रारम्भ होता है। यह दक्षिणाली, प्रमादी, क्रूर स्वभाव-वाला और निद्रालु होता है। इसके आदि भागमें कार्य आरम्भ करनेपर विलम्बसे होता है, मध्य भागमें कार्योंमें नागा प्रकारके विघ्न आते हैं। चंचलता आदि रहती है तथा उग्र प्रकृतिके कारण झगड़े-झंझट तथा अनेक प्रकारसे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अन्त भाग अशुभ होते हुए भी शुभ फलदायक है। इसमें श्रमसाध्य कार्योंको प्रारम्भ करना हितकारी माना गया है। जो व्यक्ति खर और तीक्ष्ण कार्योंको अधवा उपयोगी कलाओंके कार्योंको आरम्भ करता है, उसे इन कार्योंमें बहुत सफलता मिलती है।

छठवाँ वैरोचन सुहृत्तं सूर्योदयके चार घण्टेके उपरान्त आरम्भ होता है। इस सुहृत्तंका स्वभाव अभिमाना, महत्वाकांक्षी और प्रगतिशील माना गया है। इसका आदिभाग सिद्धिदायक, मध्यभाग हानिप्रद और अन्त भाग सफलदायक होता है। इस सुहृत्तंमें दान, अध्ययन, पूजा-

पाठके कार्य विशेष रूपसे सफल होते हैं। जो व्यक्ति एकप्रवृत्तिसे इस सुहृत्तंमें भगवान्का भजन, पूजन, स्मरण और गुणगुवाद करता है, वह अपने लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। इस सुहृत्तंका उपयोग प्रधान रूपसे धार्मिक कृत्योंमें करना चाहिये।

सातवाँ सुहृत्तं वैश्वदेव नामका है, इसका प्रारम्भ सूर्योदयके चार घंटा ४८ मिनटके उपरान्त होता है। यह सुहृत्तं विशेष शुभ माना जाता है, परन्तु कार्य करनेमें सफलता सूचक नहीं है। इस सुहृत्तंका आदिभाग निष्ठुर, मध्य भाग साधारण और अन्त भाग श्रेष्ठ होता है। आठवाँ अभिजित् नामका सुहृत्तं है। यह सर्वसिद्धिदायक माना गया है। इसका प्रारम्भ सूर्योदयके ५ घंटा ३६ मिनटके उपरान्त माना जाता है। परन्तु गणितसे इसका साधन निम्न प्रकारसे किया जाता है—

रविवारको २० अंगुल लम्बी सीधी लकड़ी, सोमवारको १६ अंगुल लम्बी लकड़ी, मंगलको १५ अंगुल लम्बी, बुधवारको १४ अंगुल लम्बी, गुरुवारको १३ अंगुल लम्बी, शुक्र और शनिवारको १२ अंगुल लम्बी चिकनी तथा सीधी लकड़ीको पृथ्वीमें खड़ी करे, जिस समय उस लकड़ी-की छाया लकड़ीके मूलमें लगे उसी समय अभिजित् सुहृत्तंका प्रारम्भ होता है। इसका आधा भाग अर्थात् एक घटी प्रमाण काल समस्त कार्योंमें अमृतपूर्व सफलता देनेवाला होता है। अभिजित् रविवार, सोम-वार आदिको, भिन्न-भिन्न समयमें पड़ता है। इसका कार्य-साफल्यके लिए विशेष उपयोग है। प्रायः अभिजित् ठीक दोपहरको आता है, यही सामयिक करनेका समय है। आत्मचिन्तन करनेके लिए अभिजित् सुहृत्तं का विधान ज्योतिष-ग्रन्थोंमें अधिक उपलब्ध होता है।

नौवाँ सुहृत्तं रोहण नामका है, इसका स्वभाव गम्भीर, उदासीन और विचारक है। यह समस्त तिथिका शासक माना गया है। यद्यपि पाँचवाँ दैत्य सुहृत्तं तिथिका अनुशासक होता है, परन्तु कुछ आचार्योंने इसी सुहृत्तंको तिथिका प्रधान अंश माना है। इस सुहृत्तंमें कार्य करने-

पर कार्य सफल होता है। विघ्न बाधाएँ भी नाश प्रकार की आती हैं, फिर भी किसी प्रकारसे यह सफलता दिलानेवाला होता है। इसका आदिभाग मध्यम, मध्य भाग श्रेष्ठ और अन्तिम भाग निकृष्ट होता है। दसवाँ चलनामक मुहूर्त है, यह प्रकृतिसे निर्बुद्धि तथा सहयोगसे बुद्धिमान् माना जाता है। इसका आदि भाग श्रेष्ठ, मध्यभाग साधारण और अन्त भाग उत्तम होता है। ग्यारहवाँ विजय नामक मुहूर्त है, यह समस्त कार्योंमें अपने नामके अनुसार विजय देता है। बारहवाँ नैर्ऋत नामक मुहूर्त है, जो सभी कार्योंके लिए साधारण होता है। तेरहवाँ वरुण नामक मुहूर्त है, जिसमें कार्य करनेसे धन व्यय तथा मानसिक परेशानी होती है। चौदहवाँ अर्यमन् नामक मुहूर्त है, यह सिद्धिदायक होता है तथा पन्द्रहवाँ भाग्य नामक मुहूर्त है, जिसका अर्थ भाग शुभ और अर्थभाग अशुभ माना गया है।

इस प्रकार दिनेके पन्द्रह मुहूर्तोंमेंसे पञ्चांश प्रभाव तिथिमें पाँच मुहूर्त आते हैं। प्रातःकालमें रौद्र, इवेत, मैत्र, सारभट और दैत्य ये पाँच मुहूर्त मध्यम मानसे सूर्योदयसे दस घटी समय तक रहते हैं। दैत्य मुहूर्त तिथिका शासक होता है, तथा पाँचों मुहूर्त दिनेके तृतीयांश भाग में शुक होते हैं, अतः कम-से-कम तिथिका मात दस घटी या पञ्चांशमात्र मानना आवश्यक है, क्योंकि शासक मुहूर्तके आये विना तिथि अपना प्रभाव ही नहीं दिखा सकता है। शासक मुहूर्त पञ्चांश प्रमाण तिथिके मानने पर ही आता है, अतः दस घटीसे न्यून तिथिका प्रमाण व्रतके लिए ग्राह्य नहीं किया जा सकता। व्रतविधिमें जाप, सामाधिक, पूजापाठ, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ व्रतक्री तिथिमें दैत्यमुहूर्त तक होनी चाहिए। क्योंकि समस्त तिथि दैत्य मुहूर्तके अनुसार ही अपना कार्य करती हैं। जिस व्रत तिथिमें पाँचवाँ मुहूर्त नहीं पड़ता है, वह तिथि व्रतके लिए ग्राह्य नहीं मानी जा सकती। आचार्य महाराजने इसी कारण तिथिके पञ्चांशके ग्रहण करनेपर जोर दिया है।

तिथि-हास होने पर तृतीया व्रतका विधान

तिथिर्नष्टकलतोऽथ तृतीया व्रतमुच्यते—
वर्णाश्रमेतराणां च युक्तं तृतीयाह्रासकम्।
इत्यनन्तव्रताद्येति कृष्णसेनेन चोदितम्॥

अर्थ—तिथि हास होनेपर अथवा तिथिका घट्यात्मक मान कम होनेपर तृतीया व्रतका नियम कहते हैं—

वर्णाश्रमधर्मको न माननेवाले—श्रमण संस्कृतिके प्रतिष्ठापक तृतीया तिथिकी हानि होने पर द्वितीयाको व्रत करनेका विधान करते हैं। अनन्त व्रतका वर्णन करते हुए कृष्णसेनेने इसका वर्णन किया है। तात्पर्य यह है कि मूलसंघके आचार्योंके मतमें तृतीया तिथिके हास होनेपर अथवा तृतीयाका घट्यादि प्रमाण छः घटीसे अल्प होने पर द्वितीयाको ही व्रत कर लेना चाहिए।

विचेचन—ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रतिपदा तिथि पूर्वाह्नव्यापिनी व्रतके लिए ग्रहण की जाती है। द्वितीया तिथि भी शुक्लपक्षमें पूर्वाह्न व्यापिनी और कृष्णपक्षमें सर्वदिन व्यापिनी ली गयी है। “पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा” अर्थात् जो द्वितीया पहले दिन न होकर अगले दिन वर्तमान हो तथा उदयकालमें कम-से-कम तीन मुहूर्त्त—६ घटी ३६ पल हो, वही व्रतके लिए ग्रहण करने योग्य है। द्वितीया तिथिको व्रतके लिए जैनाचार्योंने छः घटी प्रमाण माना है। जो तिथि इस प्रमाणसे न्यून होगी, वह व्रतके लिए ग्राह्य नहीं हो सकती है। सर्वदिन व्यापिनी तिथिकी परिभाषा भी यही की गयी है कि समस्त तिथिका पञ्चांश प्रमाण जो तिथि उदयकालमें रहे, वह सर्वादिनव्यापिनी कहलाती है।

तृतीया तिथिको वैदिकधर्ममें व्रतके लिए परान्वित ग्रहण किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि एक घटी प्रमाण या इससे अल्प

१—एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी।

अमावास्या तृतीया च ता उपोषाः परान्विताः ॥

—नि० सि० पु० २३

रहने पर भी तृतीया तिथि परानिवृत हो ही जाती है, अतः प्रातःकाल एकाध घटी तिथिके रहने पर भी व्रतके लिए उसका ग्रहण किया गया है। इस प्रकार वैदिक धर्ममें प्रत्येक तिथिको व्रतके लिए हीनाधिक मानके रूपमें ग्रहण नहीं किया गया है। प्रत्येक तिथिका मान व्रत-कालके लिए अलग अलग बतलाया है। जैनाचार्योंने इसी सिद्धान्तका खण्डन किया है और सर्वसम्मतिसे व्रततिथिका मान छः घटी अथवा समस्त तिथिकां पध्नांश माना है। आचार्यने उपर्युक्त श्लोकोंमें प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया तिथिके नियम निर्धारित करते हुए यही बताया है कि जो तिथि छः घटी प्रमाण नहीं है, वह चाहे पूर्वविद्ध हो, चाहे पर-विद्ध; व्रतके लिए ग्रहण नहीं की जा सकती है। निर्णयसिन्धुमें प्रत्येक तिथिकी जो अलग-अलग व्यवस्था बतलाई है, वह युक्तिसंगत नहीं है। सामान्य रूपसे प्रत्येक व्रतके लिए छः घटी या समस्त तिथिका पध्नांश ग्रहण करना चाहिए।

व्रतोंके भेद, निरवधि व्रतोंके नाम तथा

कवलचान्द्रायणको परिभाषा

व्रतानि कति भेदानि, इति चेदुच्यते—

सावधीनि, निरवधीनि, दैवासिकानि, नैशिकानि, मासावधि-कानि, वात्सरकानि, काम्यानि, अकाम्यानि, उत्तमार्थानि, इति नवधा भवन्ति। निरवधिब्रतानि कवलचान्द्रायणतपोऽञ्जलिजि-नमुखावलोफनमुकावलीद्विकावल्येककवलवृद्ध्याहारब्रतानि। अमावास्यायाः प्रोपधं पुनः शुक्लपक्षे तु तन्मूतप एककवलं यावत् एव निरवधिकवलचान्द्रायणस्य व्रतं भवति, न तिथ्या-दिको विधिर्भवति।

अर्थ—व्रत कितने प्रकारके होते हैं? आचार्य इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। व्रतके नौ भेद हैं—सावधि, निरवधि, दैवासिक, नैशिक, मासावधि, वर्षावधि, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ। निरवधि व्रतोंमें

कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोफन, मुकावली, द्विकावली, एकावली, मेरुपंक्ति आदि। अमावस्याका प्रोपधोपवास कर शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया आदि तिथियोंमें एक-एक कवलकी वृद्धि करते हुए पूर्णिमाको १५ प्रास आहार ग्रहण करे। पश्चात् कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक कवल कम करते हुए चतुर्दशीको एक प्रास आहार ग्रहण करे। अमावास्याको पारणा करे। इसमें तिथिकी विधि नहीं की जाती है। एकाध तिथिके घटने-बढ़नेपर दिनसंख्याकी अथिका इसमें विचार नहीं किया जाता है।

विवेचन—जिन व्रतोंके आरम्भ और समाप्त करनेकी तिथि निश्चित रहती है तथा दिनसंख्या भी निर्धारित रहती है, वे व्रत सावधि व्रत कहलाते हैं। दशलक्षण, अष्टाह्निका, रत्नत्रय, षोडशकारण आदि व्रत सावधि व्रत माने जाते हैं। क्योंकि इन व्रतोंके आरम्भ और अन्तकी तिथियाँ निश्चित हैं तथा दिनसंख्या भी निर्धारित है। जिन व्रतोंकी दिनसंख्या निर्धारित रहती है किन्तु आरम्भ और समाप्तिकी तिथि निश्चित नहीं है, वे व्रत निरवधिब्रत कहलाते हैं। जिन व्रतोंके कृत्योंका महत्त्व दिनके लिए है, वे दैवासिक व्रत कहलाते हैं, जैसे पुष्पाञ्जलि, रत्नत्रय, अष्टाह्निका, अक्षयतृतीया, रोहिणी आदि।

जिन व्रतोंका महत्त्व रात्रिकी क्रियाओं और विधानोंके सम्बन्धके साथ रहता है, वे व्रत नैशिक व्रत कहलाते हैं। चन्दनपट्टी, आकाश-पञ्चमी आदि व्रत नैशिक माने गये हैं। महीनोंकी अवधि रत्नकर जो व्रत सम्पन्न किये जाते हैं, वे मासावधिक व्रत कहलाते हैं। संवत्सर पर्यन्त जो व्रत किये जाते हैं, वे सांवत्सरिक व्रत हैं। किसी फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे काम्य तथा विना किसी फल-प्राप्तिके जो व्रत किये जाते हैं, वे अकाम्य कहलाते हैं। उत्तम फलकी प्राप्तिके लिए जो व्रत किये जाते हैं, वे उत्तमार्थ व्रत हैं। इस प्रकार नौ तरहके व्रत बतलाये गये हैं। इन व्रतोंके करनेसे उत्तम भोगोपभोगकी प्राप्ति होती है तथा कर्मोंकी निर्जरा होनेसे कर्मभार भी हलका होता है।

निरवधि व्रतोंमें कवलचान्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकेन, मुक्तावली, द्विकावली, एकावली बताये हैं। कवलचान्द्रायण व्रतका प्रारम्भ किसी भी मासमें किया जा सकता है, यह अमावस्यासे आरम्भ होकर अगले महीनेकी चतुर्दशीको समाप्त होता है तथा अमावस्याको पारणा की जाती है। प्रथम अमावस्याको प्रोपधोपवास कर प्रतिपदाको एक मास आहार, द्वितीयाको दो मास, तृतीयाको तीन मास, चतुर्थीको चार मास, पञ्चमीको पाँच मास, षष्ठीको छः मास, सप्तमीको सात मास, अष्टमीको आठ मास, नवमीको नौ मास, दशमीको दस मास, एकादशीको ग्यारह मास, द्वादशीको बारह मास, त्रयोदशीको तेरह मास, चतुर्दशीको चौदह मास और पूर्णिमाको पन्द्रह मास, प्रतिपदाको पुनः चौदह मास, द्वितीयाको तेरह मास, तृतीयाको बारह मास, चतुर्थीको ग्यारह मास, पञ्चमीको दस मास, षष्ठीको नौ मास, सप्तमीको आठ मास, अष्टमीको सात मास, नवमीको छः मास, दशमीको पाँच मास, एकादशीको चार मास, द्वादशीको तीन मास, त्रयोदशीको दो मास और चतुर्दशीको एक मास आहार लेना चाहिए। अमावस्याके अनन्तर जिस प्रकार चन्द्रकलाओंकी वृद्धि होती है, आहारके मासोंकी भी वृद्धि होती चली जाती है तथा चन्द्रकलाओंके घटनेपर माससंख्या भी घटती जाती है। इस व्रतका नाम कवलचान्द्रायण इसीलिए पड़ा है कि चन्द्रमाकी कलाओंकी वृद्धि और हानिके साथ भोजनके कवलोंकी हानि और वृद्धि होती है।

जिनमुखावलोकेन व्रत भी भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदासे आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक किया जाता है। इस व्रतमें सबसे पहले श्रीजिनेन्द्रका दर्शन करना चाहिए, अन्य किसी व्यक्तिका मुँह नहीं देखना चाहिए। प्रतिपदाको प्रोपधोपवास कर, द्वितीयाको पारणा, तृतीयाको प्रोपधोपवास कर चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको प्रोपधोपवास कर षष्ठीको पारणा, सप्तमीको प्रोपधोपवास कर अष्टमीको पारणा, नवमीको प्रोपधोपवास कर दशमीको पारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार एक दिन उपवास,

अगले दिन पारणा करते हुए भाद्रपद मासको विताना चाहिए। पारणाके दिन एकाग्रान करना चाहिए। भोजनमें माद-भात, या दूध अथवा छाछ लेना चाहिए। वस्तुओंकी संख्या भी भोजनके लिए निर्धारित कर लेनी चाहिए। यह व्रत कवलचान्द्रायणके समान भी किया जा सकता है। इसमें केवल विशेषता इतनी ही है कि प्रातः जिनमुखका अवलोकन करना चाहिए। रातका अधिकांश भाग जागते हुए धर्मध्यानपूर्वक विताना चाहिए।

मुक्तावली व्रत दो प्रकारका होता है—लघु और बृहत्। लघु व्रतमें नौ वर्ष तक प्रतिवर्ष नौ-नौ उपवास करने पड़ते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को, दूसरा आश्विन कृष्णा षष्ठी को, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ कार्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। मुक्तावली व्रतमें ब्रह्मचर्य सहित अणु-व्रतोंका पालन करना चाहिए। रातमें उपवासके दिन जागरणकर धर्मा-र्जन करना चाहिए। “ॐ ह्रीं वृषभजिनाय नमः” इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

बृहत् मुक्तावली व्रत ३४ दिनोंका होता है। इस व्रतमें प्रथम एक उपवास कर पारणा, पुनः दो उपवासके पश्चात् पारणा, तीन उपवासके पश्चात् पारणा, चार उपवासके पश्चात् पारणा तथा पाँच उपवासके पश्चात् पारणा करनी चाहिए। अब चार उपवासके पश्चात् एक पारणा तीन उपवासके पश्चात् पारणा, दो उपवासके पश्चात् पारणा एवं एक उपवासके पश्चात् पारणा करनी होती है। इस प्रकार कुछ २५ दिन उपवास तथा ९ दिन पारणाएँ; इस प्रकार कुल ३४ दिनों तक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें लगातार दो, तीन, चार और पाँच उपवास करने पड़ते हैं; दिन धर्मध्यानपूर्वक विताने पड़ते हैं तथा रातको जागकर आत्म-चिन्तन करते हुए व्रतकी क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इस व्रतका फल

विशेष बताया गया है। इस प्रकार निरवधि व्रतोंका अपने समयपर पालन करना चाहिए, तभी आत्मोत्थान हो सकता है। बृहद् मुक्तावली-में 'ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ॐ ह्रूं णमो आश्रियाणं ॐ ह्रीं णमो उच्चज्जयाणं ॐ ह्रं णमो लोए सव्व-साहूणं' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए।

बृहद् मुक्तावली और लघुमुक्तावलि व्रतके मध्यमें एक मध्यम मुक्तावलि व्रत भी होता है। यह ६२ दिनोंमें पूर्ण होता है, इसमें ४९ उपवास और १३ पारणाएँ होती हैं। मध्यममुक्तावली व्रतमें भी बृहद्-मुक्तावली व्रतके मन्त्रका जाप करना चाहिए। पारणाके दिन तीनों ही प्रकारके मुक्तावली व्रतमें भात ही लेना चाहिए।

तपोऽञ्जलि व्रतका लक्षण

किं नाम तपोऽञ्जलिर्ब्रतम् ? द्वादशमासेषु निरिजलपानं न कर्त्तव्यमुपवासाश्चतुर्विंशतयः कार्याः, अष्टम्यां चतुर्दश्यां नैव नियमः अष्टम्यामेव चतुर्दश्यामेवेति ॥

अर्थ—तपोऽञ्जलि व्रतकी क्या विधि है ? कैसे किया जाता है ? आचार्य कहते हैं कि बारह महीनों तक अर्थात् एक वर्ष पर्यन्त रातको पानी नहीं पीना और एक वर्षमें चौदास उपवास करना तपोऽञ्जलि व्रत है। उपवास करनेका नियम अष्टमी और चतुर्दशीको ही नहीं है, प्रत्येक महीनेमें दो उपवास कभी भी किये जा सकते हैं।

विवेचन—आचार्यने तपोऽञ्जलि व्रतका अर्थ यह किया है कि रातको जल नहीं पीना, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना, धर्मोपान पूर्वक वर्षको किताना। यह व्रत श्रावण मासकी कृष्णा प्रतिपदासे किया जाता है। इसका प्रमाण एक वर्ष है। व्रत करनेवाला दि० जैन मुनि या दि० जैन प्रतिमाके समक्ष बैठकर व्रतको विधिपूर्वक ग्रहण करता है। दो घटी सूर्य अस्त होनेके पूर्वसे लेकर दो घटी सूर्योदयके बाद तक जलपानका त्याग करता है। जलपानका अर्थ यहाँ हलका भोजन नहीं है बल्कि जल पीने

का त्याग करना अभिप्रेत है। इस व्रतका घटी श्रावण रातको जल तो पीता ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्यका भी पालन करता है। यद्यपि कहीं-कहीं स्वदारसन्तोष व्रत रखनेका विधान किया है, पर उचित तो यही प्रतीत होता है कि एक वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर आत्मिक शक्तिका विकास किया जाय। ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शरीर और मन दोनों स्वस्थ होते हैं।

वर्ष ऋतुसे व्रतारम्भ करनेका अभिप्राय भी यही है कि इस ऋतुमें पेटकी अग्नि मन्द हो जाती है, अतः ब्रह्मचर्यसे रहनेपर शक्तिका विकास होता है। ब्रह्मचर्यके अभावमें वर्षा ऋतुमें नानाप्रकारके रोग हो जाते हैं, जिससे मनुष्य आत्मकल्याणसे वंचित हो जाता है। इस ऋतुमें रातको जल न पीना भी बहुत लाभप्रद है। नानाप्रकारके सूक्ष्म और बादर जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति इस ऋतुमें होती है, जिससे रातमें पीनेवाले जलके साथ वे पेटमें चले जाते हैं। मयंक व्याधियाँ भी वर्षा ऋतुकी रातमें जल पीनेसे हो जाती हैं। तपोऽञ्जलि व्रतमें प्रत्येक मासमें दो उपवास स्वेच्छासे किसी भी तिथिको करने चाहिए।

प्रत्येक महीनेकी शुक्लपक्षकी अष्टमी और कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका नियम इस व्रतके लिए बताया गया है ; परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि यह व्रत इन दोनों दिनोंमें होना ही चाहिए। प्रत्येक पक्षमें एक उप-वास करना आवश्यक है, एक ही पक्षमें दो उपवास नहीं करने चाहिए। जो लोग अष्टमी और चतुर्दशीका उपवास करना चाहते हैं, उनको भी इस व्रतके लिए कृष्णपक्षमें अष्टमीका और शुक्लपक्षमें चतुर्दशीका अवकाश जलपानका और कृष्णपक्षमें अष्टमीका और शुक्लपक्षमें चतुर्दशीका अवकाश देना आवश्यक है। एक ही पक्षमें दो उपवास करनेका निषेध है। कोई भी व्यक्ति उपवासके लिए जिस प्रकार पक्षका पृथक् होना आवश्यक है, उसी प्रकार तिथिका भी। एक महीनेमें उपवासकी तिथियाँ एक नहीं हो सकती। जैसे कोई व्यक्ति कृष्णा पञ्चमीका उपवास करे, तो पुनः शुक्लपक्षमें वह

अन्य कार्योंका प्रारम्भ करना चाहिए। जिन-मुखावलोकन व्रत निरवधि कहलाता है, क्योंकि दोनों ही मान्यताओंमें इस व्रतके लिए कोई विधि निश्चित नहीं की गयी है। आचार्यने यहाँपर दूसरी मान्यताको प्रधानता दी है।

मुक्तावली व्रतकी विधि

का नाम मुक्तावली? कथं चेयं क्रियते सज्जनोत्तमैः? मुक्तावलयामेकः द्वौ त्रयश्चात्वारः पञ्चोपवासाः, पञ्चात् चत्वारः त्रयो द्वावेकः उपवासाः भवन्ति। अस्य व्रतस्योपवासाः पञ्च-विंशतिः पारणा नवदिनानि। इति चतुर्विंशत् दिनानि। एतदपि निरवधिः।

अर्थ—मुक्तावली व्रत किसे कहते हैं? यह सज्जन पुरुषोंके द्वारा कैसे किया जाता है? आचार्य कहते हैं कि मुक्तावली व्रतमें पहले एक उपवास, फिर दो उपवास, पश्चात् तीन उपवास, चार उपवास, अनन्तर पाँच उपवास किये जाते हैं। पाँच उपवासके पश्चात् चार उपवास, तीन उपवास, दो उपवास और एक उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार व्रतके मध्यमें नौ बार पारणा और २५ दिन व्रत किया जाता है। इस व्रतको गिनती भी निरवधि व्रतोंमें है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतका अर्थ है मोतियोंकी लड़ी, जो व्रत मोतियोंकी लड़ीके समान हो, वही मुक्तावली है। मुक्तावली व्रतमें एक उपवाससे प्रारम्भ कर पाँच उपवास तक किये जाते हैं, पश्चात् पाँचपरसे षट्ते-षट्ते एक उपवासपर आ जाते हैं। इस प्रकार यह व्रत गोल मालाके समान बन जाता है। २५ दिन उपवास करनेपर केवल नौ दिन पारणा करनी पड़ती है। इस व्रतके दिनोंमें जमोकार मंत्रका तीन बार जाप करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें कण्ठ और विक्रियाओंका त्याग करना चाहिए। इस व्रतके विधि-पूर्वक धारण करनेसे सांसारिक उत्तम भोगोंको भोगनेके उपरान्त मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

द्विकावली व्रत-विधि

द्विकावल्यां द्विकान्तरेणैकाशनोपवासाः, चतुःपञ्चाशत् कार्याः, न तिथ्यादिनिर्णयः। मत्तान्तरेण द्विकावल्यां प्रत्येक-मासे कृष्णपक्षे चतुर्थी-पञ्चम्योः, अष्टमी-नवम्योः, चतुर्दश्यमा-वस्योः उपवासाः कार्याः। शुक्लपक्षे तु प्रतिपदा-द्वितीययोः, पञ्चमी-षष्ठ्योः, अष्टमी-नवम्योः, चतुर्दशी-पूर्णिमयोः उपवासाः कार्याः। एवं प्रकारेण चतुर्दशीतिः पारणादिवसानि भवन्ति।

अर्थ—द्विकावली व्रतमें दो उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। इसमें कुल ५४ उपवास होते हैं और ५४ दिन ही पारणा करनी पड़ती है। इसमें तिथि आदिका कोई नियम नहीं है। मत्तान्तरे द्विकावली व्रतके प्रत्येक महीनेके कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमी, अष्टमी-नवमी, चतुर्दशी-अमावास्या और शुक्लपक्षमें प्रतिपदा-द्वितीया, पञ्चमी-षष्ठी, अष्टमी-नवमी और चतुर्दशी-पूर्णिमाका उपवास करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें ७ उपवास तथा ७ एकाशन करने चाहिए। वर्षमें इस प्रकार ८४ उपवास और ८४ पारणाएँ होती हैं।

१. विधि दुकावली व्रतकी श्री जिन भाषी ताम।

वेला सात जु मास में करिए सुणि तिय नाम ॥

पणि श्वेत धर्की व्रत लीजै, पडिवा दोयज वृद्धि कीजै।

फुनि पाँच पछी जाणों, आठै नवमी छडि टाणों ॥

चौदसि पूर्यु गिण लेह, वेला चहु परिवसि तहह ॥

तिथि चौथी पांचमी कारी, आठै नौमी सुविचारी ॥

चौदसि मावसि परवीन, पवि किसन करै छठ तीन।

इम सात मास एक माहों, बारामाहहि हक ठाहीं ॥

चौरासी वेला कीजै, उद्यापन करि छँडिजे।

इस व्रत तैं सुरसिध पावैं, सुख को तहाँ बार न आवैं ॥

—क्रियाक्रोश किशनसिंह

विवेचन—द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दो मत प्रचलित हैं। पहला मत इस व्रतके लिए तिथिका कोई बन्धन नहीं मानता है। इसमें कभी भी दो दिन उपवास कर पारणा करनी चाहिए। इस प्रकार ५४ उपवास और ५४ पारणाएँ करके व्रतको समाप्त करना चाहिए। ५४ उपवास १६२ दिनोंमें सम्पन्न किये जाते हैं। उपवास करनेवाला प्रथम दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, पुनः दो दिन उपवास, एक दिन पारणा, इसी प्रकार आगे भी करता जाता है। इस प्रकार एक उपवासके सम्पन्न करनेमें तीन दिन लगते हैं, अतः ५४ उपवासके ५४ × ३ = १६२ दिन हुए। उपवासके दिनोंमें शीलव्रतका पालन करते हुए तीनों समय प्रतिदिन—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल 'ऊँ ह्रीं हौं ह्रौं' शीर्षार्धनाथजिनेन्द्राय सर्वशान्तिकराय सर्वशुद्धिपद्मविनाशनाथ श्रीं ह्रीं नमः स्वाहा' मन्त्रका जाप करना चाहिए। यह मन्त्र तीनों सन्ध्याकालोंमें कमसे कम १०८ बार जपा जाता है।

उपवास और पारणाके लिए किसी तिथिका नियम नहीं है; फिर भी यह व्रत श्रावणमाससे आरम्भ किया जाता है। यह माघ मासकी द्वादशी तक किया जाता है। कुछ लोग इसे वर्ष भर करनेकी सम्मति देते हैं, उनका कहना है कि श्रावण माससे आरम्भ कर दो दिन उपवास, एक दिन पारणा इस क्रमसे वर्षान्त तक व्रत करते रहना चाहिए।

द्विकावली व्रतकी विधिके सम्बन्धमें दूसरी मान्यता यह है कि इस व्रतमें प्रत्येक मासमें सात उपवास किये जाते हैं, ये सात उपवास २१ दिनोंमें सम्पन्न होते हैं। दो दिन व्रत रखनेके उपरान्त पारणा करनी पड़ती है, इस प्रकार २१ दिनोंमें सात उपवास करनेके पश्चात् महीनेके शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए। प्रथम उपवास कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीका किया जायगा। पृथ्वीको पारणा की जायगी, सप्तमीको एकाशन करनेके उपरान्त अष्टमी और नवमीको व्रत किया जायगा। इस व्रतकी दशमीको पारणा होगी, पुनः एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना होगा। चतुर्दशी और अमावस्याको उपवास, पुनः शुक्लपक्षमें

प्रतिपदा और द्वितीयाका उपवास करना होगा। इस प्रकार व्रतमें एक बार चार दिनका उपवास पड़ेगा। एक पारणा र्वाचकी जुस हो जायगी। चार दिनोंके व्रतके उपरान्त तृतीया और चतुर्थीको एकाशन करना होगा। पंचमी और पृथ्वीके उपवासके अनन्तर, सप्तमीको पारणा, पश्चात् अष्टमी और नवमीको उपवास करनेपर दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको एकाशन करना चाहिए। प्रत्येक महीनेका अन्तिम उपवास शुक्लपक्षमें चतुर्दशी और पूर्णिमाका करना होगा।

कुल लोग इस व्रतको शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेके पक्षमें हैं। शुक्लपक्षसे आरम्भ करनेपर प्रथम बार चार दिन तक लगातार उपवास नहीं पड़ता है, क्योंकि चतुर्दशी और पूर्णिमाके उपवासके पश्चात् कृष्णपक्षमें चतुर्थी-पञ्चमीको उपवास करनेका विधान है। परन्तु इस क्रममें भी दूसरी आशुतिसमें चार उपवास करना पड़ेगा।

द्वितीय मान्यतामें द्विकावली व्रतके लिए तिथियाँ निर्धारित की गयी हैं। अतः इसमें भी छः घटी प्रमाण तिथिके होनेपर ही व्रत करना होगा। इस व्रतकी जाप-विधि सर्वत्र एकसी ही है। कषाय और विकषाओंके त्यागपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। द्विकावली व्रतका फल स्वर्ग-भोक्षकी प्राप्ति होता है। जो श्रावक इस व्रतका अनुष्ठान ध्यानपूर्वक करता है तथा प्रसादका त्याग कर देता है, वह शीघ्र ही अपना आत्मकल्याण कर लेता है।

यों तो सभी व्रतों-द्वारा आत्मकल्याण करनेमें व्यक्ति समर्थ है, पर इस व्रतके पालन करनेसे 'समस्त मनोवाञ्छाएँ पूरी हो जाती हैं। किसी संकट या विपत्तिको दूर करनेके लिए भी यह व्रत किया जाता है। कुछ लोग इसे संकटहरण व्रत भी कहते हैं।

लघुद्विकावली

यह व्रत १२० दिनोंमें समाप्त होता है, इसमें २४ वेला, ४८ एकाशन और २४ पारणा इस प्रकार १२० दिन लगते हैं। प्रथम वेला, पुनः

पारणा, तत्पश्चात् दो पृकाशन करे इस प्रकार इस व्रतको पूर्ण करना चाहिए। इस व्रतमें पणोकार मन्त्रका जाप या पूर्वोक्त वृहद् द्विकावली मन्त्रका जाप करना चाहिए।

एकावली व्रतकी विधि और फल

किंनाम एकावलीव्रतम् ? कथं च विधीयते व्रतिके ? अस्य किं फलम् ? उच्यते—एकावल्यामुपवासा पृकान्तरेण चतुरशीतिः कार्या; न तु तिथ्यादित्ययमः । इदं स्वर्गापवर्गफलप्रदं भवति । इति निरवधिब्रतानि ॥

अर्थ—एकावली व्रत क्या है ? व्रतो व्यक्तियोंके द्वारा यह कैसे किया जाता है ? इसका फल क्या है ? आचार्य कहते हैं कि एकावली व्रतमें पृकान्तर रूपसे उपवास और पारणाएँ की जाती हैं, इसमें चौरासी उपवास तथा चौरासी पारणाएँ की जाती हैं । तिथिका नियम इसमें नहीं है । इस व्रतके पालनेसे स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है । इस प्रकार निरवधि व्रतोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

विवेचन—एकावली व्रतकी विधि दो प्रकार देखनेको मिलती है । प्रथम प्रकारकी विधि आचार्यद्वारा प्रतिपादित है, जिसके अनुसार किसी तिथि आदिका नियम नहीं है । यह कर्मा भी एक दिन उपवास, आगले दिन पारणा, पुनः उपवास, पुनः पारणा, इस प्रकार चौरासी उपवास करने चाहिए । चौरासी उपवासोंमें चौरासी ही पारणाएँ होती हैं । इस व्रतको प्रायः श्रावण माससे आरम्भ करते हैं । व्रतके दिनोंमें शीलव्रत और पञ्चाणुव्रतोंका पालन करना आवश्यक है ।

दूसरी विधि यह है कि प्रत्येक महीनेमें सात उपवास करने चाहिए, शेष पृकाशन, इस प्रकार एक वर्षमें कुल चौरासी उपवास करने चाहिए । प्रत्येक मासकी कुल पक्षकी चतुर्था, अष्टमी और चतुर्दशी एवं दुर्गलपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी, अष्टमी और चतुर्दशी तिथियोंमें उपवास करना चाहिए । उपवासके आगले और पिछले दिन पृकाशन करना आवश्यक

है । शेष दिनोंमें भोज्य वस्तुओंकी संख्या परिगणित कर दोनों समय भी आहार ग्रहण किया जा सकता है । इस व्रतमें पणोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए ।

सावधि व्रतोंके भेद

सावधीनयुच्यन्ते, तानि द्विविधानि, तिथिसावधिकानि द्दिसंख्यासावधिकानि च । तिथिसावधिकानि कानि ? सुखचिन्तामणिभावना-पञ्चविंशतिभावना-द्वाविंशत्-सम्पत्तपञ्चविंशत्प्रादीनि पणोकारपञ्चविंशत्कानि ॥

अर्थ—सावधि व्रतोंको कहते हैं, ये दो प्रकारके होते हैं—तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले और दिनोंकी अवधिसे किये जानेवाले । तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले व्रत कौन-कौन हैं ? आचार्य कहते हैं कि सुखचिन्तामणिभावना, पञ्चविंशतिभावना, द्वाविंशत्भावना, सम्पत्तपञ्चविंशति-भावना और पणोकार पञ्चविंशत्-भावना ।

विवेचन—जो किसी भी प्रकारकी अवधिको लेकर किये जाते हैं, वे सावधिक व्रत कहलाते हैं । यों तो सभी व्रतोंमें किसी न किसी प्रकार का मयादा रहता ही है, परन्तु सावधिक व्रतोंमें उन्हींकी गणना की गयी है, जिनमें तिथि आदिका विधान बिल्कुल निश्चित है । ऐसे व्रत सुखचिन्तामणि भावना, पञ्चविंशति भावना, द्वाविंशत् भावना, सम्पत्तपञ्चविंशति भावना, पणोकारपञ्चविंशत् भावना आदि हैं । इन व्रतोंमें तिथिकी अवधिके अनुसार उपवास किए जाते हैं । समय मयादाके अतिक्रमण करनेपर इन व्रतोंका फल भी कुछ नहीं होता है । इनका फल समय—मयादापर ही आश्रित है । अतः ये व्रत तिथिसावधिक कहलाते हैं । क्रियाकोश आदि आचारके ग्रन्थोंमें इन व्रतोंकी विशेषविशेष विधियोंका निरूपण किया गया है । इस ग्रन्थमें पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित १०८ व्रतोंकी विधियोंका संक्षेपमें निरूपण किया है । व्रत विधियोंके सम्बन्धमें प्रकरणवरा आगे विचार किया जायगा ।

सुखचिन्तामणि व्रतका स्वरूप

उच्यते, सुखचिन्तामणौ चतुर्दशी चतुर्दशकं, एकादश्येकादशकं, अष्टम्यष्टकं, पञ्चमी पञ्चकं तृतीया त्रिकमेवमुपवासाः एकचत्वारिंशत् । न कृष्णपक्षशुक्लपक्षगतौ नियमः, केवलातिथि नियम्य भवन्तीति उपवासाः । अस्य व्रतस्य पञ्चभावनाः भवन्ति, प्रत्येकभावनायामभिषेको भवति ।

अर्थ—सुखचिन्तामणि नामके व्रतको कहते हैं—सुखचिन्तामणि व्रतमें चतुर्दशियोंमें चौदह उपवास, एकादशियोंके ग्यारह उपवास, अष्टमियोंके आठ, पञ्चमियोंके पाँच उपवास, तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ४१ उपवास करने चाहिए । इस व्रतमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षका कुछ भी नियम नहीं है, केवल तिथिका नियम है । उपवासके दिन व्रतकी विधेय तिथिका होना आवश्यक है । इस व्रतकी पाँच भावना होती हैं, प्रत्येक भावनामें एक अभिषेक किया जाता है । अभिप्राय यह है कि चौदह चतुर्दशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, ग्यारह एकादशियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना, आठ अष्टमियोंके व्रतके बाद एक भावना, पाँच पञ्चमियोंके व्रतके पश्चात् एक भावना एवं तीन तृतीयाओंके व्रतके पश्चात् एक भावना करनी पड़ती है । प्रत्येक भावनाके दिन भगवान्‌का अभिषेक करना पड़ता है ।

विवेचन—सुखचिन्तामणि व्रतके लिए केवल तिथियोंका विधान है । यह व्रत तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीको किया जाता है । प्रथम इस व्रतका प्रारम्भ चतुर्दशीसे करते हैं, लगातार चौदह चतुर्दशी अर्थात् सप्त महीनेकी चतुर्दशियोंमें चतुर्दशीव्रत पूरा होता है । साथ ही चतुर्दशी व्रतके तीन उपवास हो जानेपर एकादशी व्रत प्रारम्भ होता है । जिस दिन एकादशी व्रत आरम्भ किया जाता है, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक करते हैं तथा व्रतकी भावना भाते हैं । तीन चतुर्दशियोंके व्रतके उपरान्त एकादशी और चतुर्दशी दोनों व्रत अपनी-अपनी तिथिमें साथ-साथ किये जाते हैं ।

तीन एकादशी व्रत हो जानेके पश्चात् अष्टमी व्रत प्रारम्भ किया जाता है । जिस दिन अष्टमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, उस दिन भगवान्‌का अभिषेक समारोहपूर्वक करते हैं । यह सदा स्मरण रखना होगा कि प्रत्येक व्रतके प्रारम्भमें अभिषेक १०८ कलयोंसे किया जाता है । तीन अष्टमी व्रत हो जानेके उपरान्त पञ्चमी व्रत प्रारम्भ करते हैं, इसके प्रारम्भ करनेकी विधि पूर्ववत् ही है । चतुर्दशी, एकादशी, अष्टमी और पञ्चमी ये व्रत एक साथ चलते हैं । दो पञ्चमीव्रतोंके हो जानेपर तृतीया व्रत आरम्भ होता है, इस दिन भी बृहद् अभिषेक, पञ्जन-पाठ आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं । ये सभी व्रत तीन पक्षतक अर्थात् तीन तृतीया व्रतोंके सम्पूर्ण होनेतक साथ-साथ चलते हैं । तृतीयाके दिन ही इन व्रतोंकी समाप्ति होती है । इस दिन बृहद् अभिषेक समारोहपूर्वक करना चाहिए । उपवासके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं सर्वदुरितविनाशनाय चतुर्विंशतितीर्थकराय नमः' इस मन्त्रका जाप प्रातः, मध्याह्न और सार्यकाल करना चाहिए । सुखचिन्तामणि व्रत निश्चित तिथिमें ही सम्पन्न किया जाता है । यदि व्रतकी तिथि आगे-पीछे के दिनोंमें होती है तो व्रत आगे-पीछे किया जाता है । यह व्रत चिन्तामणि रत्नके समान सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है । भावनाके दिन चिन्तामणि भगवान्‌ पार्श्वनाथकी पूजा विशेष रूपसे की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं सर्वसिद्धि-कराय पार्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है ।

तिथिहास और तिथिवृद्धि होनेपर सुख-

चिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था

अधिकग्रहीतानुकृतिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—तिथि हासे व्रतिकैः तदादिदिनमारभ्य उपवासः कार्यः । अधिकतिथौ को विधिरिति चेत्तदाह—यथाशक्ति द्वितीयायां तिथौ पुनः पूर्वप्रोक्तो विधिः कार्यः, हीनत्यातुभिमुहूर्ततः व्रतविधिर्न भवति । अर्थ—सुखचिन्तामणि व्रतमें तिथिहास और तिथि वृद्धि होनेपर व्रत

करनेकी क्या तिथि है ? तिथिहास होनेपर व्रत करनेवालोंको एक दिन पहले व्रत करना चाहिए ।

तिथिवृद्धि होनेपर क्या व्यवस्था है—आचार्य कहते हैं कि तिथि वृद्धि होनेपर दूसरे दिन—बड़े हुए दिन भी विधिपूर्वक व्रत करना चाहिए । यदि तिथि तीन सुहृत् अर्थात् बड़ी हुई तिथि छः घटीसे अल्प हो तो उस दिन व्रत नहीं करना चाहिए ।

विवेचन—तिथिहास और तिथिवृद्धि होनेपर सुखचिन्तामणि व्रतमें उपवास निश्चित तिथिको करना चाहिए । जब तिथिकी वृद्धि हो, उस समय एक दिन तक उपवास करना पड़ेगा । परन्तु तिथि-वृद्धिमें इस बातका सदा खयाल रखना पड़ेगा कि बड़ी हुई तिथि छः घटीसे अधिक होनी चाहिए । छः घटीसे अल्प होनेपर उस दिन पारणा कर ली जायगी । तिथिहास अर्थात् जिस तिथिको व्रत करना है, उसीका हास—क्षय हो तो उस तिथिके पहले वाली तिथिको व्रत करना होगा; क्योंकि व्रतकी तिथि उस दिन सूर्योदयमें न भी रहेगी तो भी अस्त-कालमें अवश्य आ जायगी । अतएव एक दिन पहले व्रतवाली तिथिके वर्तमान रहनेसे व्रत एक दिन पूर्व करना होगा । सूर्योदय कालमें यदि व्रतकी तिथि छः घटी प्रमाण न हो तो भी व्रत एक दिन पहले करना पड़ेगा ।

तिथिहासमें व्रततिथिकी व्यवस्था पहले ही वतलवाई गयी है । जैनागममें सोदया तिथि वही मानी गयी है, जो उदयकालमें कमसे कम छः घटी प्रमाण हो । उदया तिथिके न मिलनेपर अस्तकालीन तिथि ग्रहण की जाती है । उदाहरणके लिए यों समझना चाहिए कि किसी व्यक्ति को चतुर्दशीसे सुखचिन्तामणि व्रत प्रारम्भ करना है । व्रत प्रारम्भके दिन चतुर्दशी उदयकालमें ८ घटी १० पल प्रमाण थी, अतः व्रत कर लिया गया । अगली चतुर्दशी बुधवारको ३ घटी १० पल है और मंगलवारको ज्येष्ठशी ५ घटी १५ पल है । यहाँ यदि बुधवारको व्रत किया जाता है तो ३ घटी १० पल प्रमाण, जो कि उदयकालमें तिथिका

मान है, छः घटी प्रमाणसे अल्प है । अतः बुधवारको चतुर्दशी सोदया नहीं कहलायेगी । व्रतके लिए तिथिका सोदया होना आवश्यक है, सोदया न मिलनेपर अस्ता तिथि ग्राह्य की जाती है । इसलिये चतुर्दशी का व्रत मंगलवारको ही कर लिया जायगा ।

तिथि-वृद्धि होनेपर दो दिन लगातार व्रत करनेकी बात आती है । मान लीजिए कि बुधवारको एकादशी ६० घटी ० पल है और गुरुवारको एकादशी पूर्ण है, अतः बुधवारको व्रत करना होगा । गुरुवारके दिन भी एकादशीका प्रमाण सोदया—छः घटीसे अधिक है, अतः गुरुवारको भी उपवास करना पड़ेगा । इस प्रकार तिथिवृद्धिमें दो दिन लगातार उपवास करना पड़ता है । यदि यहाँपर गुरुवारके दिन एकादशी ५ घटी ४० पल हो जाती, तो सोदया—छः घटी प्रमाण न होनेसे उपवासके लिए ग्राह्य नहीं थी । अतएव गुरुवारको पारणा की जा सकती है । उपवासका दिन केवल बुधवार ही रहेगा । इस प्रकार तिथिक्षय और तिथिवृद्धिमें सुखचिन्तामणि व्रतकी व्यवस्था समझनी चाहिए ।

अष्टाहिकादि व्रतोंमें तिथि-क्षय होनेपर

पुनः व्यवस्था

व्रतान्तं व्रतं कथं क्रियतेऽस्योपर्यन्त्यदुके च अपञ्चशतद्वहा—
अहिमजावय अद्विपय जाणियह मज्जे तिहि ।

पडणहेइ तहवर आइह्य अंतलौ वय ॥

व्याख्या—अष्टमया यावत्पूर्णमानंतं व्रतं चाष्टाहिकं जानीहि ।

अस्य मध्ये तिथिपतनं भवति, तर्हि व्रतस्यादिदिनमारभ्य व्रतान्तमवलोकयेत्यर्थः ॥

अर्थ—यदि व्रतके मध्यमें तिथिहास हो तो व्रतकी समाप्ति किस प्रकार करनी चाहिए, इसके ऊपर अन्य आचार्यों-द्वारा कही गयी गथा-को कहते हैं—

अष्टमीसे लेकर पूर्णिमातक जो व्रत किया जाता है, उसे अष्टाद्विक व्रत कहते हैं। यदि इस व्रतके दिनोंमें किसी तिथिका ह्रास हो तो व्रत आरम्भ करनेके एक दिन पहलेसे लेकर व्रतकी समाप्तितक व्रत करना चाहिए।

तथान्यैरप्युक्ता गाथा—

वयविहीणं च भञ्ज्ये तिथिपृष्ठं पञ्चमं वज्राई होइ जई ।

मूलदिणं पारंभिय अंत दिवसभिमि होइ सम्भसंतं ॥

व्याख्या—व्रतविधीनां च मध्ये तिथिपतनं यदि भवेत्, तदा मूलदिने प्रारम्भं अन्ये दिवसे च भवति समाप्तमिति कोचित् ।

अर्थ—व्रत विधिके मध्यमें यदि किसी तिथिका ह्रास हो तो एक दिन पहले व्रत आरम्भ किया जाता है और व्रतकी समाप्ति अन्तिम दिन होती है। यही सम्यक्त्व है, ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं।

मास अधिक होनेपर सांवत्सरिक क्रिया कैसे करनी चाहिए।

मासाधिक्ये किं कर्त्तव्यमिति चेत्तदाह—

सांवत्सरे यदि भवेन्मासो वै चाधिकस्तदा ।

पूर्वास्मिन्न व्रतं कार्यं त्वपरिस्मिन् कृतं शुभम् ॥

अर्थ—अधिमास होनेपर व्रत कब करना चाहिए? आचार्य कहते हैं कि यदि वर्षमें एक मास अधिक हो तो पहले वाले मासमें व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु आगे वाले मासमें व्रत करना चाहिए।

विवेचन—सौर और चान्द्रमासमें अन्तर रहनेके कारण दो वर्ष छोड़कर तीसरे वर्षमें एक मासकी वृद्धि हो जाती है, जो अधिमास कहलाता है। इसका नाम शास्त्रकारोंने मलमास भी रखा है। यह अधिमास चैत्रसे लेकर आश्विन तक पड़ता है अर्थात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन ये ही महीने वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूर्य मन्द गतिसे गमन करता है और चान्द्रमा तेज गतिसे। इसलिए प्रति महीनेमें अधिशेषकी वृद्धि होती जाती है। जब

दो महीनेमें एक संक्रान्ति पड़ती है, तब अधिमास आता है। वात यह है कि व्यवहारमें चान्द्रमास लिखे जाते हैं, प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमान्त चान्द्रमास गणना होती है। सौरमास संक्रान्तिसे लेकर संक्रान्ति तक होता है, यह पूरे ३० दिनका होता है। चान्द्रमास २९ दिनोंके लगभगका होता है तथा जिस दिन चान्द्रमास आरम्भ होता है, उस दिन सौरमास नहीं। सौर मास सदा चान्द्रमाससे अगे-पीछे आरम्भ होता है, इसी कारण तीन वर्षोंमें एक महीनेकी वृद्धि हो जाती है।

अधिमासका आनयन गणितसे निम्न प्रकार किया जाता है। दिनादि और अवमका योग करके दसगुणित वर्षगणमें जोड़कर तीसका भाग देने पर फल अधिमास संख्या होती है।

सावन दिन और चान्द्र दिनका अन्तर अवम होता है। इसलिए सावन दिन और अवमके योगसे चान्द्रदिन सिद्ध होते हैं।

एक वर्षमें सावनदिन=३६५।९५३।०२२।३०

अवमदिन= ५।४८।२।७।३०

एक वर्षमें चान्द्रदिन=३७१।३।५२।३०

” सौरदिन=३६०।०।०।०

११।३।५२।३० एक वर्षमें इतने दिनादि बढ़ जाते हैं। इसका नाम वार्षिक अधिमास या शुद्धि है। क्योंकि सौर और चान्द्र दिनोंके अन्तरमें अधिमास होता है अथवा अनुपात करनेपर कि कल्पवर्षों में कल्पाधिमास तो एक वर्षमें क्या? से भी उपर्युक्त वार्षिक अधिमास आ जाता है।

सावन दिन घटी आदि=०।१५।३।०।२२।३०

अवम दिन घटी आदि=०।४८।२।७।३०

अधिशेष=११।३।५२।३०=दिनादि+क्षयाहादि अथवा अनुपात किया—एक वर्ष में ११।३।५२।३० अधिमास आता है तो गत वर्षोंमें क्या? यहाँ सुविधाके लिए गुणकके दो खण्ड कर दिये—एक १० का और

दूसरा पूर्वसाधित १।३।५२।३० का । इस प्रकार दिनादि और अवमादिके योगमें दसगुणित वर्षसंख्या जोड़नेपर अधिदिन आये, इनमें तीसका भाग देनेपर अधिमास होता है ।

अतः

दिनादि+क्षयादि+१०×वर्गगण
=अधिमास। यहाँ शकाब्द-

३०

के अनुसार गणितकर कुछ अधिमासोंकी सूची दी जाती है ।

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	वि० सं०	अधिमास
१८७२	२००७	आषाढ़	१९२३	२०५८	आश्विन
१८७५	२०१०	वैशाख	१९२६	२०६१	श्रावण
१८७७	२०१२	भाद्रपद	१९२९	२०६४	ज्येष्ठ
१८८०	२०१५	श्रावण	१९३२	२०६७	वैशाख
१८८३	२०१८	ज्येष्ठ	१९३४	२०६९	आश्विन
१८८५	२०२०	आश्विन	१९३७	२०७२	आषाढ़
१८८६	२०२१	चैत्र	१९४०	२०७५	ज्येष्ठ
१८८८	२०२३	श्रावण	१९४२	२०७७	आश्विन
१८९१	२०२६	आषाढ़	१९४५	२०८०	श्रावण
१८९४	२०२९	वैशाख	१९४८	२०८३	ज्येष्ठ
१८९६	२०३१	आश्विन	१९५१	२०८६	चैत्र
१८९९	२०३४	श्रावण	१९५३	२०८८	आश्विन
१९०२	२०३७	ज्येष्ठ	१९५६	२०९१	आषाढ़
१९०४	२०३९	आश्विन	१९५९	२०९४	ज्येष्ठ
१९०७	२०४२	श्रावण	१९६१	२०९६	आश्विन
१९१०	२०४५	ज्येष्ठ	१९६४	२०९९	श्रावण
१९१३	२०४८	वैशाख	१९६७	२१०२	ज्येष्ठ
१९१५	२०५०	आश्विन	१९७०	२१०५	चैत्र
१९१८	२०५३	आषाढ़	१९७२	२१०७	आश्विन
१९२१	२०५६	ज्येष्ठ	१९७५	२११०	आषाढ़

शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास	शकाब्द	विक्रम सं०	अधिमास
१९७८	२११३	वैशाख	१९८६	२१२२	ज्येष्ठ
१९८१	२११६	आश्विन	१९८९	२१२५	चैत्र
१९८३	२११९	श्रावण	१९९१	२१२७	श्रावण

इस प्रकार अधिमासका परिज्ञान कर जिस मासकी वृद्धि हो उसके अगलेवाले मासमें व्रत करना चाहिए । जैसे श्रावण मास अधिमास है तो दो श्रावणोंमेंसे पहले श्रावण मासमें व्रत नहीं किया जायगा, किन्तु दूसरे श्रावणमें व्रत करना पड़ेगा ।

मास-क्षय होने पर व्रतके लिए व्यवस्था

मासहानौ किं कर्तव्यमिति चेत्तदाह—

संवत्सरे यदि भवेन्मासो वै दीयमानकः ।

पूर्वस्मिन् व्रतं कार्यं परस्मिन् तु योग्यता ॥

अर्थ—मासहानिमें क्या करना चाहिए ? उत्तर देते हैं कि संवत्सरमें यदि मासहानि हो तो पूर्वके महीनेमें व्रत करना चाहिए, अगोवाले महीनेमें नहीं । व्रतकी योग्यता पूर्वमासमें ही होती है, उत्तरमासमें नहीं ।

विवेचन—जैसे अधिमास होता है, वैसे ही क्षयमास भी होता है ।

कर्म-कर्मों वर्षमें एक मासकी हानि हो जाती है । स्पष्टमानसे जिस समय चान्द्रमासके प्रमाणसे सौरमासका मान कम होता है, तब एक चान्द्रमासमें दो संक्रान्तियोंके सम्भव होनेसे क्षयमास होता है । वह सौरमास अल्प, तभी संभव है जब स्पष्ट रविकी गति अधिक हो । क्योंकि अधिक गति होनेपर थोड़े समयमें राशिभोग होता है । क्षयमास प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौषमें ही होता है । क्षयमास जिस वर्षमें होता है, उस वर्षमें अधिमास भी होता है । मान लिया कि भाद्रपद अधिमास है, उस समय अधिशेष बहुत कम रहता है और क्रमशः घटता भी है, क्योंकि सूर्य अपने नीचेके आसन्न है । अधिशेष जब घटते-घटते

क्षय्य हो जाता है, तब क्षयमास होता है। कारण स्पष्ट है कि चान्द्र-माससे रविवास कम होता है। क्षयमासके अनन्तर अधिमास दोष एक चान्द्रमासके आसन्न पड़ूँच जाता है। इसके पश्चात् जब सूर्य पुनः अपने उच्चके आसन्न पड़ूँचता है, तब सौरमासके अल्प होनेके कारण पुनः अधिमास हो जाता है। इस प्रकार क्षयमास होनेपर दो अधिमास होते हैं। यदि पहला अधिमास भाद्रपदको मान लिया जाय तो दूसरा अधिमास चैत्रमें पड़ेगा तथा अगहनमें क्षयमास होगा। क्षयमास १४१ वर्षके अनन्तर आता है। पिछला क्षयमास वि० सं० १९३६ में पड़ा था अब अगला वि० सं० २०२० में कार्तिकमें पड़ेगा। कभी-कभी क्षयमास १९ वर्षोंके बाद भी पड़ता है। यदि समय पर क्षयमास पड़ा तो ४३३ वर्षोंके पश्चात् भी आता है।

यह नियम है कि जिस वर्ष क्षय मास पड़ेगा, उस वर्ष दो अधिमास अवश्य होंगे। क्षयमास पड़नेपर व्रत पिछले महीनेसे किया जाता है। मान लिया कि कार्तिक क्षयमास है। एकावली व्रत करनेवालेको कार्तिकके व्रत आश्विनमें ही कर लेने होंगे अथवा नक्षत्र आदि व्रत जो मासिक व्रत हैं, वे कार्तिकका अभाव होनेपर आश्विनमें किये जायेंगे। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिस वर्ष क्षयमास होता है, उस वर्ष अधिमास पहले अवश्य पड़ता है और यह अधिमास भी नीचासन्न सूर्यके होनेपर अर्थात् भाद्रपद या आश्विनमें आयागा। इस प्रकार एक महीनेके बढ़ जानेसे तथा एक महीना घट जानेसे कोई विशेष गड़बड़ी नहीं होती है। व्रतके लिए बारह मास प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु विचारणीय बात यह है कि अधिमास पड़नेपर भी व्रतके लिए तो एक ही मास ग्राह्य है, दूसरा मास तो मलमास होनेके कारण त्याज्य है। अतः एव क्षय मास होनेपर मासिक व्रत करनेवालोंको एक महीनेमें दुगुने व्रत करने पड़ेंगे।

दुगुने व्रत करनेके लिए क्षयमासके पहिलेका महीना ही लिया जायगा। क्षयमाससे आगेका महीना नहीं। जिन व्यक्तियोंको मासिक

व्रत प्रारम्भ करना है, उन्हें क्षयमासके पूर्ववर्त्ती महीनेसे व्रत प्रारम्भ करने चाहिए।

तिथिका प्रमाण

तिथिप्रमाणं कियदित्युक्ते चाह—चतुःपञ्चाशत्पट्टीभ्यो न्यूना तिथिर्न भवति, अधिक्रा तु सप्तपट्टिघटीप्रमाणं कथितम्। यतः जैनानां त्रिमुहूर्त्तोदयवर्त्तिनीतिथिः सम्मता, अधिक-तिथेः प्रमाणं तु सप्तपट्टिघटी, अहोरात्रप्रमाणं पट्टिघटीमतमतः सप्तपट्टिकाभ्योऽधिका पारणादिने पारणा न कर्त्तव्या, यदा तु चतुः, पञ्च पट्टिकाप्रमाणं अपरदिने तिथिः तदा तस्मिन्नेव दिने पारणा कार्या, नान्यत्र।

अर्थ—तिथिका प्रमाण कितना होता है ? इस प्रकारका प्रश्न करने पर आचार्य उत्तर देते हैं—प्रत्येक तिथि ५४ घटीसे कम और ६७से अधिक नहीं होती है। जैनाचार्योंने उदयकालमें छः घटी प्रमाण तिथिका मान व्रतके लिए ग्राह्य बताया है। तिथिका अधिकतम मान ६७ घटी होता है। अहोरात्रका प्रमाण ६० घटी माना जाता है, अतः पहले दिन कोई भी तिथि ६० घटीसे अधिक नहीं हो सकती। अगले दिन वृद्धि होनेपर वह तिथि अधिकसे-अधिक ७ घटी प्रमाण रहेगी। ऐसी अवस्था में उस दिन व्रतकी पारणा नहीं की जायगी, किन्तु उस दिन भी व्रत रखना होगा। यदि वृद्धिगत तिथि छः घटीसे अल्प प्रमाण है तो उस दिन पारणा की जायगी, अन्य दिन नहीं।

विवेचन—गणितके अनुसार तिथिका प्रमाण अधिकसे अधिक ६७ घटी और कमसे कम ५४ घटी आता है। ५४ घटी प्रमाणसे अल्प घटी प्रमाण वाली तिथिका हास या क्षय माना जाता है। यद्यपि सूर्योदयकाल में कम ही तिथियाँ ५४ घटी या इससे अधिक मिलेंगी; क्योंकि एक तिथिकी समाप्ति होनेपर दूसरी तिथिका आरम्भ हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक तिथिका मान गणितसे ६० घटी नहीं आता

है, जिससे सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयकाल तक एक ही तिथि रह सके। कर्माकर्मां ऐसा भी देखा जाता है कि मध्यम मानानुसार एक ही दिनमें तीन तिथियाँ भी रह जाती हैं तथा कर्मा दो दिन तक भी एक ही तिथि रह सकती है। आचार्योंने ऊपर इसी तिथि-व्यवस्थाको बतलाया है।

घनतिथि-निर्णयके सम्बन्धमें शंका-समाधान

अत्र संशयं करोति “पञ्चदेवैः प्रायो धर्मेषु कर्मसु” इत्यत्र प्राय इत्यव्ययं कथितम्, तस्य कोऽर्थः, उच्यते देशकालादिभेदात् तिथिमानं ग्राह्यम्।

अर्थ—यहाँ कोई शंका करता है कि पञ्चदेवैरिति का मान छः घटी बतलाते हुए कहा है कि प्रायः धर्मकृत्योंमें इसी तिथिमानको ग्रहण करना चाहिए। यहाँ प्रायः शब्द अव्यय है, इसका क्या अर्थ है? क्या छः घटीसे हीनाधिक प्रमाण भी घटके लिए ग्रहण किया गया है? आचार्य उत्तर देते हैं—देश, काल आदिके भेदसे तिथिमान ग्रहण करना चाहिए, इस बातको दिखलानेके लिए यहाँ प्रायः शब्द ग्रहण किया है। विवेचन—तिथिका मान प्रत्येक स्थानमें भिन्न होता है। अक्षांश और देशान्तरके भेदसे प्रत्येक स्थानमें तिथिका प्रमाण पृथक् होगा। पञ्चांगमें जो तिथिके घटी, पल, विपल आदि लिखे रहते हैं, वे जिस स्थानका पञ्चांग होता है, वहाँके होते हैं। अपने वहाँके घटी, पल निकालनेके लिए देशान्तर-संस्कार करना पड़ता है। इसका नियम यह है कि पञ्चांग जिस स्थानका हो उस स्थानके रेखांशके साथ अपने स्थानके रेखांशका अन्तर कर लेना चाहिए। अंशात्मक जो अन्तर हो उसे चारसे गुणा करनेपर मिनट, सैकण्ड रूप काल आता है। इसका घट्यात्मक काल निकालकर पञ्चांगके घटी, पलोंमें संस्कार कर देनेसे स्थानीय तिथि के घटी, पल निकल आते हैं। संस्कार करनेका नियम यह है कि पञ्चांग-स्थानका रेखांश अधिक हो और अपने स्थानका रेखांश कम हो तो ऋण-संस्कार, और अपने स्थानका रेखांश अधिक तथा पञ्चांग स्थानका रेखांश

कम हो तो धन संस्कार करना चाहिए। उदाहरण—विषयपञ्चानामें शुभ वारको अष्टमीका प्रमाण १० घटी १५ पल दिया है। हमें देखना यह है कि आरामें शुभवारको अष्टमी तिथि कितनी है—

वतारस—पञ्चांग निर्माणका स्थान, का रेखांश ८३।० है और अपने स्थान आगराका रेखांश ८४।४० है। इन दोनोंका अन्तर किया—
(८४।४०) — (८३।०) = १।४०। इसको ४ से गुणा किया— $1.40 \times 4 = 5.60$ मिनट, सैकण्ड आदि। ६ मिनट और ४० सैकण्डके १६ पल ४० विपल हुए। आरामके रेखांशसे पञ्चांगस्थान वतारसका रेखांश कम है, अतः वहाँके तिथ्यादि मानमें धन-संस्कार करना चाहिए। अतः (१०।१५) + (०।१६।४०) = १०।३१।४० अर्थात् आरामें शुभवारको अष्टमी १० घटी ३१ पल ४० विपल हुई। यदि यही तिथि-मान आगरामें निकालना है तो—

आगराका रेखांश ७८।१५ और वतारसका रेखांश ८३।० है, दोनोंका अन्तर किया (८३।०) — (७८।१५) = ४।४५, ४।४५ × ४ = १७।० मिनट। इसके घट्यादि बनाये। ०।४७।३० हुए। इष्ट स्थानका रेखांश पंचांगके रेखांशसे बल्य है, अतः पंचांगके घटी, पलोंमें ऋण संस्कार किया। (१०।१५) — (०।४७।३०) = ९।२७।३०; आगरामें शुभवारको अष्टमी तिथिका प्रमाण ९ घटी २७ पल ३० विपल हुआ। कलकत्तामें अष्टमीका प्रमाण—

कलकत्ताका रेखांश (८८।२४) — वतारसका रेखांश (८३।०) = ५।२४।
५।२४ × ४ = २१।३६। इसका घट्यात्मक मान ५।३।५० हुआ। इसको वतारसके घटी, पलोंमें जोड़ा

१०।१५

०।५३।५०

११।८।५० तिथिका मान कलकत्तामें हुआ।

अपने स्थानके तिथिमानको निकालनेके लिए नीचे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंके रेखांश दिये जाते हैं। जिससे कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थानके पञ्चांग परसे अपने वहाँके तिथिमानको निकाल सकता है।

रेवांश-बोधक सारिणी

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेवांश-देशांश
१	अजमेर	राजपूताना	७४°४२
२	अमरावती	बरार	७७°४७
३	अम्बाला	पंजाब	७६°५२
४	अमरोहा	यू० पी०	७८°३१
५	अमृतसर	पंजाब	७४°४८
६	अयोध्या	यू० पी०	८२°१९
७	अलवर	राजपूताना	७६°३८
८	अलीगढ़	यू० पी०	७८°६
९	अहमदाबाद	बम्बई	७२°४०
१०	आगरा	यू० पी०	७८°१५
११	आरा	बिहार	८४°४०
१२	आसाम	आसाम	९३°०
१३	इटारसी	सी० पी०	७०°५१
१४	इन्दौर	मध्यभारत	७५°५०
१५	इलाहाबाद	यू० पी०	८१°५०
१६	उज्जैन	मवालिपर स्टेट	७५°४३
१७	उदयपुर	राजपूताना	७३°४३
१८	कटनी	सी० पी०	८०°२७
१९	काठियावाड़	गुजरात	७१°०
२०	कर्णाटक	दक्षिण भारत	७८°०
२१	कराँची	सिन्ध	६७°४
२२	कल्याण	बम्बई	७३°१०
२३	कलकत्ता	बांगाल	८८°२४
२४	काञ्चीवरम्	मद्रास	७९°४५
२५	कानपुर	यू० पी०	८०°२४

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेवांश-देशांश
२६	कारकल	मद्रास	७९°४०
२७	कालीकट	"	७५°५९
२८	किशनगढ़	जैसलमेर	७०°४७
२९	किशनगढ़	राजपूताना	७४°५५
३०	कोटा राज्य	राजपूताना	७५°५२
३१	कोल्हूर	मद्रास	७४°५३
३२	कोल्हापुर	"	७४°१६
३३	खण्डवा	सी० पी०	७६°२३
३४	खुरजा	यू० पी०	७७°५०
३५	गया	बिहार	८५°०
३६	मवालिपर	मवालिपर	७८°१०
३७	गाजियाबाद	यू० पी०	७७°२८
३८	गाजीपुर	"	८३°३५
३९	गुजरात	गुजरात	७२°३०
४०	गुजरानवाला	पंजाब	७४°१४
४१	गोरखपुर	यू० पी०	८३°२४
४२	गोहाटी	आसाम	९१°४७
४३	चटगाँव	बांगाल	९२°५३
४४	चिदम्बरम्	मद्रास	७९°४४
४५	चुनार	यू० पी०	८२°५६
४६	छपरा	बिहार	८४°४७
४७	छोटानागपुर	"	८५°०
४८	जबलपुर	सी० पी०	७९°५९
४९	जैपुर राज्य	राजपूताना	७५°५२
५०	जैसलमेर राज्य	"	७०°५७
५१	जोधपुर राज्य	"	७३°४

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
५२	जौनपुर	यू० पी०	८२°४४'
५३	झालरापाटन	राजपूताना	७६°१२'
५४	झाँसी	यू० पी०	७८°३७'
५५	टाँक राज्य	राजपूताना	७५°५०'
५६	ट्रावंकूर	मद्रास	७७°०'
५७	डाल्टेनगंज	बिहार	८४°१०'
५८	डोराइस्माइलखो	पंजाब	७०°५२'
५९	डोरागाजीखो	"	७०°५२'
६०	ढाका	बंगाल	९०°२६'
६१	तिरुपती	मद्रास	७९°२०'
६२	त्रिचनपल्की	"	७८°४६'
६३	तंजौर	"	७९°१०'
६४	देहली	देहली	७७°१२'
६५	देहरादून	यू० पी०	७८°५५'
६६	दौलताबाद	हैदराबाद	७५°१५'
६७	धौलपुर राज्य	राजपूताना	७७°५३'
६८	नागपुर	सी० पी०	७९°९'
६९	नासिक	बम्बई	७३°५०'
७०	पटना	बिहार	८५°१३'
७१	पानीपत	पंजाब	७७°१'
७२	पूना	बम्बई	७२°५५'
७३	प्रतापगढ़	राजपूताना	७४°४०'
७४	फतेहपुर	"	७५°२०'
७५	फतेहपुर	यू० पी०	७७°४२'
७६	फर्रुखाबाद	"	७९°३७'
७७	फलटन	बम्बई	७४°२९'

क्र० सं०	नाम नगर	प्रान्त	रेखांश-देशांश
७८	फिरोजपुर	पंजाब	७४°४०'
७९	फैजाबाद	यू० पी०	८२°१२'
८०	बड़ौच	बम्बई	७३°०'
८१	बड़ौदा	"	७३°३०'
८२	बद्रीनाथ	यू० पी०	७९°३२'
८३	बनारस	"	८३°०'
८४	बम्बई	बम्बई	७२°५४'
८५	बर्धा	सी० पी०	७८°३९'
८६	बरात	"	७७°०'
८७	बरेली	यू० पी०	७९°३०'
८८	बलिया	"	८४°११'
८९	बस्ती	"	८२°४६'
९०	बहाराईच	"	८१°३८'
९१	बिमलीपट्टम	मद्रास	८३°३०'
९२	बिलासपुर	सी० पी०	८२°१६'
९३	बोकानेर	राजपूताना	७३°२'
९४	बुंदेलखंड	सी० पी०	८०°०'
९५	बून्दी	राजपूताना	७५°४१'
९६	बैंगलोर	मैसूर	७७°३८'
९७	भरतपुर राज्य	राजपूताना	७७°३०'
९८	भागलपुर	बिहार	८७°२'
९९	भावनगर	बम्बई	७२°११'
१००	मुसावल	"	७५°४७'
१०१	मेलसा	मवालिपर	७७°५१'
१०२	मोपाल	सी० पी०	७७°६६'
१०३	मथुरा	यू० पी०	७७°४४'

क्र० सं०	नाम नगर	ग्रान्त	रेखांश-देशांश
१०४	मद्रास	मद्रास	८०°१७
१०५	मनीपुर	आसाम	८५°३०
१०६	मदुरा	मद्रास	७८°१०
१०७	महोबा	यू० पी०	७९°५५
१०८	मालवा	मध्यभारत	७५°३०
१०९	मिरजापुर	यू० पी०	८२°२
११०	मुजफ्फरनगर	"	७७°४४
१११	मुजफ्फरपुर	विहार	८५°२७
११२	मुर्शिदाबाद	बंगाल	८८°१९
११३	मुरादाबाद	यू० पी०	७८°४९
११४	मुरार	ग्वालियर	७८°११
११५	मुज्जान	पंजाब	७१°३१
११६	मेरठ	यू० पी०	७७°४५
११७	मैगलूर	मद्रास	७४°५३
११८	मैनपुरी	यू० पी०	७९°३
११९	मैसूर	मैसूर	७६°४२
१२०	मल्लाम	मध्यभारत	७५°७
१२१	राजकोट	बम्बई	७०°५६
१२२	राजनादगाँव	सी० पी०	८१°५
१२३	रायगढ़	"	८३°२६
१२४	रायपुर	"	८१°४१
१२५	रावलपिण्डी	पंजाब	७३°६
१२६	राँची	विहार	८५°२३
१२७	रङ्गकी	यू० पी०	७७°५३
१२८	रहेलखण्ड	"	७९°०
१२९	लखनऊ	"	८०°५९

क्र० सं०	नाम नगर	ग्रान्त	रेखांश-देशांश
१३०	ललितपुर	यू० पी०	७८°२८
१३१	लङ्कर	ग्वालियर	७८°१०
१३२	लाहौर	पंजाब	७४°२६
१३३	लुधियाना	"	७५°५४
१३४	विजागापट्टम	मद्रास	७३°२०
१३५	विजयनगर	"	७६°३०
१३६	व्यावर	भारवाड	७४°२१
१३७	झाहजहाँपुर	यू० पी०	७९°२७
१३८	झिमला	पंजाब	७७°१३
१३९	झिवापुरी	ग्वालियर	७७°४४
१४०	अनिनगर	काश्मीर	७४°५१
१४१	सतारा	बम्बई	७४°१
१४२	सहारनपुर	यू० पी०	७७°२३
१४३	सागर	सी० पी०	७८°५०
१४४	सांगली	बम्बई	७४°३६
१४५	सिरोही	राजपूताना	७२°५४
१४६	सिलहट	आसाम	९१°५४
१४७	सिलीगुड़ी	बंगाल	८८°२५
१४८	सिवनी	सी० पी०	७९°३५
१४९	सूरत	बम्बई	७२°५२
१५०	सोलापुर	"	७५°५६
१५१	तुन्बली	"	७२°१२
१५२	हैदराबाद	दक्षिणभारत	७८°३०
१५३	होशंगाबाद	सी० पी०	७०°४५

मुकुटसप्तमी व्रत और निर्दोषसप्तमी व्रतोंका स्वरूप
 मुकुटसप्तमी तु श्रावणशुक्लसप्तम्येव प्राह्य, नान्या
 तस्याम् आदिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य मुनिशुव्रतस्य च पूजां

विधाय कण्ठे मालारोपः । शीर्षमुकुटञ्च कथितमागमे । भाद्र-
पदशुक्लासप्तमीव्रतमागमे निर्दोषसप्तमीव्रतं कथितम् । सप्त-
वर्षावधिर्यावत् अनयोः व्रतयोः विधानं कार्यम् ।

अर्थ—श्रावणशुक्ला सप्तमीको ही मुकुट सप्तमी कहा जाता है, अन्य किसी महीनेकी सप्तमीका नाम मुकुट सप्तमी नहीं है । इसमें आदिनाथ अथवा पादर्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथका पूजन कर जयमाला-
को भगवान्‌का आशीर्वाद समझकर गलेमें धारण करना चाहिए । इस व्रतको आगममें शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत भी कहा गया है ।

भाद्रपद शुक्ला सप्तमीके व्रतको आगममें निर्दोष सप्तमी व्रत कहा जाता है । इस व्रतमें भी भगवान्‌ पादर्वनाथकी पूजा करनी चाहिए । सात वर्षतक इन दोनों व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिए । पश्चात् उद्यापन करना चाहिए ।

विवेचन—आगममें श्रावण शुक्ला सप्तमी और भाद्रपद शुक्ला सप्तमी इन दोनों तिथियोंके व्रतका विधान मिलता है । श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथिके व्रतको मुकुटसप्तमी या शीर्षमुकुट सप्तमी कहा गया है । इस तिथिको व्रत करनेवालेको पृष्ठी तिथिसे ही संयम ग्रहण करना चाहिए । पृष्ठी तिथिको प्रातःकाल भगवान्‌की पूजा, अभिषेक करके पुका-
शन करना चाहिए । मध्याह्नकालके सामायिकके पश्चात् भगवान्‌ की प्रतिमा या गुरुके सामने जाकर संयमपूर्वक व्रत करनेका संकल्प करना चाहिए । चारों प्रकारके आहारका त्याग सोलह प्रहरके लिए भोजनके समय ही कर देना चाहिए ।

सप्तमीको प्रातःकाल सामायिक करनेके पश्चात् नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर पूजा-पाठ, स्वाध्याय, अभिषेक आदि क्रियाओंको करना चाहिए । पादर्वनाथ और मुनिसुव्रतनाथकी पूजा करनेके उपरान्त जय-
मालाको अपने गलेमें धारण करना चाहिए । मध्याह्नमें पुनः सामायिक करना चाहिए । अपराह्नमें चिन्तामणि पादर्वनाथ स्तोत्रका पाठ करना चाहिए । सन्ध्याकालमें सामायिक, आत्मचिन्तन और देवदर्शन आदि

क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए । तीनों बारकी सामायिक क्रियाओंके अनन्तर “ओं ह्रीं श्रीपादर्वनाथ नमः”, “ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रत-
नाथाय नमः” इन दोनों मन्त्रोंका जाप करना आवश्यक है । इस मन्त्रका रातमें भी एक जाप करना चाहिए । अष्टमीको पूजन, अभिषेक और स्वाध्यायके अनन्तर उपर्युक्त मन्त्रोंका जाप कर एकशन करना चाहिए । इस प्रकार सात वर्षों तक मुकुटसप्तमी व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापनकर व्रतकी समाप्ति करनी चाहिए ।

निर्दोष सप्तमी व्रत भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको करना चाहिए । इस व्रतमें पृष्ठी तिथिसे संयम ग्रहण करना चाहिए । इस व्रतकी समाप्ति विधि मुकुटसप्तमीके ही समान है, अन्तर इतना है कि इसमें रात भी जागरणपूर्वक व्यतीत की जाती है अथवा रातके पिछले प्रहरमें अल्प निद्रा लेनी चाहिए । “ओं ह्रीं ह्रीं सर्वविघ्ननिवारकाय श्री शान्तिनाथस्वामिने नमः स्वाहा” इस मन्त्रका जाप करना होगा । कषाय, राग-द्वेष-मोह आदि विकारोंका भी त्याग करना अनिवार्य है, इस व्रतको इस प्रकार करना चाहिए जिससे किसी भी प्रकारका दोष नहीं लगे । आत्मपरिणामोंको निर्मल और विशुद्ध रखनेका प्रयास करना चाहिए । इस व्रतकी अवधि भी सात वर्ष है, पश्चात् उद्यापन कर छोड़ देना चाहिए ।

श्रावण द्वादशी व्रतका स्वरूप

श्रावणद्वादशीव्रतस्तु भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां तिथौ क्रियते ।
अस्य व्रतस्यावधिः द्वादशवर्षपर्यन्तमस्ति । उद्यापनानन्तरं व्रत-
समाप्तिर्भवति ।

अर्थ—श्रावणद्वादशी व्रत भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको किया जाता है । यह व्रत बारह वर्ष तक करना पड़ता है । उद्यापन करनेके उपरान्त व्रत की समाप्ति की जाती है ।

विवेचन—श्रावण द्वादशी व्रतके दिन भगवान्‌ वासुपुण्य स्वामीकी पूजा, अभिषेक और स्तुति की जाती है । नियन्त्रैमिचिक पूजा-पाठोंके

अनन्तर गात्रे-वाजेके साथ भगवान् वासुपुत्र स्वामीको पूजा करनी चाहिए। इस व्रतमें चार वार—तीनों सन्ध्याओं और रातमें लगभग दस वजे 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं कर्तुं श्रीवासुपुत्रजिनेन्द्राय नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। प्रायः इस द्वादशी तिथिको श्रवण नक्षत्र भी पड़ता है, इसी कारण इस व्रतका नाम श्रवणद्वादशी पड़ा है। क्योंकि यह द्वादशी श्रवण नक्षत्रसे युक्त होती है। इस व्रतकी सामान्य विधि अन्य व्रतोंके समान ही है, परन्तु विशेष यह है कि यदि श्रवण नक्षत्र त्रयोदशीको पड़ता हो या एकादशीमें ही आ जाता हो तथा द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका अभाव हो तो द्वादशीके व्रतके साथ श्रवण नक्षत्रके दिन भी व्रत करना चाहिए। यों तो प्रायः द्वादशी तिथिको श्रवण आ ही जाता है। ऐसा बहुत कम होता है, जब श्रवण एक दिन आगे या एक दिन पीछे पड़ता है। द्वादशी तिथि व्रतके लिए छह घटी प्रमाण होनेपर ही प्राज्ञ है।

यदि कभी ऐसी परिस्थिति आवे कि श्रवण द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र न मिले, तो उस समय अस्तकालीन तिथि भी ग्रहण की जा सकती है। द्वादशीको प्रातःकालमें श्रवण नक्षत्रका होना आवश्यक नहीं है, किन्तु भी समय द्वादशी और श्रवणका योग होना चाहिए। ज्योतिष-शास्त्रमें भाद्रपद शुक्ल द्वादशी और श्रवण नक्षत्रके योगको बहुत श्रेष्ठ बताया है। इसका कारण यह है कि श्रवण मासमें पूर्णिमाको श्रवण नक्षत्र पड़ता है तथा भाद्रपद मासमें पूर्णिमाको भाद्रपद नक्षत्र। द्वादशी श्रवण से संयुक्त होकर विशेष पुण्यकाल उत्पन्न करती है, क्योंकि श्रवण नक्षत्र मासवाली पूर्णिमाके पश्चात् प्रथम वार द्वादशीके साथ योग करता है, चन्द्रमा नीच राशिसे आगे निकल जाता है और अपनी उच्च राशिकी ओर बढ़ता है। द्वादशी तिथिको यों तो अनुराधा नक्षत्र श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु भाद्रपद मासमें श्रवण ही श्रेष्ठतम बताया गया है। इस कारण श्रवणसे संयुक्त द्वादशी कल्याणप्रद, पुण्यकारक और जीवन मार्गमें गति देनेवाली होती है। अपनी मासान्तकी पूर्णिमाके संयोगके पश्चात् श्रवण

प्रथम वार जिस किसी तिथिसे संयोग करता है, वही तिथि श्रेष्ठ, पुण्योत्पादक और मंगलप्रद मानी जाती है। श्रवणकी यह स्थिति भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको ही आती है, अतः यह व्रत महान् पुण्यको देनेवाला बताया गया है।

श्रवणद्वादशी व्रतका माहात्म्य जैनियोंमें भी बहुत अधिक माना गया है। इस व्रतको प्रायः सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपनी सौभाग्य-वृद्धि, सन्तान-प्राप्ति तथा अपनी ऐहिक मंगल-कामनासे करती हैं। इस व्रतकी व्यवधि बारह वर्ष तक मानी गयी है, बारह वर्ष तक विधिपूर्वक व्रत करनेके उपरान्त व्रतका उद्यापन करना चाहिए।

मुकुटसप्तमी, निर्दोषसप्तमी और श्रवणद्वादशी ये सब व्रत वर्षोंमें एक वार ही किये जाते हैं। जो तिथियाँ इनके लिए निश्चित की गयी हैं, उन-उन तिथियोंमें ही उन्हें सम्पन्न करना चाहिए। श्रवणद्वादशी व्रतके दिन वासुपुत्र भगवान्के पंचकल्याणकोंका चिन्तन करना चाहिए।

जिनरात्रिव्रतका स्वरूप

जिनरात्रिव्रतं फाल्गुनकृष्णप्रतिपदामारभ्य कृष्णपक्षचतुर्दश्यामुपवासाः वा केवलं तस्यामेवोपवास्त एवं नववर्षाणि यावत् वा चतुर्दशवर्षाणि।

अर्थ—जिनरात्रिव्रतमें फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ कर चतुर्दशी पर्यन्त उपवास करने चाहिए। प्रत्येक उपवासके बीचमें एक दिन पारणा करनी चाहिए। अथवा केवल फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको ही उपवास करना चाहिए। इस व्रतकी अवधि ९ वर्ष या १४ वर्ष प्रमाण है। अर्थात् प्रथम विधिसे करनेपर नौ वर्षके अनन्तर उद्यापन करना चाहिए और द्वितीय विधिसे करनेपर चौदह वर्षके पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—जिनरात्रि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—प्रथम मान्यताके अनुसार यह व्रत फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। प्रथम उपवास प्रतिपदाका करनेके उपरान्त द्वितीयाको पारणा,

तृतीयाको उपवास, चतुर्थीको पारणा, पञ्चमीको उपवास, षष्ठीको पारणा, सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नौमीको उपवास, दशमीको पारणा, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा एवं त्रयोदशी और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। इस प्रकार नौ वर्ष तक पालनकर व्रतका उद्यापन कर देना चाहिए।

दूसरी मान्यता यह है कि केवल फाल्गुन वद्री चतुर्दशीको उपवास करे, मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का पञ्चमृत अभिषेक करे तथा अष्ट-द्रव्यसे त्रिकाल पूजन करे। तीनों समय त्रियमलः सामायिक और स्वाध्याय करे। रात्रिको धर्मध्यान पूर्वक जागरण सहित व्यतीत करे। 'ओं ह्रीं त्रिकाल-चतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः स्वाहा' इस मन्त्रका जाप रातको करना चाहिए तथा बृहत्स्वयंभूस्तोत्रका पाठ भी करना चाहिए। रात्रिके पूर्वाह्णमें आलोचनापाठ पढ़ना, मध्यभागमें मन्त्रका जाप करना और अन्तिम भागमें सहस्र नामका स्मरण करना चाहिए। यह विधि विशेष रूपसे प्राय है, सामान्य विधि सभी व्रतोंमें समान की जाती है, जिससे कयाप और विक-थाप घटती हैं। उपवासके अगले दिन अतिथिको आहार करनेके उपरान्त स्वयं आहार ग्रहण करना तथा सुपात्रोंको चारों प्रकारका दान देना चाहिए। इस प्रकार १४ वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करना चाहिए। इस दूसरी विधिके अनुसार व्रत वर्षमें एक बार ही किया जाता है।

सुक्तावली व्रतका स्वरूप

सुक्तावल्यास्तु नवोपवासाः भाद्रपदे शुक्ला सप्तमी, आश्विने कृष्णाष्टमी, त्रयोदशी, आश्विने शुक्ला एकादशी, कार्तिके कृष्णा द्वादशी, कार्तिके शुक्ला तृतीया, शुक्ला एकादशी, मार्गशीर्षे कृष्णाकादशी, शुक्लपक्षे तृतीया चेति नवोपवासाः स्युः।

अर्थ—सुक्तावली व्रतमें नौ उपवास प्रतिवर्ष किये जाते हैं। पहला उपवास भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको, दूसरा आश्विन कृष्णाष्टमीको, तीसरा आश्विन कृष्णा त्रयोदशीको, चौथा आश्विन शुक्ला एकादशीको, पाँचवाँ

कार्तिक कृष्णा द्वादशीको, छठवाँ कार्तिक शुक्ला तृतीयाको, सातवाँ कार्तिक शुक्ला एकादशीको, आठवाँ मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चादशीको और नौवाँ मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको करना चाहिए। उपवासके पहले और अगले दिन एकाशन करना चाहिए। यह लघु सुक्तावली व्रतकी विधि है। बृहत् सुक्तावली व्रतमें कुल २५ उपवास और ९ पारणाएँ की जाती हैं।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

रत्नत्रयं तु भाद्रपदचैत्रमाघशुक्लपक्षे च द्वादस्यां धारणं चैकभक्तं च त्रयोदश्यादिपूर्णिमान्तमष्टमं कार्यम्, तदसौवे यथाशक्ति काञ्जिकादिकं; दिनवृद्धौ तदधिकतया कार्यम्; दिन-हानौ तु पूर्वदिनमारभ्य तदन्तं कार्यमिति पूर्वक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय व्रत भाद्रपद, चैत्र और माघ मासमें किया जाता है। इन महीनोंके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रत धारण करना चाहिए तथा एकाशन करना चाहिए। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाका उप-वास करना; तीन दिनका उपवास करनेकी शक्ति न हो तो कांजी आदि लेना चाहिए। रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें किसी तिथिको वृद्धि हो तो एक दिन अधिक व्रत करना एवं एक तिथिको हानि होनेपर एक दिन पहलेसे लेकर व्रत समाप्ति पर्यन्त उपवास करना चाहिए। यहाँपर भी तिथिहानि और तिथियुद्धिमें पूर्व क्रम ही समझना चाहिए।

विवेचन—रत्नत्रय व्रतके लिए सर्वप्रथम द्वादशीको शुद्धभाषसे खानादि क्रिया करके स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर जिनेन्द्र भगवान्‌का पूजन-अभिषेक करे। द्वादशीको इस व्रतकी धारणा और प्रतिपदाको पारणा होती है। अतः द्वादशीको एकाशनके पश्चात् चारों प्रकारके आहारका त्याग कर, विकथा और कयायोंका त्याग करे। त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमाको प्रोषध तथा प्रतिपदाको जिनाभिषेकादिके अनन्तर किसी अतिथि या किसी दुःखित-बुभुक्षितको भोजन कराकर एक बार आहार ग्रहण करे। अपने घरमें ही अथवा चैत्यालयमें जिन-विम्बके निकट रत्नत्रय यन्त्रकी भी स्थापना करे।

द्वादशीसे लेकर प्रतिपदा तक पाँचों ही दिनोंको विशेष रूपसे धर्म-ध्यान पूर्वक व्यतीत करे। प्रतिदिन त्रैकालिक सामायिक और रत्नत्रय विधान करना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें 'ॐ ह्रीं सम्प्रदर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतको १३ वर्ष तक पालनेके उपरान्त उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी उल्लट विधि है, इतनी शक्ति न हो तो बेल करे तथा आठ वर्ष व्रत करके उद्यापन कर देना चाहिए। यह व्रतकी मध्यम विधि है। यदि इस मध्यम विधिको सम्पन्न करनेकी भी शक्ति न हो तो त्रयोदशी और पूर्णिमाको एकाशन एवं चतुर्दशीको प्रोषण करना चाहिए। यह जघन्य विधि है, इस विधिसे किये गये व्रतका तीन या पाँच वर्षके बाद उद्यापन कर देना चाहिए। इस व्रतमें पाँच दिन तक शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

रत्नत्रय व्रतके दिनोंमें तिथिवृद्धि या तिथिहास हो तो पहलेके समान व्रत व्यवस्था समझनी चाहिए। एक तिथिकी वृद्धि होनेपर एक दिन अधिक और एक तिथिकी हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना चाहिए। व्रत तिथिका प्रमाण छः घटी ही उदयकालमें ग्रहण किया जायगा।

अनन्तव्रत विधि

अनन्तव्रते तु एकादश्यामुपवासः द्वादश्यामेकभक्तं त्रयो-दश्यां काञ्चिकं चतुर्दश्यामुपवासस्तदभावे यथा शक्तिस्तथा कार्यम्। दिनहानिवृद्धौ स एव क्रमः समर्च्यः।

अर्थ—अनन्त व्रतमें माद्रपद शुक्ल एकादशीको उपवास, द्वादशी-को एकाशन, त्रयोदशीको काञ्चिक—छाछ अथवा छालमें जौ, बाजराके आटेको मिलाकर महेरी—एक प्रकारकी कढ़ी बनाकर लेना और चतुर्दशीको उपवास करना चाहिए। यदि इस विधिके अनुसार व्रत पालन करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके अनुसार व्रत करना चाहिए। तिथि-हानि या तिथि-वृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिए अर्थात् तिथि-

हानिमें एक दिन पहलेसे और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करना होता है।

विवेचन—अनन्तव्रत भादों सुदी एकादशीसे आरम्भ किया जाता है। प्रथम एकादशीको उपवास कर द्वादशीको एकाशन करे अर्थात् मौन सहित स्वाद रहित प्रासुक भोजन ग्रहण करे, सात प्रकारके गृहस्थोंके अन्तरायका पालन करे। त्रयोदशीको जिनाभिषेक, पूजन-भाटके पश्चात् छाल या छालमें जौ, बाजराके आटेसे बनाई गई महेरी—एक प्रकारकी कढ़ीका आहार ले। चतुर्दशीके दिन प्रोषण करे तथा सोना, चाँदी या—रेशम-सूतका अनन्त वनाये, जिसमें चौदह गाँठ लगाये।

प्रथम गाँठ पर ऋषभनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह तीर्थंकरोंके नामों का उच्चारण, दूसरी गाँठ पर सिद्धपरमेश्वरके चौदह गुणोंका चिन्तन, तीसरी पर उन चौदह मुनियोंका नामोच्चारण जो मति-श्रुत-अवधिज्ञानके धारी हुए हैं, चौथी पर अर्हन्त भगवान्‌के चौदह देवकृत अतिशयोक्ता चिन्तन, पाँचवीं पर जिनवाणोंके चौदह पृथ्वीका चिन्तन, छठवीं पर चौदह गुणस्थानोंका चिन्तन, सातवीं पर चौदह मार्गणाथोंका स्वरूप, आठवीं पर चौदह जीवसमासोंका स्वरूप, नौवीं पर गंगादि चौदह नदियोंका उच्चारण, दसवीं पर चौदह राज् प्रमाण ऋषि लोकका स्वरूप, ग्यारहवीं पर चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका, बारहवीं पर चौदह स्वर्णका, तेरहवीं पर चौदह तिथियोंका एवं चौदहवीं गाँठ पर आभ्यन्तर

१. तपसिद्धि, विनयसिद्धि, संयमसिद्धि, चारित्र्यसिद्धि, श्रुताभ्यास, निश्चयारमक भाव, ज्ञान, बल, दर्शन, वीर्य, सुश्रमत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलुप्त, अत्यावाधत्व।

२. गृहपति, सेनापति, क्षिप्ती, पुरोहित, स्त्री, हाथी, घोड़ा, चक्र, अस्त्र (तलवार), छत्र, दण्ड, माण, चर्म, काँकिणी। काँकिणी रत्नकी विशेषता यह होती है कि इससे कठोरसे कठोर वस्तु पर भी लिखा जा सकता है, इससे सूर्यके प्रकाशसे भी तेज प्रकाश निकलता है।

वौद्दह प्रकारके परिग्रहसे रहित मुनियोंका चिन्तन करना चाहिह। इस प्रकार अनन्तका निर्माण करना चाहिह।

पूजा करनेकी विधि यह है कि शुद्ध कोरा धड़ा लेकर उसका प्रक्षाल करना चाहिए। पश्चात् उस धड़े पर चन्दन, केसर आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप करना तथा उसके भीतर सोना, चाँदी या ताँबेके सिक्के रखकर समोद वस्त्रसे ढक देना चाहिए। धड़े पर पुष्पमालाएँ डालकर उसके उपर थाली प्रक्षाल करके रख देनी चाहिए। थालीमें अनन्त व्रतका माड़ना और यन्त्र लिखना, पश्चात् चौबीसी एवं पूर्वोक्त विधिसे गाँठ दिया हुआ अनन्त विराजमान करना होता है। अनन्तका अभिषेककर चन्दनकेपराका लेप किया जाता है। पश्चात् आदिनाथसे लेकर अनन्तनाथ तक चौदह भगवानोंकी स्थापना यज्ञपर की जाती है। अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेके उपरान्त 'ॐ ह्रीं अर्हन्ममः अनन्तकेशलिने नमः' इस मन्त्रको १०८ बार पढ़कर पुष्प चढ़ाना चाहिए अथवा पुष्पोंसे जाप करना चाहिए। पश्चात् 'ॐ ह्रीं क्ष्वां हं स अमृतवाहिने नमः', अनेन मन्त्रेण सुरभिमुद्रां धृत्वा उत्तमगन्धोदकप्रोक्षणं कुर्यात्' अर्थात् 'ॐ ह्रीं क्ष्वां हं स अमृतवाहिने नमः' इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर सुरभिमुद्रा द्वारा सुगन्धित जलसे अनन्तका भस्मचन करना चाहिए। अनन्तर चौदहों भगवानोंकी पूजा करनी चाहिए। अनन्तर

‘ॐ’ हा अनन्ततीर्थंकराय हां हीं हूं ह्रं ह्रः आसि आ उसाय
नमः सर्वशान्तिं तृष्टिं सौभाग्यमाप्नुयोरप्यैश्वर्यमप्यसिद्धिं कुरु
कुरु सर्वविघ्नविनाशनं कुरु कुरु स्वाहाः’ इस मन्त्रसे प्रत्येक
भगवान्की पूजाके अनन्तर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। ‘ॐ हीं हूं स अनन्त-
केवलीभगवान् धर्मश्रीवल्लभुरारोप्यैश्वर्याभिर्वृद्धिं कुरु कुरु
स्वाहा’ इस मन्त्रको पढ़कर अनन्त पर चढ़ाये हुए पुष्पोंकी आशिका
पूर्व ‘ॐ हीं अर्हन्ममः सर्वकर्मवन्धनविमुक्ताय नमः स्वाहा’
इस मन्त्रको पढ़कर शान्ति जलकी आशिका लेनी चाहिए। इस व्रतमें
‘ॐ हीं अर्हं हूं स अनन्तकेवलिने नमः’ मन्त्रका जाप करना चाहिए।
दूर्णिमाको पूजनके पश्चात् अनन्तको गले या भुजाओं धारण करे।

अनन्तव्रत हिन्दुओंमें भी प्रचलित है। उनके यहाँ कहा गया है कि “अनन्तस्य विष्णोः राधाधनार्य” अर्थात् विष्णु भगवान्की आराधनाके लिए अनन्त चतुर्दशी व्रत किया जाता है। बताया गया है कि भादों सुदी चौदसके दिन स्नानादिके पश्चात् अर्थात् दूर्वा, तथा शुद्ध सूतसे बने और हलदीमें रंगे हुए चौदह गाँठके अनन्तको सामने रखकर हवन किया जाता है। तत्पश्चात् अनन्तदेवका ध्यान करके शुद्ध अनन्तको दाहिनी मुजामें बाँधते हैं। इस व्रतमें प्रायः एक समय अलौना—चिना नमक—मीठा भोजन किया जाता है।

अनन्तद्वयके सम्बन्धमें यह कथा प्रायः लोकमें प्रचलित है कि जिस समय युधिष्ठिर अपना सब राजपाट हारकर वनवास कर रहे थे, उस समय कृष्ण उनसे मिलने आये। उनकी कष्टकथा सुनकर श्रीकृष्णने उन्हें अनन्त-व्रत करनेकी राय दी। श्रीकृष्णके आदेशानुसार युधिष्ठिर अनन्त व्रत कर अपने समस्त कष्टोंसे मुक्ति पा गये। इस व्रतके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है।

जैनताममें प्रतिपादित अनन्त व्रतकी हिन्दुओंके अनन्त व्रतसे तुलना करनेपर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह व्रत हिन्दुओंमें जैनोंसे ही लिया गया है तथा जैनोंके विरतित विधिपूर्ण व्रतका यह संक्षिप्त और सरल अंश है ।

क्षेपमाला और षोडशकारण व्रतोंकी विधि

मेघमालापोडशकारणञ्चैतद्द्वयं समानं प्रतिपदिन्मेव द्वयोः
रारम्भं मुख्यतया करणीयम् । एतावान् विशेषः पोडशकारणे तु
आश्विनकृष्णा प्रतिपदा एव पूर्णाभिषेकाय गृहीता भवति, इति
नियमः । कृष्णपञ्चमी तु नाग्न एव प्रसिद्धा ।

अर्थ—मेघमाला और षोडशकारण व्रत दोनों ही समान हैं। दोनोंका कारण भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदसे होता है। परन्तु षोडशकारण व्रतमें दत्तनी विशेषता है कि इसमें पूर्णभिषेक आश्विन-कृष्णा प्रतिपदको होता है, ऐसा नियम है। कृष्णा पञ्चमी तो नामसे ही प्रसिद्ध है।

विवेचन—सोलह कारण व्रत प्रसिद्ध ही है। मेघमाला व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर आश्विन वदी प्रतिपदा तक ३१ दिन तक किया जाता है। व्रतके प्रारम्भ करनेके दिन ही जिनालयके आँगनमें सिंहासन स्थापित करे अथवा कलशको संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर, थालमें जिनविम्ब स्थापित कर महाभिषेक और पूजन करे। इवेत वस्त्य पहने, इवेत ही चन्द्रोवा चौंवे, मेघधारके समान १००८ कलशोंसे भगवान्का अभिषेक करे। पूजापाठके पश्चात् 'ओं ह्रीं पञ्चपरमोष्ठिभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिए।

मेघमाला व्रतमें सात उपवास कुल किये जाते हैं और २४ दिन एकाशन करना होता है। तीनों प्रतिपदाओंके तीन उपवास, दोनों अष्टमियोंके दो उपवास एवं दोनों चतुर्दशियोंके दो उपवास इस प्रकार कुल सात उपवास किये जाते हैं। इस व्रतको पाँच वर्ष तक पालन करनेके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है। इस व्रतकी समाप्ति प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णा प्रतिपदाको होती है। सोलह कारणका व्रत भी प्रतिपदाको समाप्त किया जाता है, परन्तु इतनी विशेषता है कि सोलह कारणका संयम और शील आश्विनकृष्णा प्रतिपदा तक पालन करना पड़ता है तथा पञ्चमीको ही इस व्रतकी पूर्ण समाप्ति समझी जाती है। यद्यपि पूर्ण अभिषेक प्रतिपदाको ही हो जाता है, परन्तु नाममात्रके लिए पञ्चमी तक संयमका पालन करना पड़ता है।

अष्टाहिका व्रतकी विधि

अष्टाहिकाव्रतं कार्तिकफाल्गुनापादमासेषु अष्टमीमारभ्य पूर्णिमान्तं भवतीति। वृद्धावधिकतया भवत्येव, मध्यतिथिह्रस्विसंश्रमतीतो व्रतं कार्यं भवतीति; तद्यथा सप्तम्यामुपवासोऽष्टम्यां पारणा नवम्यां काञ्चिकं दशम्यामवमोदार्थमित्येको मार्गः सुगमः सूचितः जघन्यापेक्षया तदादिदिनमारभ्य। पूर्णिमान्तं कार्यः पष्ठोपवासः पद्मदेववाक्यसमादरैः भव्यपुण्डरीकैः।

अन्यथाक्रियमाणे सति व्रतविधिर्नश्येत्। एवं सावधिकानि व्रतानि समाप्तानि।

अर्थ—अष्टाहिका व्रत कार्तिक, फाल्गुन और आपाद मासोंके शुक्ल पक्षांमें अष्टमीसे पूर्णिमा तक किया जाता है। तिथिबुद्धि हो जानेपर एक दिन अधिक करना पड़ता है। व्रतके दिनोंके मध्यमें तिथिहास होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है। जैसे मध्यमें तिथिहास होनेसे सप्तमीको उपवास, अष्टमीको पारणा, नवमीको काञ्ची-छाछ, दशमीको ऊनोदर, एकादशीको उपवास, द्वादशीको पारणा, त्रयोदशीको नीरस, चतुर्दशीको उपवास, एवं शक्ति होनेपर पूर्णिमाको उपवास, शक्तिके अभावमें ऊनोदर तथा प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। यह सरल और जघन्य विधि अष्टाहिका व्रतकी है। व्रतकी उत्कृष्ट विधि यह है कि अष्टमीसे पष्ठोपवास अर्थात् अष्टमी, नवमीका उपवास दशमीको पारणा, एकादशी और द्वादशीको उपवास त्रयोदशीको पारणा एवं चतुर्दशी और पूर्णिमाको उपवास और प्रतिपदाको पारणा करनी चाहिए। श्री पद्मप्रभदेवके वचनोंका आदर करनेवाले भव्यजीवाँको उक्त विधिसे व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार वतायी हुई विधिसे जो व्रत नहीं करते हैं, उनकी व्रतविधि दूषित हो जाती है और व्रतका फल नहीं मिलता। इस प्रकार सावधि व्रतोंका निरूपण पूरा हुआ।

विवेचन—कार्तिक, फाल्गुन और आपाद मासोंके शुक्लपक्षमें अष्टमीसे पूर्णिमा तक आठ दिन यह व्रत किया जाता है। सप्तमीके दिन व्रतकी धारणा करनी होती है। प्रथम ही श्री जिनन्द्र भगवान्का अभिषेक-पूजन सम्पन्न किया जाता है, तत्पश्चात् गुल्फे पास, यदि गुरु न हो तो जिनविम्बके सम्मुख निम्न संकल्पको पढ़कर व्रत ग्रहण किया जाता है।

व्रत ग्रहण करनेका संकल्प—

ओं अथ भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मते मासानां मासोऽन्तमे मासे आपादमासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ.....वासरे.....

जन्मद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.....प्रदेशे.....नगरे एतत् अवसर्पिणीकालावसानवतुर्देशप्राभृतमामिमानिवसकल्लोकत्रय - वहारे श्रीगौतमस्वामिप्रयोगिकमहागण्डलेश्वरसमाचरितसन्मार्गवशे.....वीरनिर्वाणसंवत्सरे अष्टमहाप्रातिहार्यादिशोभित-श्रीमदहंस्वरप्रतिमासन्निधौ अहम् आधाह्निकाव्रतस्य सकलं करिष्ये । अस्य व्रतस्य समाप्तिपर्यन्तं मे सावद्यत्यागः गृहस्था-श्रमजन्यारम्भपरिग्रहादीनामपि त्यागः ।

सप्तमी तिथिसे प्रतिपदा तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना आवश्यक होता है, भूमिपर शयन, संचित पदार्थोंका त्याग, अष्टमीको उपवास, रात्रिको जागरण आदि क्रियाएँ की जाती हैं ।

अष्टमी तिथिको दिनमें नन्दीश्वर द्वीपका मण्डल मौड़कर अष्टदश्यांसे पूजा की जाती है । पूजा-पाठके अनन्तर नन्दीश्वर व्रतकी कथा पढ़नी चाहिये । 'ओं ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपजितालयस्थजिनविम्बेभ्यो नमः' इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिये । नवमीको 'ॐ ह्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञायै नमः' इस महामन्त्रका जाप ; दशमीको 'ॐ ह्रीं त्रिलोकसागरसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप ; एकादशीको 'ओं ह्रीं चतुर्मुखसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप ; द्वादशीको 'ओं ह्रीं स्वर्गसोपान-लक्षणसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप; त्रयोदशीको 'ओं ह्रीं सिद्धचक्राय-संज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप ; चतुर्दशीको 'ओं ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप एवं पूर्णमासीको 'ओं ह्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञायै नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिये ।

व्रतकी धारणा और समाप्तिके दिन णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिये । व्रत समाप्तिके दिन निम्न संकल्प पढ़कर सुपाढ़ी-मैसा या नारियल-मैसा चढ़ाकर भगवान्‌को नमस्कार कर घर आना चाहिये—

‘ओं आद्यानाम् आद्ये जन्मद्वीपे भरतक्षेत्रे शुभे श्रावणमासे कृष्णपक्षे अष्ट प्रतिपदायां श्रीमदहंस्वप्रतिमासन्निधौ पूर्वं यद्ब्रतं गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये—अहम् । प्रमादाज्ञानवशात्

व्रते जायमानदेयाः शान्तिमुपयान्ति—ओं ह्रीं इर्वो स्वाहा । श्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु आनन्दमयिकः सदास्तु, समाधिमरणं भवतु, पापविनाशनं भवतु—ओं ह्रीं अस्मि आ उ सा य नमः । सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

दैवसिक व्रतोंका वर्णन

दैवसिकानि कानि भवन्ति ? त्रिमुखशुद्धिद्वारावलोकन-जिनपूजापात्रदानव्रतप्रतिमायोगादीनि व्रतानि भवन्ति ।

अर्थ—दैवसिक कौन कौन व्रत हैं ? त्रिमुखशुद्धि, द्वारावलोकन, जिनपूजा, पात्रदान, प्रतिमायोग आदि दैवसिक व्रत हैं ।

त्रिमुखशुद्धि व्रतकी विधि

किंनाम त्रिमुखशुद्धिव्रतम् ? त्रिमुखशुद्धिव्रते पात्रदानानन्तरं भोजनग्रहणं भवति । तद्भावे, आहारस्याप्यन्नाव पयःमुखशुद्धिसंज्ञको नियमो दैवसिको भवति ।

अर्थ—त्रिमुखशुद्धि व्रत किसे कहते हैं ? आचार्य उत्तर देते हैं कि त्रिमुखशुद्धि व्रतमें पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण किया जाता है । यदि द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्रकी प्राप्ति न हो तो उस दिन आहार नहीं लिया जाता है । यह त्रिमुखशुद्धि संज्ञक नियम दिनमें ही किया जाता है, अतः यह दैवसिक व्रत कहलाता है ।

विवेचन—त्रिमुखशुद्धि व्रतका वास्तविक अभिप्राय यह है कि पात्रदानके अनन्तर भोजन ग्रहण करनेका नियम करना और दिनमें तीनों बार—प्रातः, मध्याह्न और अपराह्णमें द्वारापर खड़े होकर पात्रकी प्रतीक्षा करना तथा पात्र उपलब्ध हो जाने पर आहार दान देनेके उपरान्त आहार ग्रहण करना होता है । यह व्रत कुम्भी भी किया जा सकता है, इसके लिए किसी तिथि या मासका विधान नहीं है । जब तक पात्रदान नहीं दिया जाता है, उपवास करना पड़ता है ।

द्वारावलोकेन व्रत

द्वारावलोकेन व्रते तु दिनयाममर्यादा कार्या, द्वौ यामौ यावत् द्वारमवलोकयामि तावत् सुनिरागतश्चेत् तस्मै आहारं दत्त्वा पश्चादाहारं प्रहीष्यामि । इति द्वारावलोकेन व्रतम् ।

अर्थ—द्वारावलोकेन व्रतमें दो प्रहरोंका नियम करके द्वार पर बड़े होकर सुनिराजके आनेकी प्रतीक्षा करना, यदि इस बीचमें सुनिराज आ जावें तो उन्हें आहार करानेके पश्चात् आहार ग्रहण करना होता है । इस प्रकार द्वारावलोकेन व्रत पूर्ण हुआ ।

विवेचन—द्वारावलोकेन व्रतमें दो प्रहरका नियमकर द्वापर खड़े हो जाना और सुनि या ऐलक, झुल्लकके आनेकी प्रतीक्षा करना । यदि दो प्रहरोंके मध्यमें सुनिराज आ जायें तो उन्हें आहार करा देनेके पश्चात् आहार ग्रहण करना । सुनिराजके न मिलनेपर ऐलक या झुल्लकको आहार करा देना होता है ।

इस व्रतमें दो प्रहरका ही नियम रहता है, यदि दो प्रहरतक कोई पात्र नहीं मिले तो स्वयं भोजन कर लेना चाहिये । दो प्रहरतक निरन्तर पात्रकी प्रतीक्षा करना पड़ती है, विधिपूर्वक नवयामाभक्तिसे युक्त होकर पात्रको भोजन कराया जाता है । पात्रके न मिलनेपर किसी साधनी भाईको भी भोजन करानेके उपरान्त इस व्रतवालेको आहार ग्रहण करना चाहिये । यदि कोई भी उपयुक्त अतिथि उस दिन न मिले तो दीन-दुःशिक्षितोंको ही आहार कराना उचित होता है । यद्यपि दो प्रहरके अनन्तर व्रतकी मर्यादा पूरी हो जाती है, फिर भी किसी भी प्रकारके पात्रको आहार करानेके उपरान्त ही भोजन ग्रहण करना चाहिये ।

जिनपूजाव्रत, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति

व्रतोंका स्वरूप

जिनपूजाप्यष्टद्वयैः यदा विधानेन परिपूर्णा भवेत् तदाहारं प्रहीष्यामि, इति संकल्पः । जिनपूजाविधानाख्यव्रतम् । पयमेव

जिनदर्शननियमस्तथा गुरुभक्तिनियमस्तथा शास्त्रभक्तिनियमश्च कार्यः ।

अर्थ—इस प्रकारका नियम करना कि विधिपूर्वक अष्टद्वयोंसे जिनपूजा पूर्ण करनेपर आहार ग्रहण करूँगा, जिनपूजा विधान व्रत है । इसी प्रकार जिनदर्शन करनेका नियम करना, गुरुभक्ति करनेका नियम करना एवं शास्त्रभक्ति—स्वाध्याय करनेका नियम करना, जिनदर्शन, गुरुभक्ति एवं शास्त्रभक्ति व्रत हैं ।

विवेचन—अच्छे कार्य करनेके नियमको व्रत कहते हैं, व्रतको इस परिभाषाके अनुसार जिनपूजा, जिनदर्शन, गुरुभक्ति, शास्त्रस्वाध्याय आदि के नियमोंको भी व्रत कहा गया है । इन व्रतोंमें इतना ही संकल्प करना पड़ता है कि पूजा, दर्शन, गुरुभक्ति या शास्त्र स्वाध्यायको सम्पन्न करके भोजन ग्रहण करूँगा । अपने संकल्पके अनुसार उपयुक्त धार्मिक कृत्योंको सम्पन्न करनेपर आहार ग्रहण किया जाता है । इन व्रतोंके लिए कोई तिथि या मास निश्चित नहीं है, बल्कि सदा ही देवपूजा, देवदर्शन, गुरुभक्ति और स्वाध्याय जैसे धार्मिक कार्योंको करना चाहिये ।

आगममें जीवन भरके लिए ग्रहण किये गये व्रतकी यम संज्ञा और अल्पकालिक व्रतकी नियम संज्ञा बतायी गयी है । जो जीवन भरके लिए उक्त धार्मिक कृत्योंका नियम करनेमें असमर्थ हों उन्हें कुछ समयके लिए अवश्य नियम करना चाहिये । यों तो श्रावकमात्रका कर्त्तव्य है कि वह अपने दैनिक पट् कर्मोंका पालन करे । देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानके कार्य प्रत्येक गृहस्थके लिए करणीय हैं, अतः इनका नियम जीवन भरके लिए कर लेना आवश्यक है । आचार्यने इन कार्योंके किये बिना कोई श्रावक नहीं कहा जा सकता है । आचार्यने इन आवश्यक कर्त्तव्योंको व्रत संज्ञा इसीलिए बतलायी है कि जो सर्वदाके लिए इनका पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझते हैं वे भी इनके पालन करनेकी ओर झुकें । जब एक बार इन कृत्योंकी ओर प्रवृत्ति हो जाय तथा आत्मा अन्तर्मुखी हो जाय तो फिर इन व्रतोंके पालनेमें कोई भी कठिनाई नहीं है ।

दैनिक पदकर्म करनेसे आत्मामें अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है तथा आत्मा शुभोपयोग रूप परिणतिकी प्राप्त होता है। बात यह है कि आत्मा-की तीन प्रकारकी परिणतियाँ होती हैं—शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग रूप। चैतन्य, आनन्द रूप आत्माका अनुभव करना, इसे स्वतन्त्र अलण्ड द्रव्य समझना और पर-मदार्थोंसे इसे सर्वथा पृथक् अनुभव करना शुद्धोपयोग है। कर्मावशो मन्द करके अर्थात् भक्ति, दान, पूजा, वैराग्य, परोपकार आदि कार्य करना शुभोपयोग है। पूजा, दर्शन, स्वाध्याय आदिसे उपयोग—जीवकी प्रवृत्ति विशेष शुद्ध नहीं होती है, शुभ रूप हो जाती है। तीव्र कर्माद्योपयोग परिणाम, विषयोंमें प्रवृत्ति, तीव्र विषयानुराग, आतं परिणाम, असत्य भाषण, हिंसा, अपकार आदि कार्य अशुभोपयोग हैं। जिनपूजाव्रत, जिनदर्शनव्रत, गुरुभक्तिक्रमपूर्व स्वाध्याय व्रत करनेसे जीवको शुभोपयोगकी प्राप्ति होती है तथा कालान्तरमें शुद्धोपयोग भी प्राप्त किया जा सकता है। और आत्मबोध भी प्राप्त होता है, जिससे राग-द्वेष, मोह आदि दूर किये जा सकते हैं। अहंकार और ममकार जिनके कारण इस जीवको संसारमें अनारिदिकालसे भ्रमण करना पड़ रहा है, दूर किये जा सकते हैं। अतः उपर्युक्त व्रतोंका अवश्य पालन करना चाहिए।

पात्र-दान और प्रतिमायोग व्रत का स्वरूप

प्रतिदिन पात्रदान कार्यम्। यदि पात्रदान न स्यात्सदा रसपरित्यागः कार्यः। प्रतिमायोगः कायोत्सर्गादिकः यथाशक्ति नियमः दैवसिकः कार्यः इत्यादीनि दैवसिकव्रतानि।

अर्थ—प्रतिदिन पात्रदान करनेका नियम लेना पात्रदान व्रत है। यदि प्रतीक्षा और द्वारापेक्षण करनेपर भी पात्र नहीं मिले तो रसपरित्याग करना चाहिए।

शक्तिके अनुसार कायोत्सर्ग आदिका नियम दिनके लिए लेना प्रतिमायोग व्रत है। इस प्रकार दैवसिक व्रतोंका पालन करना चाहिए। उपर्युक्त त्रिमुखशुद्धि आदि सभी व्रत दैवसिक हैं।

विवेचन—गृहस्थको अपनी अर्जित सम्पत्तिमेंसे प्रतिदिन दान देना आवश्यक है। जो गृहस्थ दान नहीं देता है, पूजा-प्रतिष्ठामें सम्पत्ति ध्वंस नहीं करता है, उसकी सम्पत्ति निरर्थक है। धनकी साधकता यमोक्तिके लिए धन व्यय करनेमें ही है, भोगके लिए ध्वंस करनेमें नहीं। अपना उदर पोषण तो शूकर-हृकर सभी करते हैं, यदि मनुष्य जन्म पाकर भी हम अपने ही उदर-पोषणमें लगे रहे तो हम शूकर-हृकरसे भी बदतर हो जायेंगे। जो केवल अपना पेट भरनेके लिए जीवित है, जिसके हाथमें दान-पुण्यके कार्य कभी नहीं होते हैं, जो मानव सेवामें कुछ भी ध्वंस नहीं करता है, दिन-रात जिसकी तृष्णा धन एकत्रित करनेके लिए बढ़ती जाती है, ऐसे व्यक्तिकी लाशको कुत्ते भी नहीं खाते हैं। अतएव प्रत्येक गृहस्थके लिए यह नितास्त आवश्यक है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक दान दे तथा कुछ तपश्चर्या भी करे।

वास्तविक तप तो इच्छाओंका रोकना ही है, या दिनको कुछ समयकी अत्यधिक कर्मात्सर्ग करना भी तप है। अभ्यासके लिए कर्मोत्सर्ग आदिका भी नियम करना तथा अपनी भोगोपभोगी लालसाओंको घटाना जीवनको उन्नतिकी ओर ले जाना है।

नैशिक व्रत

नैशिकानि चतुराहारविवर्जनं स्त्रीसेवनाविवर्जनं रात्रिभुक्तिविवर्जनञ्चेत्यादीनि; खाद्य-स्वाद्य-लेहापेयभेदानि चतुर्विधान्य-शानानि त्याज्यानि, चैतत् निशाभुक्तिपरित्यागं व्रतं विधीयते। स्त्रीसेवनाविवर्जनं च यावज्जीवनं यमः नियमश्चेति मासदिनसंख्याभवः कर्तव्यः। रात्रिभक्त्यते तु दिवसे स्त्रीसेवनाविवर्जनं यमानियमविभागतया करणीयम्। भोगोपभोगपरिसमाप्त्यते तु तान्बुलपुष्पमालाशौल्याभूषणवस्त्रादीनां नियमः सदैव निशि कार्यः, एवं नैशिकनियम इत्यादीनि नैशिकानि व्रतानि।

अर्थ—नैशिक व्रतोंमें रातमें चारों प्रकारके आहारोंका त्याग एवं

खीसेवनका त्याग करना होता है। अहार चार प्रकारके हैं—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय। जिस भोजनको दूँतोंसे काटकर खाते हैं वह खाद्य, स्वाद्यमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंके सूँघनेका त्याग करना, लेह्यमें सभी प्रकारके चाटे जानेवाले पदार्थोंका त्याग और पेयमें सभी प्रकारके पेय पदार्थोंका त्याग किया जाता है। रात्रिभोजन त्यागमें चारों प्रकारके भोजनके अलावा दिवाभैशुनका भी त्याग करना आवश्यक है। जीवनभरके भलिपू त्याग करना यम और कुल मास या दिनोंके लिए त्याग देना नियम है।

भोगोपभोगपरिमाण व्रतमें पान, पुष्पमाला, शय्या, आभूषण और वस्त्र आदिका नियम करना पड़ता है कि अमुकरात्रिको अमुक संख्यामें भोगोपभोगकी वस्तुओंका सेवन करूँगा, सोपका त्याग है। इस प्रकार व्रत करना भी नैशिक व्रत है। इस प्रकार ये नैशिक व्रत कहे गये हैं।

मासिकव्रत

मासिकानि पञ्चमासचतुर्दशी-पुष्यचतुर्दशी-शीलचतुर्दशी-रूपचतुर्दशी-कनकावली-रत्नावली-पुष्पाञ्जलिदिधिविधानकार्य-निर्जरादिनि व्रतानि भवन्ति ॥

अर्थ—मासिक व्रतोंमें पञ्चमासचतुर्दशी, पुष्यचतुर्दशी, शीलचतुर्दशी, रूपचतुर्दशी, कनकावली, रत्नावली, पुष्पाञ्जलि, लडिविधान और कार्यनिर्जरा इत्यादि व्रत हैं।

पञ्चमास चतुर्दशी व्रत, शीलचतुर्दशी और

रूपचतुर्दशी व्रत

पञ्चमासचतुर्दशी तु शुचिश्चावणमाद्राधिवनकार्तिकमास-शुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं कार्या, ज्ञेया एषा पञ्चमासचतुर्दशी; दृढती मासं मासं प्रति चतुर्दशीशुक्ला सा मासचतुर्दशी तां पर्यन्तं कार्या; पञ्चोपवासाः। व्यतिरेकेण शीलचतुर्दशीरूपचतुर्दशी-

मारभ्य कार्तिकशुक्लचतुर्दशीपर्यन्तं दशोपवासाः कार्या, भवन्ति।

अर्थ—पञ्चमासचतुर्दशी आपाद, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको व्रत करना कहलाता है। इस व्रतमें प्रत्येक महीनेमें एक ही शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको उपवास करना पड़ता है। पाँच ही उपवास किये जाते हैं। विशेष रूपसे आपाद, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन महीनोंमें दोनों ही चतुर्दशीयोंको उपवास करना; इस प्रकार उक्त पाँच महीनोंमें दश उपवास करना तथा रूपचतुर्दशी और शीलचतुर्दशीके उपवासोंको भी शामिल करना पञ्च चतुर्दशी व्रत है। आपाद मासकी अष्टमिकाकी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी और श्रावण मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको रूपचतुर्दशी कहते हैं। पञ्चमासचतुर्दशीका प्रारम्भ शीलचतुर्दशीसे किया जाता है।

विवेचन—मासिक व्रत उन व्रतोंको कहा जाता है, जो वर्षमें कई महीने अथवा एक-दो महीनेतक किये जायें। मासिक व्रत प्रायः महीनेमें एक बार ही किये जाते हैं। कुछ व्रत ऐसे भी हैं, जिनके उपवास एक महीनेकी कई तिथियोंमें करने पड़ते हैं। आचार्यने ऊपर पञ्चमास चतुर्दशीका स्वरूप बतलाते हुए दो मान्यताएँ रखी हैं। प्रथम मान्यतामें आपादसे लेकर कार्तिक तक पाँच महीनोंकी शुक्ला चतुर्दशीको उपवास करनेका विधान किया है। इस मान्यताके अनुसार कुल पाँच उपवास करने पड़ते हैं।

दूसरी मान्यताके अनुसार उपर्युक्त पाँच महीनोंमें दस उपवास करनेको पञ्चमासचतुर्दशी व्रत बताया गया है। इन दस उपवासोंमें शीलव्रत चतुर्दशी और रूप चतुर्दशीके व्रत भी शामिल कर लिये गये हैं। आपाद सुदी चतुर्दशीको शीलचतुर्दशी कहा जाता है, इस दिन शीलव्रतका पालन करना तथा उपवास करना महान् पुण्यका कारण माना गया है। शीलव्रतकी महत्ताको दिखलानेके कारण ही इस व्रतको शीलचतुर्दशी व्रत कहा गया है। शील चतुर्दशीके करनेवालेको 'शौ'

हों निरतिचारशीलव्रतधारकेभ्योऽनन्तमुत्तिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। इस व्रतके करनेवालेको त्रयोदशीसे शील व्रत धारण करना होता है और पूर्णमासी तक निरतिचार रूपसे व्रतका पालन करना होता है।

रूप चतुर्दशी आवाण सुदी चतुर्दशीको कहते हैं। इस चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करना पड़ता है तथा भगवान् आदिनाथका पूजन-अभिषेक कर उन्हींके अतिशय रूपका दर्शन करना चाहिए। अथवा किसी भी तीर्थंकरकी प्रतिमाका पूजन-अभिषेक कर उनके रूपका दर्शन करना चाहिए। इस व्रतकी भी पूर्णिमाको पारणा करनी पड़ती है। इसके लिए 'ओं हों शक्रिषभाय नमः' मन्त्रका जाप करना होता है।

कनकावली व्रतकी विशेष विधि

कनकावल्यां तु आश्विनशुक्ले प्रतिपत्, पञ्चमी, दशमी; कार्तिककृष्णपक्षे द्वितीया, षष्ठी, द्वादशी चेति; एवं एतद्विषयेषु सर्वेषु मासेषु चोपवासाः द्विसप्ततिः कार्यः, इयं द्वादशमासमवा कनकावली। कस्यापि मासस्य शुक्लकृष्णपक्षयोः पटु-पवासाः कार्यः, एषा सावधिका मासिका कनकावली।

अर्थ—कनकावलीमें आश्विनशुक्ला प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छः उपवास करने चाहिए, इसी प्रकार सभी महीनोंमें कुल ७२ उपवास किये जाते हैं। यह बारह महीनोंमें किये जानेवाला कनकावली व्रत है। किसी भी महीनेमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षकी उपर्युक्त तिथियोंमें छः उपवास करना सावधिक मासिक कनकावली व्रत है।

विवेचन—यद्यपि कनकावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है, परन्तु यहाँपर इतनी विशेषता समझनी चाहिए कि आचार्य सिंहनदीने श्रावणसे आरम्भ न कर आश्विनमाससे व्रतारम्भ करनेका विधान किया है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पञ्चमी और दशमी तथा

कार्तिक मासमें कृष्णपक्षकी द्वितीया, षष्ठी और द्वादशी इस प्रकार छः उपवास किये जाते हैं। आचार्यके मतानुसार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी तीन तिथियाँ तथा प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी तीन तिथियाँ लेनी चाहिए। मास गणना अमावस्यासे लेकर अमावस्यातक ली जाती है। एक वर्षमें कुल ७२ उपवास करने पड़ते हैं। मासिक कनकावलीमें केवल छः उपवास किये जाते हैं। मास गणना अमान्त ली जाती है।

रत्नावलीव्रतकी विधि

कनकावली चैवमेव रत्नावली, तस्यामाश्विनशुक्ले तृतीया पञ्चमी, अष्टमी, कार्तिककृष्णे द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी एवं एतद्विषयेषु सर्वेषु मासेषु द्विसप्तिरुपवासाः कार्यः। प्रत्येक मासे पटुपवासाः भवन्ति। इयं द्वादशमासमवा रत्नावली। सावधिका मासिका रत्नावली न भवति।

अर्थ—कनकावली व्रतके समान रत्नावली व्रत भी करना चाहिए। इसमें भी आश्विन शुक्ला तृतीया, पञ्चमी, अष्टमी, तथा कार्तिक कृष्णा द्वितीया, पञ्चमी और अष्टमी इस प्रकार प्रत्येक महीनेमें छः उपवास करने चाहिए। बारह महीनोंमें कुल ७२ उपवास उपर्युक्त तिथियोंमें ही करने पड़ते हैं। यह द्वादश मासवाली रत्नावली है। सावधिक मासिक रत्नावली व्रत नहीं होता है।

विवेचन—कनकावलीके समान रत्नावली व्रतमें भी मास गणना अमावस्यासे ग्रहण की गयी है। अमान्तसे लेकर दूसरे अमान्त एक मास माना जाता है। व्रतका आरम्भ आश्विनके अमान्तके पश्चात् किया जाता है तथा कनकावली और रत्नावली दोनों व्रतोंके लिए वर्ष-गणना आश्विनके अमान्तसे ग्रहण की जाती है। रत्नावली व्रत मासिक नहीं होता है, वार्षिक ही किया जाता है। प्रत्येक महीनेमें उपर्युक्त तिथियोंमें छः उपवास होते हैं, इस प्रकार एक वर्षमें कुल ७२ उपवास हो जाते हैं। उपवासके दिन अभिषेक, पूजन आदि कार्य पूर्ववत् ही

किये जाते हैं। 'ओं ह्रीं त्रिकालसम्बन्धिविचतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो नमः' इस मन्त्रका जाप इन दोनों व्रतोंमें उपवासके दिन करना चाहिए।

पुष्पाञ्जलि व्रत की विधि

पुष्पाञ्जलिस्तु भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीमारभ्य शुक्लान्तव-
मीपर्यन्तं यथाशक्ति पञ्चोपवासाः भवन्ति ॥

अर्थ—पुष्पाञ्जलिब्रत भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी से नवमी पर्यन्त किया जाता है। इसमें पाँच उपवास अपनी शक्तिके अनुसार किये जाते हैं।

विवेचन—भादों सुदी पञ्चमीसे नवमी तक पाँच दिन पंचमेर की स्थापना करके चौबीस तीर्थकरोंकी पूजा करनी चाहिए। अभिषेक भी प्रतिदिन किया जाता है। पाँच अष्टक और पाँच जयमाल पढ़ी जाती है। 'ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धश्रीतिजिनालयेभ्यो नमः' मन्त्र का प्रतिदिन तीन बार जाप किया जाता है। यदि शक्ति हो तो पाँचों उपवास, अन्यथा पञ्चमीको उपवास, शेष चार दिन रस त्याग कर एकशन करना चाहिए। रात्रि जागरण विषय-कथायोंको अल्प करनेका प्रयत्न एवं आरम्भ-परिग्रहका त्याग करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। विकथाओंको कहने और सुननेका त्याग भी इस व्रतके पालनेवालेको करना आवश्यक है। इस व्रतका पालन पाँच वर्षातक करना चाहिए, तत्पश्चात् उद्यापन करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

लब्धिविधान व्रतकी विधि

लब्धिविधानस्तु भाद्रपदमाघचैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्य तृती-
यापर्यन्तं दिनत्रयं भवति। दिनहानौ तु दिनमेकं प्रथमं कार्यम्,
द्विद्वौ स एव क्रमः स्मर्तव्यः ॥

अर्थ—भाद्रपद, माघ और चैत्र मासमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक तीन दिन पर्यन्त लब्धिविधान व्रत किया जाता है। तिथि हानि होनेपर एक दिन पहलेसे व्रत करना होता है और तिथि वृद्धि

होनेपर पहलेवाला क्रम अर्थात् वृद्धिगत तिथि छः घटीसे अधिक हो तो एक दिन व्रत अधिक करना चाहिए।

विवेचन—भादों, माघ और चैत्र सुदी प्रतिपदासे तृतीयातक लब्धिविधान व्रत करनेका नियम है। इस व्रतकी धारणा पूर्णिमाको तथा पारणा चतुर्थीको करनी होती है। यदि शक्ति हो तो तीनों दिनोंका अष्टमोपवास करनेका विधान है। शक्तिके अभाव में प्रतिपदाको उप-
वास, द्वितीयाको उत्तोदर एवं तृतीयाको उपवास या कांजी—छाछ या छाछसे निर्मित महेरी अथवा माड़भात लेना होता है। व्रतके दिनोंमें महावीर स्वामीकी प्रतिमाका पूजन, अभिषेक किया जाता है तथा 'ॐ ह्रीं महावीरस्वामिने नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन तीन बार किया जाता है। त्रिकाल सामायिक करनेका भी विधान है। रात्रि जाग-
रण तथा स्तोत्र पठ, भजन-गान आदि भी व्रतके दिनोंकी रात्रियोंमें किये जाते हैं।

आवश्यकता पड़ने अथवा आकुलता होनेपर मध्यरात्रिमें अल्प निद्रा ली जा सकती है। कपाय और आरम्भ परिग्रहको घटाना, विकथाओंको चर्चाका त्याग करना एवं धर्मध्यानमें लीन होना आवश्यक है।

कर्मनिर्जर व्रत की विधि

कर्मनिर्जरस्तु भाद्रपदशुक्लमेकादशीमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं
भवति। हानिद्विद्वौ च स एव क्रमः ज्ञातव्यः।

अर्थ—कर्मनिर्जराव्रत भादों सुदी एकादशीसे लेकर भादों सुदी चतुर्दशीतक चार दिन किया जाता है। तिथि हानि और तिथि वृद्धि होने-
पर पूर्वोक्त क्रम ही व्रतकी व्यवस्थाके लिए ग्रहण किया गया है।

विवेचन—कर्मनिर्जरा व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ प्रचलित हैं—
प्रथम मान्यता भादों सुदी एकादशीसे लेकर चतुर्दशी तक व्रत करनेकी है। दूसरी मान्यताके अनुसार आपाद सुदी चतुर्दशी, आपण सुदी चतु-
र्दशी, भादों सुदी चतुर्दशी एवं आश्विन सुदी चतुर्दशी इन चार तिथियों-

को व्रत करने की है। ये चारों उपवास क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपके हेतु एक वर्षके भीतर किये जाते हैं। व्रतके दिनोंमें सिद्ध भगवान्की पूजा की जाती है तथा 'ॐ ह्रीं सामस्तकर्मरहिताय सिद्धाय नमः' अथवा 'ॐ ह्रीं साम्यदर्शन-ज्ञानचारित्रतपसे नमः' मन्त्रका जाप व्रतके दिनोंमें तीन बार करना होता है। नित्यपूजा, चतुर्विंशतिजिनपूजा, विशेषतः सिद्धपूजाके अनन्तर 'ॐ ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलंकतया सांसिद्धिकात्यन्तिकविशुद्धविशेषाविर्भावामिव्यक्तप्रमोक्तप्रस-म्यक्त्वादिगुणशुभकविशिष्टाम् उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकचित्त्व-मत्कारमात्रपरमन्त्रपरमानन्दैकमयी' निष्पीतानन्तपर्यायतयैकं किञ्चिदनवरतास्त्राद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरसभरतिर्भरं कौ-टस्थमधिष्ठितां परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्या-धितिष्ठतां मङ्गललोकोत्तमशरणभूतानां सिद्धपरमोष्ठिनां स्तवनं करोमि" मन्त्रको पढ़ दोनों हाथोंसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए सिद्धि पर-मेष्ठीकी स्तुति करना चाहिये।

ज्ञानपञ्चीसी और भावनापञ्चीसी व्रतोंकी विधि

ज्ञानपञ्चविंशतिव्रते एकादश्यामेकादशोपवासाः चतुर्दश्यां चतुर्दशोपवासाः कार्याः भवन्ति। मतान्तरेण दशभ्यां दशो-पवासाः पूर्णिमायां पञ्चदशोपवासा कार्याः भावनापञ्चविंशति-व्रते तु प्रतिपद्यामेकोपवासः द्वितीयायां द्वौ उपवासौ, तृती-यायां त्रय उपवासाः, पञ्चम्यां पञ्चोपवासः, षष्ठ्यां षडुपवासाः अष्टम्यामष्टौ उपवासाः कार्याः भवन्ति। मन्तान्तरेण दशभ्यां दशोपवासाः पञ्चम्यां पञ्चोपवासाः, अष्टम्यामष्टौ उपवासाः प्रतिपद्यां द्वौ उपवासौ, कार्याः भवन्ति। एषा सम्यक्त्वपञ्च-विंशतिका मूढत्रयं मददृष्ट्याष्टौ अनायतनानि पट् अष्टौ शंकादयो दोषाः, इत्येषां निवारणार्थं कर्त्तव्या। उपवासादीनां मासतिथ्या-दिर्नियमः न ग्राह्यः।

अर्थ—ज्ञानपञ्चीसी व्रतमें एकादशी तिथिके न्यारह उपवास और चतुर्दशी तिथिके चौदह उपवास किये जाते हैं। मतान्तरसे इस व्रतमें दशमीके दस उपवास और पूर्णिमाके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

भावनापञ्चीसी व्रतमें प्रतिपदामें एक उपवास, द्वितीया तिथिमें दो उपवास, तृतीयामें तीन उपवास, पञ्चमी तिथिमें पाँच उपवास, षष्ठी तिथिमें छः उपवास और अष्टमी तिथिमें आठ उपवास किये जाते हैं। मतान्तरसे दशमी तिथिमें दस उपवास, पञ्चमीमें पाँच उपवास, अष्टमी-में आठ उपवास और प्रतिपदामें दो उपवास किये जाते हैं। यह भावना-पञ्चीसी व्रत तीन मूढता, आठ मद, छः अनायतन और आठ शंकादि दोषोंको दूर करनेके लिए किया जाता है। इसके उपवास करनेके लिए तिथि, मास आदिका नियम ग्राह्य नहीं है। अर्थात् यह व्रत किसी भी मासमें किसी भी तिथिसे प्रारम्भ किया जा सकता है। ज्ञानपञ्चीसी और भावनापञ्चीसी दोनों ही व्रतोंमें पञ्चीस-पञ्चीस उपवास किये जाते हैं। प्रथम ज्ञान प्राप्तिके लिए और द्वितीय सम्यग्दर्शनको निर्दोष करनेके लिए किया जाता है।

विवेचन—पञ्चीसी व्रत कई प्रकारसे किये जाते हैं। प्रधान दो प्रकारके पञ्चीसी व्रत हैं—ज्ञानपञ्चीसी और भावना-पञ्चीसी व्रतका उद्देश्य द्वादशांग जिनवाणीकी आराधना है तथा सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति उसका फल है। ज्ञानपञ्चीसी व्रतमें प्रधान रूपसे श्रुतज्ञानकी पूजा तथा श्रुतस्कन्ध यन्त्रका अभिषेक किया जाता है। इस व्रतमें न्यारह अंगोंके ज्ञानके लिए न्यारह एकादशियोंके उपवास और चौदह पृष्ठीके ज्ञानके लिए चौदह चतुर्दशियोंके उपवास किये जाते हैं। उदाहरण—श्रावण सुदी चतुर्दशी-को पहला उपवास, भाद्रपदी एकादशीको दूसरा, भाद्रपदी चतुर्दशीको तीसरा, भाद्रपदी सुदी एकादशीको चौथा, भाद्रपदी सुदी चतुर्दशीको पाँचवाँ, आश्विन वदी एकादशीको छठवाँ, आश्विन वदी चतुर्दशीको सातवाँ, आश्विन सुदी एकादशीको आठवाँ, आश्विन सुदी चतुर्दशीको नौवाँ, कार्तिक वदी एकादशीको दसवाँ, चतुर्दशीको न्यारहवाँ, कार्तिक सुदी एकादशीको

ब्राह्मण, चतुर्दशीको तेरहवाँ, मार्गशीर्ष बदी एकादशीको चौदहवाँ, चतुर्दशीको पन्द्रहवाँ, मार्गशीर्ष सुदी एकादशीको सोलहवाँ, चतुर्दशीको सत्रहवाँ, पौषबदी एकादशीको अठारहवाँ, चतुर्दशीको उन्नीसवाँ, पौषसुदी एकादशीको बीसवाँ, चतुर्दशीको इकीसवाँ, माघबदी एकादशीको बाईसवाँ, चतुर्दशीको तेईसवाँ, माघसुदी चतुर्दशीको चौबीसवाँ और फाल्गुन बदी चतुर्दशीको पचासवाँ उपवास करना होगा। इस व्रतके लिए 'ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गाय नमः' इस मन्त्रका जाप करना होता है। व्रत एक वर्ष या १२ वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् उद्यापन कर दिया जाता है।

भावना-पञ्चमी व्रत सम्पत्स्वकी विधुद्धिके लिए किया जाता है। सम्पद्दर्शनके २५ दोष है—तीन मूढ़ता, छः अनाथतन, आठ मद, तथा शंकादि आठ दोष। तीन तृतीयांशोंके उपवास तीन मूढ़ताओंको दूर करने, छः पण्डितोंके उपवास पट् अनाथतनको दूर करने, आठ अष्टमियोंके उपवास आठ मदोंको दूर करने एवं प्रतिपदाका एक उपवास, द्वितीयांशोंके दो उपवास और पञ्चमियोंके पाँच उपवास इस प्रकार कुल आठ उपवास शंकादि आठ दोषोंको दूर करनेके लिए किये जाते हैं। इस व्रतका बड़ा भारी महत्त्व बताया गया है। यों तो इसके लिए किसी मासका वन्दन नहीं है, पर यह भाद्रपद माससे किया जाता है। इस व्रतका आरम्भ अष्टमी तिथिसे करते हैं। व्रत करनेके एकदिन पूर्व व्रतकी धारणा की जाती है तथा चार महीनोंके लिए शीलव्रत ग्रहण किया जाता है। इस व्रतके लिए 'ओं ह्रीं पञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्पद्दर्शनाय नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन तीन बार उपवासके दिन करना चाहिए। सम्पद्दर्शनकी विधुद्धि करनेके लिए संसार और शरीरसे विरक्ति प्राप्त करना चाहिए। भावना-पञ्चमी व्रतका दूसरा नाम सम्पत्कवपञ्चमी भी है। इस व्रतके उपवासके दिन चैत्यालयके प्रांगणमें एक सुन्दर चौकी या देखलके ऊपर संस्कृत—चन्द्रन, केशर आदिसे संस्कृत कुम्भ चावलोंके पुष्पोंके ऊपर रखकर उसपर एक बड़ा थाल रखना चाहिए। थालमें सम्पद्दर्शनके

गुणोंको अंकित करके मध्यमें पांडुकशिला बनाकर प्रतिमा स्थापित कर देनी चाहिए। चार महीनों तक जबतक कि उपयुक्त तिथियोंके उपवास पूर्ण न जायें, भगवान्का प्रतिदिन पूजन अभिषेक करना चाहिए। प्रत्येक उपवासके दिन अभिषेक पूर्वक पूजन करना आवश्यक है। यदि सम्भव हो तो व्रतसमाप्ति तक प्रतिदिन उपयुक्त मन्त्रका जाप करना चाहिए, अन्यथा उपवासके दिन ही जाप, किया जा सकता है।

नमस्कारपूतीसी व्रतकी विधि

नमस्कारपञ्चविंशत्कायां सप्तम्याः सप्त पञ्चम्याः पञ्च चतुर्दश्याश्चतुर्दश नवम्याः नवोपवासाः कथिताः। एतन्नमोकार-पञ्चविंशत्कमेतदक्षरसमुदायं विमल्यैकैकाक्षरस्योपवासः करणीयः। अस्मिन् व्रते न मासतिथ्यादिको नियमः, केवलां तिथिं प्रपद्य भवतीति तिथिसावधिकानि व्रतानि।

अर्थ—नमस्कारपञ्चविंशत्—नमस्कारपूतीसी व्रतमें सप्तमीके सात उपवास, पञ्चमीके पाँच उपवास, चतुर्दशीके चौदह उपवास और नवमी के नौ उपवास बताये गये हैं। णमोकारमन्त्रमें पैतीस अक्षर होते हैं, एक-एक अक्षरका एक-एक उपवास किया जाता है। इस व्रतके आरम्भ करनेमें किसी मासकी किसी विशेष तिथिका नियम नहीं है। केवल तिथिके अनुसार ही व्रत किया जाता है। इस प्रकार त्रिथि सावधिक व्रतोंका कथन समाप्त हुआ।

विवेचन—णमोकार मन्त्रकी विशेष आराधनाके लिए नमस्कार-पैतीसी व्रत किया जाता है। इस व्रतमें ३५ उपवास करनेका विधान है। सप्तमी तिथिके सात उपवास, पञ्चमी तिथिके पाँच उपवास, चतुर्दशी तिथिके चौदह उपवास एवं नवमी तिथिके नौ उपवास किये जाते हैं। इस व्रतमें उपवासके दिन पञ्चपरमेष्ठिका पूजन और अभिषेक करना होता है। तथा 'ओं ह्रीं णमो अहिहन्ताणं, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं, ओं ह्रीं णमो आहरियाणं, ओं ह्रीं णमो उवव्वायाणं, ओं

हः णमो लोप सव्व साहणं' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। उपवासके पहले और पिछले दिन एकाशन करना होता है।

माससावधिक व्रतोंका कथन

माससावधिकानि ज्येष्ठजिनवरसुत्रचन्दनपृषीनिर्दोषसप्तमी-जिनरात्रिमुक्तावलीरत्नत्रयानन्तमेवमालपोडशकारणशुक्लपञ्च-न्यष्टाहिकादीनि।

अर्थ—माससावधिक ज्येष्ठजिनवर, सुत्रव्रत, चन्दनपृषी, निर्दोष-सप्तमी, जिनरात्रि, मुक्तावली, रत्नत्रय, अनन्त, मेघमाला, शुक्लपञ्चमी और अष्टाहिका आदि हैं।

ज्येष्ठजिनवर व्रतकी विधि

ज्येष्ठकृष्णपक्षे प्रतिपदि ज्येष्ठशुक्ले प्रतिपदि चोपवासः, आपाङ्कणस्य प्रतिपदि चोपवासः, एवमुपवासत्रयं करणीयम्, ज्येष्ठमासस्यावशेषदिवसेष्वेकाशनं करणीयम्, एतद्व्रतं ज्येष्ठजिनवरव्रतं भवति। ज्येष्ठप्रतिपदामारभ्यापाङ्कणप्रतिपत् पर्यन्तं भवति।

अर्थ—ज्येष्ठकृष्णा प्रतिपदा, ज्येष्ठशुक्ला प्रतिपदा और आपाङ्कण प्रतिपदा, इन तीनों तिथियोंमें तीन उपवास करने चाहिए। ज्येष्ठ मासके शेष दिनोंमें एकाशन करना होता है। इस व्रतका नाम ज्येष्ठजिनवर व्रत है। यह ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आपाङ्कण प्रतिपदाको समाप्त होता है।

विवेचन—ज्येष्ठजिनवर व्रत ज्येष्ठके महीनेमें किया जाता है। यह व्रत ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदासे आरम्भ होता है और आपाङ्कण प्रतिपदाको समाप्त होता है। इसमें प्रथम ज्येष्ठवर्दी प्रतिपदाको प्रोपय किया जाता है, पश्चात् कृष्णा पक्षके शेष १४ दिन एकाशन करते हैं। पुनः ज्येष्ठ सुदी प्रतिपदाको उपवास और शेष १४ दिन एकाशन तथा आपाङ्कण वर्दी प्रतिपदाको उपवासकर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है।

ज्येष्ठजिनवर व्रतमें मिष्टीके पाँच कलशोंसे प्रतिदिन भगवान् आदि-नाथका अभिषेक करना चाहिए। 'ओं ह्रीं श्रीज्येष्ठजिनाधिपतये नमः कलशस्थापनं करोमि' इस मन्त्रको पढ़कर कलशोंकी स्थापना की जाती है। पाँच कलशोंमेंसे चार कलशों-द्वारा अभिषेक स्थापना समय ही किया जाता है और एक कलशसे जयमाल पढ़नेके अनन्तर अभिषेक होता है। इस व्रतमें ज्येष्ठजिनवरकी पूजा की जाती है। 'ओं ह्रीं श्रीक्रपमजिनेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना होता है। ज्येष्ठ मासभर तीनों समय सामाधिक करना, ब्रह्मचर्यका पालन एवं शुद्ध और अल्प भोजन करना आवश्यक है।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतकी विधि

जिनगुणसम्पत्तौ तु प्रतिपदः षोडशोपवासाः पञ्चम्याः पञ्चोपवासाः अष्टम्याः अष्टौ उपवासाः दशम्याः दशोपवासाः चतुर्दश्याः चतुर्दशोपवासाः, पष्ठम्याः पष्ठोपवासाः, चतुर्थ्याश्चत्वारः उपवासाः, एवं त्रिपष्टिः उपवासाः भवन्ति। ज्येष्ठमासकृष्णपक्षीयप्रतिपदमारभ्य व्रतं क्रियते यावत्त्रिपष्टिः स्यादेष नियमो नैव ज्ञायते पूर्वोपवासस्यैव श्रुतेऽप्युपदेशदर्शनात्। अन्येषां पृथक्भूतता स्वरचित्सम्भवात्।

अर्थ—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें प्रतिपदाके सोलह उपवास, पञ्चमीके पाँच उपवास, अष्टमीके आठ उपवास, दशमीके दश उपवास, चतुर्दशीके चौदह उपवास, पष्ठीके छः उपवास और चतुर्थीके चार उपवास, इस प्रकार कुल ६३ उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ होता है। ६३ उपवास लगातार किये जायँ, ऐसा नियम नहीं है। जिस तिथिके उपवास किये जायँ उनको पूर्ण करना आवश्यक है, एक तिथिके उपवास पूर्ण हो जानेपर दूसरी तिथिके उपवास स्वेच्छासे किये जा सकते हैं।

विवेचन—जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें ६३ उपवास करनेका विधान है। इसमें षोडशकारणके सोलह उपवास, पञ्च परमेष्ठिके पाँच, अष्ट

प्रातिहार्यके आठ और चौतीस अतिशयो—इस जन्म, इस केवलज्ञान और चौदह देवकृत अतिशयोके चौतीस उपवास किये जाते हैं। यह व्रत ज्येष्ठवदी प्रतिपदासे आरम्भ किया जाता है। ६३ उपवास एक साथ लगातार करनेकी शक्ति न हो तो सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास; जो कि षोडशकारणके व्रत कहे जाते हैं, के करनेके पश्चात् पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, जो कि पञ्च परमेष्ठीके गुणोंकी स्मृतिके लिए किये जाते हैं, करने चाहिए। इन उपवासोंके पश्चात् आठ प्रातिहार्योंकी स्मृतिके लिए आठ अष्टमियोंके आठ उपवास एक साथ तथा चौतीस अतिशयोके, स्मृतिकारक दस दशमियोंके दस उपवास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास और चार चतुर्थियोंके चार उपवास इस प्रकार कुल (१४ + १० + ६ + ४ = ३४) उपवास एक साथ करने चाहिए।

जिनगुणसम्पत्ति व्रतमें उपवासके दिन गृहारम्भका त्याग कर पूजन, अभिषेक करना चाहिए तथा प्रारम्भके सोलह उपवासोंमें 'ओं ह्रीं तीर्थंकरपद्मासये दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणभ्यो नमः' पञ्च परमेष्ठीके उपवासोंमें 'ओं ह्रीं परमपदस्थितभ्यो पञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः' आठ प्रातिहार्योंके उपवासोंमें 'ओं ह्रीं अष्टप्रातिहार्यमण्डिताय तीर्थंकराय नमः' और चौतीस अतिशयोके उपवासोंके लिए 'ओं ह्रीं चतुर्विंशदतिशयसहितभ्यः अर्हद्भ्यः नमः' नन्दोंका जाप किया जाता है। व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करा दिया जाता है।

चन्दन पट्टीव्रतकी विधि

चन्दनपट्ट्यां तु भाद्रपदकृष्णा पट्टी ग्राह्या, पञ्चवर्षाणां यावत् व्रतं भवति, अत्र चन्द्रप्रभस्य पूजाभिषेकं कार्यम्।

अर्थ—चन्दनपट्टी व्रत भादों वदी पट्टीको होता है, छः वर्षतक व्रत किया जाता है। इस व्रतमें चन्द्रप्रभ भगवान्का पूजन, अभिषेक करना चाहिए।

विवेचन—भादों वदी पट्टीको उपवासे धारण करे। चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें भगवान् चन्द्रप्रभका पूजन, अभिषेक करे। छः प्रकारके उत्तम मासुक फलोंसे छः अष्टक चढ़ावे। पणोकार मन्त्रका १०८ बार फूलोंसे जाप करना चाहिए। चारों प्रकारके संघको आहार, औषध, अभय और ज्ञान इन चारों दानोंको देना चाहिए। तीनों काल सामायिक, अभिषेक, पूजन और रात्रिजागरण करना चाहिए। रातको स्तोत्र, भजन, आलोचना एवं प्रार्थनाएँ पढ़ते हुए धर्मध्यान पूर्वक बिताना चाहिए। उपवासके दिन गृहारम्भ, विषय-कषाय और विकषयोंका त्याग करना चाहिए। यह छः वर्षतक किया जाता है।

रोहिणीव्रत करनेकी आवश्यकता

यथा शुक्लकृष्णपक्षयोः पञ्चदशदिनेषु अष्टम्यां चतुर्दश्याञ्चोपवासः तथैव सौभाग्यनिमित्तं स्त्रियः सप्तविंशतिनक्षत्रेषु रोहिण्याख्यनक्षत्रे उपवासं कुर्वन्ति ॥

अर्थ—जिस प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके पन्द्रहपन्द्रह दिनोंमें प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी वृद्धिके लिए सप्ताहस नक्षत्रोंमेंसे रोहिणी नक्षत्रका उपवास करती हैं।

रोहिणीव्रतका फल

रोहिणीव्रतोपवासस्य किं फलमिति चेत्तदुक्तं योगीन्द्रदेवैः—

दीवर्हं दिण्णहं जिणवरहं मोहहु होइ ण ठां ।

अह उववासहिं रोहिणिहिं सोड विपलहु जाइ ॥^१

अर्थ—रोहिणी व्रतके उपवासका क्या फल है? आचार्य योगीन्द्र-देवने फल बतलाते हुए कहा है—

जिनेन्द्र भगवान्को दीप चढ़ानेसे मोहको स्थान नहीं मिलता अर्थात्

१. सावयधम्मदीहा १८८ दूहा, पृ० ५६।

मोह नष्ट हो जाता है तथा रोहिणी व्रतके उपवाससे शोक भी प्रलयको पहुँच जाता है। अभिप्राय यह है कि रोहिणी व्रत करनेसे सभी प्रकारके शोक, दारिद्र्य आदि नष्ट हो जाते हैं।

रोहिणीव्रतकी व्यवस्था

तथा प्रभुदेवैः प्रोक्तं चेति—

यस्मिन् दिने समायाति, रोहिणीं मनोहरम् ।

तस्मिन् दिने व्रतं कार्यं न पूर्वस्मिन् परत्र वा ॥

अर्थ—जिस दिन रोहिणी नक्षत्र हो उसी दिन व्रत करना चाहिए। आगे-पीछे व्रत करनेका कुछ भी फल नहीं होता है। रोहिणी नक्षत्र व्रत प्रत्येक महीनेमें एकबार किया जाता है।

यदा रोहिणी न स्यात् कृत्तिकाशुभशीर्षां स्तः तयोर्मध्ये किं करणीयं स्यादित्याह—काले यदि रोहिणिकायाः प्रोपधः न स्यात्, तदा स निष्फलः स्यात् कालेन विना यथा मेघः।

वामदेवैः प्रोक्तमिदं यावत् कालं भं स्यात् तावत् कालं करोतु भवतकम्, न तु दैवसिक्तानु नियमः प्रोक्तः मुनीश्वरैः ; अर्थात् यावत् रोहिणी तावत् सर्वेषां त्यागः कार्यः। पारणादिने तदुत्तरानन्तरं च पारणा कर्त्तव्या। एतदेव शुक्लपञ्चमीकृष्णपञ्चमीजिनगुणसम्पत्तिज्येष्ठजिनवरकवलचान्द्रायणादयो ज्ञातव्याः। रोहिणी तु त्रिवर्षाः स्यात्, पञ्चवर्षा सप्तवर्षा च संप्रोक्ता वसुनन्द्यादिसूरिभिः ; आदिशब्देन सकलकीर्तिछत्रसेन-सिंहनन्दिमल्लिपेणहरिपेणपद्मदेववामदेवैः संप्रोक्ता ग्राह्याः। अन्येऽप्याधुनिका दामोदरदेवेन्द्रकीर्त्तिहेमकीर्त्यादयश्च ज्ञेयाः।

अर्थ—यदि व्रतके दिन रोहिणी न हो अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका क्षय हो कृत्तिका और श्रुगशीर्ष हों तो क्या करना चाहिए ; इस प्रकारकी शंका उत्पन्न होनेपर आचार्य कहते हैं कि यदि समयपर रोहिणी व्रतका प्रोपध नहीं किया जायगा तो, उसका फल कुछ भी नहीं होगा। जिस

प्रकार असमयपर वर्षा होनेसे उस वर्षासे कुछ भी लाभ नहीं होगा, उसी प्रकार असमयमें व्रत करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता है।

वामदेव आचार्यने भी कहा है कि जब रोहिणी नक्षत्र हो तभी व्रत करना चाहिए। आचार्योंने दैवसिक्त व्रतोंके लिए यह नियम नहीं बताया है, अर्थात् जिस दिन रोहिणी हो उस दिन व्रत करना ; अन्य नक्षत्रोंमें व्रत नहीं किया जाता है। रोहिणीके अनन्तर अर्थात् मृगशिर नक्षत्रमें पारणा की जाती है। शुक्लपञ्चमी, कृष्णपञ्चमी, जिनगुणसम्पत्ति, ज्येष्ठ-जिनवर, कवलचान्द्रायण आदि व्रतोंको इसी प्रकार मासावधि समझना चाहिए।

रोहिणी व्रत तीन वर्ष, पाँच वर्ष या सात वर्ष प्रमाण किया जाता है, ऐसा वसुनन्दी, सकलकीर्त्ति, छत्रसेन, सिंहनन्दि, मल्लिपेण, हरिपेण, पद्मदेव, वामदेव आदि आचार्योंने कहा है। अन्य अर्वाचीन आचार्य दामोदर, देवेन्द्रकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति आदिने भी इसी बातको बतलाया है।

चित्रेचन—रोहिणी व्रत प्रतिमास रोहिणी नामक नक्षत्र जिस दिन पड़ता है, उसी दिन किया जाता है। इस दिन चारों प्रकारके आहारका त्यागकर जिनालयमें जाकर धर्मध्यानपूर्वक सोलह पहर व्यतीत करे अर्थात् सामायिक, स्वाध्याय, पूजन, अभिषेकमें समयको लगाया जाता है। शक्त्यनुसार दान भी करनेका विधान है। इस व्रतकी अवधि साधारणतया पाँच वर्ष पाँच महीनेकी है, इसके पश्चात् उद्यापन कर देना चाहिए।

रोहिणी व्रतके समयका निश्चय करते हुए आचार्यने कहा है कि यदि रोहिणी नक्षत्र किसी भी दिन पञ्चांगमें एकदो घटी भी हो तो भी व्रत उस दिन किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो गणितके हिसाबके कृत्तिकाकी समाप्ति होनेपर रोहिणीके प्रारम्भमें व्रत करना चाहिए। मृगशिर अथवा कृत्तिकाको व्रत करना निषिद्ध है, इन नक्षत्रोंमें व्रत करनेसे व्रत निष्फल हो जाता है। जबतक सूर्योदय कालमें रोहिणी नक्षत्र मिले तबतक अस्तकालीन रोहिणी नक्षत्र नहीं ग्रहण

करना चाहिए। यद्यपि अंगे आचार्य छः घटी प्रमाण ही नक्षत्र ग्रहण करनेके लिए विधान करेंगे, पर छः घटीके अभावमें एक-दो घटी प्रमाण भी उदयकालीन रोहिणी ग्रहण किया जा सकता है।

रोहिणी व्रतकी अन्य व्यवस्था

तथान्यैः प्रोक्तं रोहिण्यां दशलक्षणरत्नत्रययोऽशकारणव्रत-
वत् रसवादिकाप्रमाणं ग्राह्यमिति अथत् देवतान्दिमुनिभिः प्रोक्तं
यत् दिवसे क्षीणे नियमस्तुते कार्याः, दिवसे तस्मिन्नेव हि
चतुष्टयोपलम्भात् । ते के इति चेदाह—निर्वाणकार्तिकोत्सव-
मालोत्सवधूपोत्सवयात्रोत्सववस्तुत्सवाः । चतुष्टयं किमिति
चेदाह—द्रव्यकालक्षेत्रभावाख्यमिति श्रुतसागरैः प्रोक्तं, अन्ये-
रपि प्रोक्तं तद्यथा—

आदिमध्यावसानेषु हीयते तिथिरुत्तमा ।

आदौ व्रतविधिः कार्यः प्रोक्तं श्रीमुनिपुङ्गवैः ॥

आदिमध्यान्तभेदेषु व्रतविधिविधीयते ।

तिथिहासे तदुक्तञ्च गौतमादिगणध्वरैः ॥

अर्थ—अन्य आचार्योंने भी कहा है कि रोहिणी नक्षत्रका प्रमाण दश-
लक्षण, रत्नत्रय, पोडशकारण व्रतके समान छः घटी प्रमाण ग्रहण करना
चाहिए। देवतान्दि आचार्यने और भी कहा कि—दिनहानि होनेपर—
रोहिणी नक्षत्रका अभाव होनेपर उसी दिन व्रत नियम करना चाहिए,
क्योंकि पूर्वाचार्योंके वचनोंमें व्रत तिथिका निर्णय करते समय चतुष्टय
शब्दकी उपलब्धि होती है। निर्वाण, द्वीपमालिका उत्सव, धूपोत्सव,
यात्रोत्सव, वस्तु-उत्सव आदि व्रतोंके निर्णयमें भी आचार्यने चतुष्टय शब्द-
का व्यवहार किया है। श्रुतसागर आचार्यने चतुष्टय शब्दका अर्थ द्रव्य,
क्षेत्र, काल और भाव लिया है। अन्य आचार्योंने भी व्रत व्यवस्थाके लिए
कहा है—

यदि व्रतके दिनोंमें आदि, मध्य और अन्तके दिनोंमें कोई तिथि
घट जाय, तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए, ऐसा श्रेष्ठ मुनियोंने

कहा है। तिथि हास होने पर आदि, मध्य और अन्त भेदोंमें व्रत विधि
की जाती है अर्थात् तिथिहास होनेपर एकदिन पहले व्रत किया जाता
है। इस प्रकार गौतम आदि श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

विवेचन—रोहिणी-व्रतके दिन रोहिणी नक्षत्र छः घटी प्रमाणसे
अलग हो तो भी देश, काल आदिके भेदसे आचार्योंने व्रत करनेका विधान
किया है, अतः रोहिणी-व्रत करना चाहिए। रोहिणी व्रतके लिए एक-दो
घटी प्रमाण नक्षत्रको भी उदयकालमें ग्रहण किया गया है। कुछ आचार्यों
का यह मत है कि रोहिणी नक्षत्रके क्षीण होनेपर भी व्रत उसी दिन
करना है अर्थात् कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिराके पूर्वका जितना समय
है, वही व्रतकाल है। रोहिणी व्रत यों तो ऐश्वर्य, सुख आदिकी वृद्धिके
लिए स्त्री-पुरुष दोनों ही करते हैं, पर विशेषतः इस व्रतको स्त्रियाँ करती
हैं। इस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको सौभाग्य, सन्तान, ऐश्वर्य, स्वास्थ्य आदि
अनेक फलोंकी प्राप्ति होती है। इस व्रतमें उपवासके दिन तीनों समय
'ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

जिनको उपवास करनेकी शक्ति न हो वे संयम ग्रहण कर अलगभोजन
करें, या कांजी अथवा मांड-भात लें। व्रतके दिन पञ्चाणव्रतोंका पालन
करना, कपाय और विक्रयाओंको छोड़ना आवश्यक है। मृगशिर नक्षत्रमें
पारणा करना एवं कृत्तिकामें व्रतकी धारणा करनेसे व्रतविधि पूर्ण मानी
जाती है।

अवाप्य यामस्तमुपैति सूर्यस्तिथिं मुहूर्तत्रयवाहिनीं च ।
धर्मेण कार्येषु वर्दन्ति पूर्णां तिथिं व्रतज्ञानधरा मुनीश्याः ॥

इति चामुण्डरायवाक्यं तथा च तत् पुराणेष्वेवमुक्तम्—
व्रतानां दिनेशः दिनेशं प्रहीणे किलादौ च मध्येऽवसाने तथैव ।
तथा मुख्ययत्नं गृहीत्वा प्रकायं विधानं व्रतानां समुक्तं मुनीशैः ॥
आदितः दिनक्षयेषु प्रथममेवमाचरेत् मध्यतः दिनक्षयेषु
प्रथममेवमाचरेत् अन्ततः दिनक्षयेषु अयं विधिः न विधीयते ।
उक्तं च—

तिथीनां क्षये द्वित्रितुर्थादिकानां

न वै तद्ब्रतानां तिथिश्चेत्प्रयाति ।

दिनेकेऽवशिष्टे व्रतं कार्यमादौ

गृहीत्वा दिनं तत्प्रपूर्णां विधिं च ॥ १ ॥

तिथीनां सुवृद्धौ द्वितुर्थादिकानां

ब्रतानां दिनेष्वेव कार्यं विधानम् ।

यदा कोऽपि मर्त्यो सरोगः सद्युःखः

तदा तेषु कार्यं विधानं बुधोक्तम् ॥ २ ॥

इति चामुण्डरायपुराणे रोहिण्युत्सवनिर्वाणकार्तिकाभि-
वेकोत्सवे यात्रोत्सवे वस्तूत्सवे च विधानम् ॥

अर्थ—जिस तीन सुहृत्वाली तिथिको प्राप्तकर सूर्य अस्त होता है, उस तिथिको व्रतके ज्ञाता धर्मादि कार्योंमें पूर्ण मानते हैं। इस प्रकार चामुण्डरायने कहा है, चामुण्डरायपुराणमें और भी कहा गया है—

व्रतंके दिनोंमें आदि, मध्य या अन्तमें तिथिका हास हो तो मुख्य दिनको लेकर व्रत विधान करना चाहिए। इस प्रकार श्रेष्ठ आचार्योंने कहा है।

आदिमें तिथि-क्षय हो या मध्यमें तिथि-क्षय हो तो एक दिन पहले व्रत करना चाहिए। अन्तमें तिथि-क्षय होनेपर यह विधि नहीं की जाती है। कहा भी है—

दो-तीन या चार दिनोंके व्रतोंमें किसी तिथिके क्षय होनेपर, पूर्व दिन से व्रत करने चाहिए तथा पूर्व दिनसे ही व्रतविधि सम्पन्न की जाती है। यदि दो-तीन या चार दिनोंके व्रतोंमें किसी तिथिकी वृद्धि हो जाय तो, व्रत संख्यक दिनोंमें ही व्रतविधि पूर्ण करनी चाहिए। परन्तु आचार्यों-ने यह विधान किसी रोगी, दुःखी व्यक्तिके लिए किया है। स्वस्थ और सुखी व्यक्तिको तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए।

इस प्रकार चामुण्डरायपुराणमें रोहिणी-उत्सव, निर्वाण-कार्तिकोत्सव, यात्रा-उत्सव, वस्तु-उत्सव आदिके लिए विधान किया है।

विवेचन—रोहिणी व्रतके लिए उद्यकालमें रोहिणी नक्षत्र छः घटी अथवा इससे अल्प प्रमाण भी हो तो उसी दिन रोहिणीव्रत करना चाहिये। यदि उद्यकालमें रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो एक दिन पहले व्रत किया जायगा। यों तो सभी व्रतोंके लिए यही नियम है कि तिथिक्षयमें एक दिन पूर्वसे व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत करनेका विधान है। चामुण्डरायपुराणके अनुसार रोगी, वृद्ध और असमर्थ व्यक्तियोंको तिथिवृद्धि होनेपर नियत दिन प्रमाण ही व्रत करना चाहिए। रोहिणीव्रत सिर्फ एक दिनका होता है, अतः इस व्रतमें उद्यकालमें छः घटीका नियम प्रायः मान्य होता है। हाँ, कर्म-कर्मभी एक-दो घटी प्रमाण उद्यममें रोहिणीके रहनेपर भी व्रत किया जाता है।

दिने कृते च छिन्ने वाऽच्छिन्ने तत्र च निश्चयः।

क्षेत्रकालादिमर्यादोलङ्घनं तत्र दूषणम् ॥

अन्यदपि षोडशकारणवारिदमालारत्नत्रयादिव्रतानां पूर्ण-
मिषये प्रतिपत्तिथिरया नापरा ग्राह्येति पूर्वोक्तवचनात्। अपरा
द्वितीया ग्राह्येति अनवस्थाद्वाभङ्गसंकरादयो दोषाः भवन्तीति
अश्रद्देवमतामित्येव रोहिणीव्रतनिर्णयः।

अर्थ—तिथिक्षय या तिथि-वृद्धि होनेपर व्रत करनेके लिए देशकाल-
की मर्यादाका विचार अवश्य किया जाता है। जो देश-कालकी मर्यादा-
का विचार नहीं करता है, उसके व्रतोंमें दूषण आ जाता है।

अन्य षोडशकारण, मेघमाला, रत्नत्रय आदि व्रतोंके पूर्ण अभिषेकके
लिए प्रतिपदा तिथि ग्रहण की गयी है, अन्य तिथि नहीं। यदि अन्य
द्वितीया तिथि ग्रहण की जाय तो अनवस्था, आज्ञाभंग, संकर आदि दोष
आ जायेंगे, इस प्रकार अश्रद्देवका मत है। रोहिणी व्रतके निर्णयके लिए

भी देशकालकी मर्यादाका विचार करना चाहिए। इस प्रकार रोहिणी व्रतका निर्णय समाप्त हुआ।

विवेचन—रोहिणीव्रत रोहिणी नक्षत्रको किया जाता है। जिस दिन पञ्चांगमें रोहिणी छः घटी या इससे अधिक प्रमाण हो उस दिन व्रत करनेका विधान है। यदि कदाचित् छः घटी प्रमाण रोहिणी नक्षत्र न मिले तो एकाध घटी प्रमाण मिलनेपर भी व्रत किया जा सकता है। जब रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो तो कृत्तिकाके उपरान्त और मृगशिरसे पूर्व रोहिणी व्रत करना चाहिए। जब दो दिन रोहिणी नक्षत्र हो तो जिस दिन पूर्ण नक्षत्र हो उस दिन व्रत करना तथा अगले दिन यदि छः घटीसे ऊपर या छः घटी प्रमाण ही रोहिणी नक्षत्र हो तो अगले दिन भी व्रत किया जायगा। इससे कम प्रमाण होनेपर व्रतकी पारणा की जायगी।

रविव्रतको विधि

आदित्यव्रत पादर्वनाथार्कसंघके आषाढमासे शुक्लपक्षे तदप्रथममादित्यमारभ्य नवसु अर्कदिनेषु व्रतं कार्यं नववर्षं यावत्। प्रथमवर्षं नवोपवासः, द्वितीयवर्षं नवैकाशनाः, तृतीयवर्षं नवकाञ्चिकाः, चतुर्थवर्षं नवरुद्राः, पञ्चमवर्षं नवनीरसाः, षष्ठवर्षं नवालवणाः, सप्तमवर्षं नवागोरसाः, अष्टमवर्षं नवोदराः, नवमवर्षं अलवणा उदराः नव। एवमेकाशीतिः कार्याः। व्रतदिने श्रीपादर्वनाथस्याभिषेकं कार्यं पूजनं च। समाप्ताहुद्यापनं च कार्यम्, ये भव्या इदं रविव्रतं विधिपूर्वकं कुर्वन्ति तेषां कण्ठे मुक्तिकामिनी कण्ठरत्नमाला पतिष्यति।

अर्थ—रविव्रतमें आषाढ मास शुक्ल पक्षमें प्रथम रविवार पादर्वनाथ संज्ञक होता है, इससे आरम्भ कर नौ रविवार तक व्रत करना चाहिए। यह व्रत नौ वर्ष तक किया जाता है। प्रथम वर्षमें नौ रविवारोंको उपवास, द्वितीय वर्षमें नौ रविवारोंको एकाशन, तृतीय वर्षमें नव रविवारोंको काञ्ची-छल या छलसे घने महेरी आदि पदार्थ लेकर

एकाशन, चतुर्थ वर्षमें नव रविवारोंको विना घी का रुक्ष भोजन, पञ्चम वर्षमें नौ रविवारोंको नीरस भोजन, षष्ठ वर्षमें नौ रविवारोंको विना नमकका अलोना भोजन, सप्तम वर्षमें नौ रविवारोंको विना दूध, दही और घृतके भोजन, अष्टम वर्षमें नौ रविवारोंको ऊनोदर एवं नवम वर्षमें नौ रविवारोंको विना नमकके नौ ऊनोदर किये जाते हैं। इस प्रकार ८१ व्रतदिन होते हैं। व्रतके दिन श्रीपादर्वनाथ भगवान्का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। जो विधिपूर्वक रविव्रतका पालन करते हैं, उनके गलेमें मोक्षलक्ष्मीके गलेका हार पड़ता है। व्रत पूरा होनेपर उद्यापन करना चाहिए।

विवेचन—आषाढ मासके शुक्ल पक्षके प्रथम रविवारसे लेकर नौ रविवारों तक यह व्रत किया जाता है। प्रत्येक रविवारके दिन उपवास या विना नमकका एकाशन करनेका नियम है। व्रतके दिन पादर्वनाथ भगवान्का पूजन, अभिषेक करे तथा समस्त गृहारम्भका त्याग कर, कयाव और वासनाको दूर करनेका प्रयत्न करे। रात्रि जागरण पूर्वक व्यतीत करे तथा 'ओं ह्रीं अहो श्रीपादर्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका तीन बार एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए। नौ वर्ष व्रत करने के उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है।

पहले वर्ष नव उपवास, दूसरे वर्ष नमक विना माड़-भात, तीसरे वर्ष नमक विना दाल-भात, चौथे वर्ष विना नमक खिचड़ी, पाँचवें वर्ष विना नमक रोटी, छठवें वर्ष विना नमक दही-भात, सातवें और आठवें वर्ष विना नमक मूँगाकी दाल और रोटी तथा नौवें वर्ष एक बारका परोसा हुआ विना नमकका भोजन करे। थालीमें जूटन नहीं छोड़ना चाहिए। प्रथम रविवार और अन्तिम रविवारको प्रतिवर्ष उपवास करना चाहिए। व्रतके दिन नवधा भक्ति सहित मुनिराजोंको भोजन कराना चाहिए।

रविव्रतका फल

सुतं वन्द्या समाप्नोति दरिद्रो लभते धनम्।

मूढः श्रुतमवाप्नोति रोगी मुञ्चति व्याधितः॥

अर्थ—राधिवारका व्रत करनेसे फल्गुमासी की पुत्र प्राप्ति करती है, दरिद्री व्यक्ति धन प्राप्त करता है, मूर्ख व्यक्ति शास्त्रज्ञान एवं रोगी व्यक्ति व्याधिसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

सप्तपरमस्थान व्रतकी विधि

अथ सप्तपरमस्थानं श्रावणमासे शुक्लपक्षदिमदिनमारभ्य शुक्लसप्तमिदिनं यावत् कार्यम्। व्रतदिने स्नपनपूजनजाप्यकथा-श्रावणदानानि कार्याणि। एकवस्तुभक्षणं कार्यमा सप्तमदिनम्, विधिवत् समासाहुद्यापनं च। तत्फलम्—

जातिमैश्वर्यगार्हस्थ्यं समुत्कृष्टं तपस्त्वया।

सुरार्थाश्रयपदं चाक्रिपदं चार्हन्त्यसप्तकम् ॥१॥

सत्तिर्वाणपदं भव्यलोके हि जिनाभाषितम्।

कमात्मकमविदामेति परमस्थानसप्तकम् ॥२॥

अर्थ—सप्तपरमस्थान व्रतमें श्रावणमास सुदी प्रतिपदासे श्रावण सुदी सप्तमी तक व्रत करना चाहिये। व्रतके दिन अभिषेक, पूजन, जाप, कथाश्रावण, दान आदि कार्योंको करना चाहिये। सातों दिन एक ही वस्तुका भोजन किया जाता है। विधिवत् व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया जाता है। इस व्रतका फल निम्न है—

जाति, ऐश्वर्य, गार्हस्थ्य, उत्कृष्ट तप, इन्द्रपदवी या चक्रवर्ती पदवी, अर्हन्तपदवी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है। संसारमें निर्वाण ही परम पद है, ऐसा जितेन्द्र भगवान्ने कहा है। इस प्रकार सप्तपरमस्थान व्रतके पालनेसे सातवाँ परमपद निर्वाण प्राप्त होता है। अभिषेक यह है कि सप्त परमस्थान व्रतके पालनेसे सप्त परमपदकी प्राप्ति होती है। यह व्रत लौकिक अभ्युदयके साथ निर्वाणपदको भी देनेवाला है। जो श्रावक इस व्रतका पालन करता है, वह परम्परासे अलकालमें ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

विवेचन—सप्तपरमस्थान व्रत श्रावण सुदी प्रतिपदासे सप्तमीतक सात दिन किया जाता है। प्रतिपदके दिन अर्हन्त भगवान्का अभिषेक

तथा सप्तपरमस्थान पूजन करनेके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सज्जातिपरम-स्थानप्राप्तये श्रीश्रमयजितेन्द्राय नमः' इस मन्त्रका जाप करना चाहिये। साध्याय, सामाधिक आदि धार्मिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर उपवास करना चाहिये। यदि उपवास करनेकी शक्ति न हो तो किसी एक ही वस्तुका आहार ग्रहण किया जाता है। आहारमें दो अनाज या दो वस्तुएँ नहीं होनी चाहिये। केवल एक अनाज होना आवश्यक है—

द्वितीयांके दिन सप्तपरमस्थान पूजन, अभिषेकके उपरान्त 'ओं ह्रीं अर्हं सद्गृहस्थपरमस्थानप्राप्तये श्रीचन्द्रप्रयजितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप करना, तृतीयांके 'ओं ह्रीं अर्हं श्री पारिव्राज्यपरम-स्थानप्राप्तये श्रीनिभेनाथजितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, चतुर्थी के 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसुरेन्द्रपरमस्थानप्राप्तये श्रीपाञ्चनाथ-जितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, पञ्चमीके 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीसाम्ना-राज्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीशितलनाथजितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप, षष्ठीके 'ओं ह्रीं अर्हं श्री आर्हन्त्यपरमस्थानप्राप्तये श्रीगान्धि-नाथजितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप; एवं सप्तमीके 'ओं ह्रीं अर्हं श्रीनिर्वाणपरमस्थानप्राप्तये श्रीवीरजितेन्द्राय नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है। सातदिन व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें रात्रिजागरण करना चाहिये, यदि शक्ति न हो या और किसी प्रकारकी बाधा हो तो मध्यरात्रिमें एक प्रहर शयन करना चाहिये।

शीर्षमुकुट सप्तमी व्रत

अथ श्रावणमासे शुक्लपक्षे सप्तमीदिनेप्यादिनाथस्य वा पार्श्वनाथस्य कण्ठे मालां शीर्षे मुकुटं च निधाय उपवासं कुर्यात्। न तु एतावता वीतरागात्त्वहानिर्भवति। यतः कापि कन्या तु स्ववैधव्यनिवारणाय जिनशासनागमोद्दिष्टविधिं कुरुते। एतद्विधितत्त्वस्तु जिनागमद्वेही जिनाज्ञालोपी भवतीति न

सन्देहः कार्यः। सकलकीर्तिभिः स्वकीये कथाकोषे श्रुतासागर-
स्तथा दामोदरैस्तथादेवर्नाभिभरभ्रदेवैश्च तथैव प्रतिपादितमतः
पूर्वक्रमो नाक्रमो ज्ञेयः।

अर्थ—श्रावण शुक्ल सप्तमीको आदिनाथ या पार्श्वनाथके कण्ठमें
माला और शिरमें मुकुट बाँधकर उपवास करना, शीर्ष मुकुट सप्तमी
व्रत है। वीतरागी प्रभुके गलेमें माला और शिरपर मुकुट बाँधनेमें वीत-
रागतकी हानि नहीं होती है, क्योंकि कोई भी कन्या अपने वैधव्यके
निवारणके लिए जिनागममें बतायी हुई विधिका पालन करती है। जो
कोई इस विधिसे निन्दा करता है, वह जिनागमद्रोही तथा जिनाज्ञा-
लोपो होता है, अतः इस विधिमें सन्देह नहीं करना चाहिए। सकल-
कीर्ति आचार्यने अपने कथाकोषमें, तथा श्रुतसागर, दामोदर, देवनन्दी
और अभ्रदेव आदिने भी इस विधिका कथन किया है। अतः ऊपर
जिस विधिका कथन किया है, वह समीचीन है, क्रमपूर्वक है, अक्रमिक
नहीं है।

विवेचन—शीर्षमुकुट संसर्ग व्रत श्रावण सुदी सप्तमीको किया
जाता है। इस दिन कन्याएँ या सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्यकी
वृद्धिके लिए भगवान् आदिनाथका पूजन, अभिषेक करती हैं तथा
प्रोषधोपवास करती हुई धर्मध्यानसे दिन व्यतीत करती हैं। इस व्रत
में 'ओं ह्रीं श्रीवृषभतीर्थकराय नमः' इस मन्त्रका या 'ओं
ह्रीं श्रीपार्श्वनाथाय नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है। रातको
जागरण करना आवश्यक माना गया है। मुकुटसप्तमी व्रतमें भगवान्
आदिनाथ और पार्श्वनाथके नामोंकी एक हजार आठ जाप करनी
चाहिए। इस व्रतमें रातको बृहत्स्रयभूस्तोत्र, संकटहरण विनती,
दुःखहरण विनती, कल्याणमन्दिर, भक्तमार आदि स्तोत्रका पाठ करना
चाहिए। अष्टमीके दिन अभिषेक, पूजन और सामाधिकके पश्चात् एकाशन
करना चाहिए। पछीसे लेकर अष्टमी तक तीन दिनोंका पूर्ण शीलव्रत
पालन किया जाता है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधि

अक्षयनिधिनियमस्तु श्रावणशुक्ल दशमी भाद्रपदशुक्ल
तत्कृष्ण चेति दशमीत्रयं पञ्चवर्षं यावत् व्रतं कार्यम् ; दशमी-
हानौ तु नवम्यां वृद्धौ तु यास्मिन् दिने पूर्ण दशमी तस्मिन्-
नैव दिने व्रतं कार्यम् ; वृद्धिगतातिथौ सोदयप्रमाणेऽपि व्रतं न
कार्यम्।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रत श्रावणशुक्ल दशमी, भाद्रपदशुक्ल दशमी,
भाद्रपद कृष्ण दशमी, इस प्रकार तीन दशमियोंको किया जाता है।
यह व्रत पाँच वर्ष तक करना होता है। दशमी तिथिकी हानि होनेपर
नवमीको व्रत और दशमी तिथिकी वृद्धि होनेपर जिस दिन पूर्ण दशमी
हो उस दिन व्रत किया जाता है। वृद्धिगत तिथि छः घटीसे अधिक हो
तो भी दूसरे दिन व्रत करनेका विधान नहीं है। यह व्रत वर्षमें तीन
दिनसे अधिक नहीं किया जाता है, तिथि वृद्धि होनेपर भी एक दिन
अधिक करनेका नियम नहीं है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रत श्रावण सुदी दशमी, भाद्रों वदी दशमी
और भाद्रों सुदी दशमी इन तीनों दशमी तिथियोंको वर्षमें एक बार
किया जाता है। इस व्रतका दूसरा नाम अक्षयफल दशमी व्रत भी है।
अक्षयनिधि व्रत करनेवालेको दशमीके दिन प्रोषध करना चाहिए। गृहा-
रम्भ होइकर श्रीजिन-मन्दिरमें जाकर भगवान् आदिनाथका अभिषेक
और पूजन करना चाहिए। 'ॐ ह्रीं नमो ऋषभाय' इस मन्त्रका
जाप उपवासके दिन १००८ करना चाहिए। रात्रिमें जागरण, शक्ति न
होनेपर अल्प निद्रा ली जाती है। धर्मध्यान व्रतके दिन विशेष रूपसे
किया जाता है। शीलव्रत श्रावण सुदी नवमीसे लेकर भाद्रों सुदी
एकादशी तक इस व्रतके धारिको पालना चाहिए।

मासिक सुगन्ध दशमी व्रत

मासिकसुगन्धदशमीव्रतं तु पौषशुक्लपञ्चमीमारभ्य दशमी-

अर्थ—चारिग्रन्थि व्रत १०४२ उपवासका होता है। इस व्रतमें उपवासके दिन हिसादि पापोंका अतीचार सहित त्याग करना चाहिए। ६ वर्षमें यह व्रत पूरा होता है। इसमें एक उपवास पश्चात् एक पारणा, पुनः उपवास पश्चात् पारणा इसप्रकार उपवास और पारणाके क्रम से २०८४ दिनोंमें परिपूर्ण होता है।

सिंहनिष्क्रीडित व्रतकी व्यवस्था

सिंहनिष्क्रीडित व्रत त्रयोदशमासैरष्टविंशतिदिनैः परिपूर्ण भवति। अवशेषो विधिः हरिवंशपुराणाद् बृहत्सारचतुर्विंशतिकाग्रन्थादुद्यापनसारात् सम्पन् ज्ञातव्यः, अत्र तु विस्तारभयान्न व्याख्यातः। एतेषु हानिवृद्धिक्रमो न व्यावर्तितः, यतो हि एतानि व्रतानि महासुनीनां संचरितान्येव। आवकस्यापि करणीयत्वादुपदिष्टानि। अतः श्रावकैर्देशकालाभि-
ज्ञैश्च द्रव्यक्षेत्रकालमावात् समाश्रित्य सम्पन्गयत्नाचारतया तिथिव्रतमार्गमनुलङ्घ्य श्रुतानुश्रुततया यतेर्मागविरोधेन व्रत-
माचरणियम्। इति वाल्मिकिकानि व्रतानि।

अर्थ—सिंहनिष्क्रीडित व्रत तेरह मास अष्टादश दिनोंमें पूर्ण होता है। शेष व्रतोंकी विधि हरिवंश पुराण, बृहत्सारचतुर्विंशतिका और उद्यापनसारसे सम्पन् प्रकार अवगत करनी चाहिए, यहाँ विस्तारभयसे नहीं दी गयी है। इन व्रतोंकी तिथियोंके हानि, वृद्धि क्रमको भी वर्णन नहीं किया गया है, क्योंकि ये व्रत महासुनीनोंके होते हैं। साधारण श्रावक इन व्रतोंका पालन नहीं कर सकता है। हाँ, व्रतधारी विशेष श्रावक इनका पालन कर सकता है, इसीलिए यहाँपर इनका वर्णन किया गया है। अतएव देश-काल मर्यादा विज्ञ श्रावकको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रय लेकर सम्पन् यत्नाचार पूर्वक व्रततिथि मार्ग-का उलंघन न करते हुए अगमके अनुकूल और सुनिर्माणके अविरोधो व्रतोंका आचरण करना चाहिए। इस प्रकार सौवसरिक व्रतोंका निरूपण समाप्त हुआ।

विवेचन—सिंहनिष्क्रीडित व्रत तीन प्रकारका होता है—उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम सिंहनिष्क्रीडित व्रत १३ महीना २८ दिन तक किया जाता है, मध्यम ५ महीना १० दिन और जघन्य २ महीना २० दिक्कत किया जाता है। जघन्य व्रतमें ६० दिन उपवास और २० दिनकी पारणाएँ होती हैं। प्रथम एक उपवास, पश्चात् पारणा, अनन्तर दो दिनका उपवास एक पारणा, पश्चात् एक उपवास, पारणा, तत्पश्चात् तीन दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, चार दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, पुनः पाँच दिनका उपवास पारणा, पश्चात् चार दिनका उपवास पारणा, पाँच दिनका उपवास पारणा, तीन दिनका उपवास पारणा, चार दिनका उपवास पारणा, तीन दिनका उपवास पारणा, एक दिनका उपवास पारणा, दो दिनका उपवास पारणा एवं एक दिनका उपवास पारणा की जाती है। अर्थात् ४ + २ + १ + ३ + २ + ४ + ३ + ५ + ४ + ५ + ४ + ५ + ४ + २ + ३ + १ + २ + १ दिनों के उपवासोंके अनन्तर पारणाएँ की जाती हैं। इस व्रतको शकियाली, इन्द्रियजयी और व्रती श्रावक ही कर सकते हैं। यह तपकी प्राक्रिया है। मध्यम व्रत करनेवाला उपर्युक्त उपवासोंसे भी दूने उपवास करता है, तब पारणा होती है। उत्तम विधि करनेवाला २ + ४ + २ + ६ + ४ + ८ + ६ + १० + ८ + १० + ८ + ८ + १० + ६ + ८ + ४ + ६ + २ + २ = २० मध्यकी पारणाएँ, कुल १४० दिन पुनः इस प्रकार व्रतारम्भ करता है तथा तीसरी बार २ + ४ + २ + ६ + ४ + ८ + १० + ८ + १० + ८ + ८ + १० + ६ + ८ + ४ + ६ + २ + २ = २० इस प्रकार कुल व्रत-दिन संख्या १४० + १४० + १३८ = ४१८ उपवास + २० पारणा + १२० उपवास + २० पारणा ११५ उपवास + २० पारणा = ४१८ दिन अर्थात् १३ महीना २८ दिन प्रमाण।

अपूर्व व्रतकी विधि

भगवन्! अपूर्वव्रतस्य किं स्वरूपमिति पृष्टे उत्तरमाह—
श्रुतां श्रावकोत्तम! भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्वार्द्धदिवसत्रये

त्रिप्रातः च क्रियते; तत्र मुक्तिरेकान्तरेण वा पञ्चाशानि यावत्काय तवस्थोत्थापनम्, पूर्वतिथिद्वये पूर्वा तिथिरमावस्या कार्या एत-
द्वत् पाक्षिकं चान्यैः प्रोक्तं तेषामपेक्षया द्वितीया पूर्वा भवति,
व्रतं तु चतुर्थोपर्यन्तं भवति । परन्तु नैतन्मतं प्रमाणं, कथं बला-
त्कारिणां मते चतुर्थी दशालाश्रयिकवत्स्यादियारणादिनत्वात्
न ग्राह्या; अधिकतिथ्यावधिकमाणेण व्रतं कार्यम् इति लाहे भोग-
उपभोगे वीरियेण संमतेण केवललक्ष्मीदं संस्रणणो चरित्येय
इति फलं ज्ञातव्यम् ।

अर्थ—हे भगवन् ! अपूर्वं व्रतका क्या स्वरूप है, इस प्रकार
प्रदत्त करनेपर, गौतम गणधरने उत्तर दिया—हे आश्रकोत्तम ! सुनिधे—
नादपद सासमें शुक्ल पक्षमें पूर्वादि तीन दिन और तीन रात्रियोंमें व्रत
करते हैं । एक दिन व्रत, पश्चात् पुकारान पुनः व्रत इस प्रकार तीन दिन
व्रत किया जाता है । पाँच वर्ष तक व्रत करनेके उपरान्त उद्यापन किया
जाता है । पूर्व तिथिके क्षय होनेपर पूर्वां तिथि अमावस्या मानी जाती
है । कुछ आचार्य इस व्रतको पाक्षिक मानते हैं । उनके मतसे तिथिद्वय
होनेपर पूर्वां द्वितीया तिथि ली गयी है, अतः द्वितीयासे चतुर्थी पर्यन्त
व्रत करना चाहिए । परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि बलात्कार
गणके आचार्य चतुर्थी तिथिको दशालक्षण व्रतकी धारणा तिथि मानते हैं,
अतः चतुर्थीका ग्रहण नहीं होना चाहिए ।

तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना चाहिए । इस व्रतका
फल अपूर्वं ही होता है । दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व,
क्षायिक लब्धि, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दर्शन और क्षायिक चारित्र्य
आदिकी प्राप्ति इस व्रतके करनेसे होती है ।

विवेचन—अपूर्वं व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तक
किया जाता है । इसका दूसरा नाम त्रैलोक्य तिलक व्रत भी है । इस
व्रतमें प्रतिपदाको उपवास कर गृहारम्भका ध्यानाकर तीनों कालकी
चौबीसीकी पूजा करनी चाहिए अथवा तीन लोककी रचनाकर अष्टविम

वैद्यालयोंकी स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । तीनों काल
'ओं ह्रीं त्रिलोकसम्पन्नदृष्टिप्रमिजनालयेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप
करना चाहिए । द्वितीयाके दिन उपवास करना और शेष धार्मिक विधि
पूर्ववत् ही सम्पन्न की जाती है । तृतीयाके दिन उपवास करना, वरका
आरम्भ ध्याना कर चिनालयमें जाकर दत्ताष्ट पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानोंको
पूर्ण करना । अष्टविम चिनालयोंका पूजन, विकास सम्बन्धा चतुर्विधावि
चिनपूजन आदि पूजन विधानोंको विधिपूर्वक करना चाहिए । इस दिन
तीनों काल 'ह्रीं ह्रीं त्रिकालसम्पन्नविचित्रचतुर्विधार्तितीर्थकरेभ्यो
नमः' इस मन्त्रका जाप किया जाता है । रात जागरण कर धर्मध्यान
पूर्वक विचार्य जाती है तथा चौबीसों सगावान्को स्तुतियोंको रातमें पढ़-
कर भावनाओंको पवित्र किया जाता है । तिथि क्षय होनेपर इस व्रतको
अमावस्यासे आरम्भ करना चाहिए, समाप्ति सर्वदा ही तृतीयाको ही
जाती है । लोकमें तिलक व्रतका विधान अन्यत्र केवल तृतीयाका ही
मिलता है, परन्तु पूरी विधि तीन दिनोंमें सम्पन्न की जाती है । तीन वर्ष
या पाँच वर्ष व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन किया जाता है ।

पुरन्दर-व्रत-विधि

अथ पुरन्दरव्रतमाह—यत्र तत्र क्वचिन्मासे समारभ्य
शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्याष्टमीपर्यन्तं कार्यम् । अथ प्रतिपदग्रन्थोः
प्रोपयं शेषमेकमुक्तञ्च वा एकान्तरेण व्रतं कार्यम् । एतद्व्रतमनि-
यतमासिकं नियतपाक्षिकं द्वादशमासिकं ज्ञेयम् । फलञ्चैतत्—
दारिद्र्यमृगशादूलं मूलं मोक्षश्च निश्चलम् ।

पुरन्दरविधि विधि सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१॥

अर्थ—पुरन्दर व्रतका स्वरूप कहते हैं—किसी भी महीनेमें शुक्ल-
पक्षको प्रतिपदासे अष्टमी तक पुरन्दर व्रतका पालन किया जाता है । प्रति-
पदा और अष्टमीका प्रोपय तथा शेष दिनोंमें पूकाशन अथवा एकान्तरेसे
उपवास और पुकारान करने चाहिए अर्थात् प्रतिपदाका उपवास द्वितीया
का पुकारान; तृतीया उपवास चतुर्थीका पुकारान, पञ्चमीका उपवास

षष्ठीका एकाशन, सप्तमीका उपवास और अष्टमीका एकाशन, किये जाते हैं। यह व्रत अनियत मासिक और नियत पाक्षिक है, क्योंकि इसके लिए कोई भी महीना निश्चित नहीं है पर शुक्ल पक्ष निश्चित है। इसका फल निम्न है—

पुरन्दर व्रत दरिद्रतारूपी मृगको नष्ट करनेके लिए सिंहके समान है और मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए मूल कारण है अर्थात् इस व्रतके पालन करनेसे निश्चय ही मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तथा यह व्रत मनुष्योंको सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि पुरन्दर व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे रोग, शोक, व्याधि, व्यसन सभी दूर हो जाते हैं तथा कालान्तरमें परम्परासे निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

विवेचन—क्रियाकोषमें बताया गया है कि पुरन्दर व्रतमें किसी भी महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे लेकर अष्टमी तक लगातार आठ दिनका प्रोषण करना चाहिए। आठों दिन घरका समस्त आरम्भ त्यागकर जिनालयमें भगवान् जितेन्द्रका अभिषेक, पूजन, आरती एवं स्तवन आदि करने चाहिए। आठ दिनोंके उपवासके पश्चात् नवमी तिथिको पारणा करनेका विधान है। यह काम्य व्रत है, दरिद्रता एवं रोग-शोकको दूर करनेके लिए किया जाता है। व्रतके दिनोंमें रात्रिको धर्मध्यान करना, रात्रि जागरण करना, जितेन्द्र प्रभुकी आरती उतारना एवं भजन पढ़ना आदि क्रियाएँ भी करना आवश्यक है। रातके मध्यभागमें अल्प निद्रा लेना तथा जितेन्द्र प्रभुके गुणोंका चिन्तन करना और सामाधिक स्वाध्याय करना भी इस व्रतकी विधिके भीतर परिगणित है। प्रोषणके दिनोंमें स्नान, तेलमर्दन, दन्तधावन आदि क्रियाओंका त्याग करना चाहिए। यदि आठ दिनतक लगातार उपवास करनेकी शक्ति न हो तो चार दिनोंके पश्चात् पारणा कर लेनी चाहिए, पारणामें एक ही अनाज तथा एक ही प्रकारकी वस्तु लेनी चाहिए। जिनमें उपर्युक्त प्रकारसे व्रत करनेकी शक्ति न हो, वे अष्टमी और प्रतिपदाका उपवास करें तथा शेष दिन एकाशन

करें। अन्य धार्मिक क्रियाएँ समान हैं, स्नान करनेवालेको द्रव्यपूजा और स्नान न करनेवाले श्रावकको भावपूजा करनी चाहिए। व्रतके दिनोंमें प्रतिदिन णमोकार मन्त्रका एक हजार आठ बार जाप करना चाहिए। एकाशनके दिन तीन बार प्रातः, दोपहर और सन्ध्याको एक हजार आठ बार णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए।

दशलक्षण व्रतकी विधि

दशलक्षणिकव्रते भाद्रपदमासे शुक्ले श्रीपञ्चमीदिने प्रोषणः कार्यः, सर्वगृहारम्भं परित्यज्य जिनालये गत्वा पूजावर्चनादिकञ्च कार्यम्। चतुर्विंशतिकां प्रतिमां समारोप्य जिनास्पदे दशलक्षणिकं यन्त्रं तदग्रे ध्रियते, ततश्च स्तपनं कुर्यात्, भव्यः मोक्षामिन्लाभी अष्टधापूजनद्रव्यैः जितं पूजयेत्। पञ्चमीदिनमारभ्य चतुर्दशीपर्यन्तं व्रतं कार्यम्, ब्रह्मचर्यविधिना स्यातव्यम्। इदं व्रतं दशवर्षपर्यन्तं करणीयम्, ततश्चोद्यापनं कुर्यात्। अथवा दशोपचासाः कार्यः। अथवा पञ्चमीचतुर्दश्योरुपवासद्वयं शेषमेकारानमिति केषाञ्चिन्मतम्, तच्च शक्तिहीनतयाङ्गीकृतं न तु परमो मार्गः।

अर्थ—दशलक्षण व्रत भाद्रपद मासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे आरम्भ किया जाता है। पञ्चमी तिथिको प्रोषण करना चाहिए तथा समस्त गृहारम्भका त्यागकर जिन-मन्दिरमें जाकर पूजन, अर्चन, अभिषेक आदि धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिए। अभिषेकके लिए चौबीस भगवान् की प्रतिमाओंको स्थापन कर उनके आगे दशलक्षण यन्त्र स्थापित करना चाहिए। पश्चात् अभिषेक क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। मोक्षामिन्लाभी भव्य अष्ट द्रव्योंसे भगवान् जितेन्द्रका पूजन करता है। यह व्रत भादों सुदी पञ्चमीसे भादों सुदी दशमीतक किया जाता है। दसों दिन ब्रह्मचर्यका पालन किया जाता है।

इस व्रतको दस वर्षतक पालन किया जाता है, पश्चात् उद्यापन कर

दिया जाता है। इस व्रतकी उच्छिष्ट विधि तो यही है कि दस उपवास लगातार अर्थात् पञ्चमीसे लेकर चतुर्दशी तक दस उपवास करने चाहिए। अथवा पञ्चमी और चतुर्दशीका उपवास तथा शेष दिनोंमें एकाशन करना चाहिए, परन्तु यह व्रत विधि शक्तिहीनोंके लिए बतायी गयी है, यह परममार्ग नहीं है।

विवेचन—दशलक्षण व्रत भादों, माघ और चैत्र मासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीसे चतुर्दशीतक किया जाता है। परन्तु प्रचलित रूपमें केवल भाद्रपदमास ही ग्रहण किया गया है। दशलक्षण व्रतके दस दिनोंमें त्रिकाल सामायिक, वन्दना और प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिए। व्रतारम्भके दिनसे लेकर व्रत समाप्तितक जिनेंद्र भगवान्के अभिषेकके साथ दशलक्षण यन्त्रका भी अभिषेक किया जाता है। नित्य नैमित्तिक पूजाओंके अनन्तर दशलक्षणपूजा की जाती है। पञ्चमी पष्टी, सप्तमी आदि दश तिथियोंमें क्रमसे प्रत्येक तिथिको 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमक्षमाधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तममार्जवधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमसत्यधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमशौचधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमसंयमधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमतपधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमत्यागधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमद्वैतधर्मज्ञाय नमः' 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्रताय उत्तमब्रह्मचर्यधर्मज्ञाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए। समस्त दिन स्वाध्याय, पूजन, सामायिक आदि कार्योंमें व्यतीत करे, रात्रि जागरण करे और समस्त विकथारोंका त्याग कर आत्मचिन्तनमें लीन रहे। दसों दिन यथाशक्ति प्रोषय, वेला, तेल, एकाशन, ज्वालादर एवं रसपरित्याग करने चाहिए। स्वादिष्ट

भोजनका त्याग करे तथा स्वच्छ और सादे वस्त्र धारण करने चाहिए। इस व्रतका पालन दस वर्षतक किया जाता है।

तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतकी व्यवस्था

और व्रतका फल

आदितिथिक्षये चतुर्थीतः, मध्यतिथिक्षये चतुर्थीतः अष्टम्यादितिथिद्वासेऽपि चतुर्थीतः व्रतं कार्यम्। नन्वेकान्तरेण व्रते कृते सति अष्टम्यामपि पारणा भवतीति दूषणम्, नैवं वाच्यम्; एकान्तरस्यागमोक्तत्वात्। तिथिक्षयेऽपि पञ्चम्यां पारणादेष आगच्छति, इति न वाच्यं प्रोषधोपवासकथितपञ्चम्याः चतुर्थीमेवाध्यासेपात्। एवं दशवर्षपर्यन्तं व्रतं पालनीयम्, ततश्चोद्यापनं भवेत्। एतस्य फलं तु मुक्तिरिति निर्णयः।

अर्थ—दशलक्षण व्रतमें आदितिथि पञ्चमीका अभाव होनेपर चतुर्थी तिथिसे व्रतारम्भ, मध्यतिथिका अभाव होनेपर चतुर्थीसे व्रतारम्भ और अष्टमी तिथिके अनन्तर चतुर्दशी तक किसी भी तिथिका ह्रास होनेपर चतुर्थीसे ही व्रतका आरम्भ किया जाता है।

यहाँ शंका की गयी है कि जो एकान्तर उपवास और पारणा करेगा, उसे अष्टमीकी पारणा करनी होगी अर्थात् पञ्चमीका उपवास पष्टीकी पारणा, सप्तमीका उपवास अष्टमीकी पारणा, नवमीका उपवास दशमीकी पारणा इत्यादि एकान्तर उपवासके क्रमसे अष्टमीकी पारणा आती है, यह दोष है। क्योंकि अष्टमी पूर्वातिथि है, इसका उपवास अवश्य करना चाहिए। आचार्य उत्तर देते हैं कि यहाँ पूर्वातिथिका विचार नहीं किया जाता है, आगममें एकान्तर उपवास करनेका क्रम बताया गया है, अतः यहाँपर एकान्तर उपवास क्रम ही प्राज्ञ है। इसलिये अष्टमीको पारणा करनेमें दोष नहीं है।

मध्यमें तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जायगा, जिससे एकान्तर उपवास करनेवाला पञ्चमीको पारणा करेगा, यह भी दोष है।

क्योंकि दशलक्षण व्रतका प्रोपध पञ्चमीको होना चाहिये, किन्तु पञ्चमीकी पारणा आती है। आचार्य इस शंकाका समाधान करते हुए कहते हैं कि मध्यमे तिथिक्षय होनेपर चतुर्थीको उपवास किया जाता है, किन्तु इस चतुर्थीमें ही पञ्चमीका अथारोप कर लिया जाता है। उत्तम क्षमाधर्मकी भावना तथा जाप, जो कि पञ्चमीको किया जाता है इसी चतुर्थीको कर लिये जाते हैं, अतः चतुर्थीको ही पञ्चमी मान लिया जाता है। अतएव पञ्चमीकी पारणोंमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार इस दशलक्षण व्रतका पालन दस वर्ष तक करना चाहिये।

इस व्रतका फल मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति है; यों तो इस व्रतसे लौकिक ऐश्वर्य और अशुद्धशर्मा प्राप्ति होती है, पर वास्तवमें यह व्रत मोक्षलक्ष्मीको कालान्तरमें देता है।

विवेचन—तिथिक्षय होनेपर दशलक्षण व्रतकी चतुर्थीसे प्रारम्भ किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर व्रत एक दिन अधिक किया जाता है। अन्तिम तिथिकी वृद्धि होनेपर अर्थात् दो दिन चतुर्दशी होनेपर प्रथम दिन व्रत किया जाता है। यदि दूसरी चतुर्दशी भी छः घटीसे अधिक हो तो उस दिन भी व्रत करना होता है तथा छः घटी प्रमाणसे अल्प होने पर पारणा की जाती है। इस व्रतका फल अनुपम होता है। दस धर्म आत्माके वास्तविक स्वरूप हैं, इनके चिन्तन, मनन और जीवनमें उतारनेसे जीव शीघ्र ही अपने कर्मोंको तोड़कर निर्वाण प्राप्त करता है। उत्तम क्षमादि धर्म आत्माकी कर्मकालिमाको नष्ट करनेमें समर्थ हैं। व्रतोपवाससे विषयोंकी ओर ले जानेवाली इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा जीव अपने उद्धानका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

पुष्पाञ्जलि व्रतकी विशेष विधि और व्रतका फल

पूर्वकथितपुष्पाञ्जलिव्रतं पञ्चदिनपर्यन्तं करणीयम्।
तत्र केतकीकुसुमादिभिः चतुर्विंशतिविकसितसुगन्धितसुम-
नोभिश्चतुर्विंशतिजिनात् पूजयेत्। यथोक्तकुसुमभावे पूजयेत्

पीततन्दुलैः। पञ्चवर्षानन्तरं उद्यापनं कार्यम्। केवलज्ञान-
सम्प्राप्तिरेतस्य परमं फलम्। तिथिक्षये वा तिथिवृद्धौ पूर्वोक्त
एव क्रमः स्मर्तव्यः। पुष्पाञ्जलिव्रते पञ्चमीपक्ष्योरुपवासः
सप्तम्यां पारणा अष्टमी-नवम्योरुपवासः दशम्यां पारणा, एक-
नन्तरेण तु तिथिक्षये चादिदिने गृहीते पारणाद्वयं मध्ये कार्यम्;
पञ्चम्यामष्टम्यां च पष्ठ्यामष्टम्यां वा यथैकान्तरं स्यात्तथा
कार्यम्; एतत् पुष्पाञ्जलिव्रतं कर्मरोगहरं मुक्तिप्रदं च पारम्पर्येण
भवति।

अर्थ—पहले बताये हुए पुष्पाञ्जलि व्रतकी पाँच दिन तक करना चाहिये। इस व्रतमें केतकी, बेला, चम्पा आदि विकसित और सुगन्धित पुष्पोंसे चौबीस भगावान्की पूजा करनी चाहिये। यदि वास्तविक पुष्प न हों या वास्तविक पुष्पोंसे पूजन करना उपयुक्त न समझें तो पीले चावल-से भगावान्की पूजा करनी चाहिये। पाँच वर्षके पश्चात् व्रतका उद्यापन कर देना होता है। इस व्रतका फल केवलज्ञानकी प्राप्ति होना बताया गया है अर्थात् विधिपूर्वक पुष्पाञ्जलि व्रतके पालनेसे, केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। तिथिक्षय या तिथिवृद्धि होनेपर पूर्वोक्त क्रम ही अवगत करना चाहिये। तिथिक्षयमें एक दिन पहलेसे और तिथिवृद्धिमें एक दिन अधिक व्रत किया जाता है। पुष्पाञ्जलि व्रतमें पञ्चमी और पष्ठी इन दोनों दिनोंका उपवास, सप्तमीकी पारणा, अष्टमी और नवमीका उपवास तथा दशमीको पारणा की जाती है। एकान्तर उपवास करनेवालेको अर्थात् एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा, पुनः उपवास तत्पश्चात् पारणा इस क्रमसे उपवास करनेवालेको तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले से व्रत करनेके कारण मध्यमें दो पारणाएँ करनी चाहिये। पञ्चमी और अष्टमीकी पारणा अथवा पष्ठी और अष्टमीकी पारणा की जाती है। एकान्तर उपवास और पारणाका क्रम चल सके ऐसा करना चाहिये। यह पुष्पाञ्जलि व्रत कर्मरूपी रोगको दूर करनेवाला, लौकिक अशुद्धयका प्रदाता एवं परम्परासे मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाला है।

विवेचन—पुष्पाब्जलि व्रतकी विधि पहले लिखी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर कुछ विशेष बातें इस व्रतके सम्बन्धमें बतलायी हैं। पुष्पाब्जलि शब्दका अर्थ है कि पुष्पोंका समुदाय अर्थात् सुगन्धित, विकसित और कीटाणु रहित पुष्पोंसे जिनेन्द्र भगवानकी पूजा इस व्रतवाले को करनी चाहिए। पहले व्रत विधियोंमें लिखे गये जापको भी पुष्पोंसे ही करना चाहिए। यदि पुष्प चढ़ानेसे पुतराज हो तो पीले चावलोंसे पूजन तथा लवंगोंसे जाप करना चाहिए। पाँचों दिन पूजन और जाप करना आवश्यक है। इस व्रतका बड़ा भारी माहात्म्य बताया गया है, विधिपूर्वक इसके पालनेसे केवलज्ञानकी प्राप्ति परम्परासे होती है, कर्मरोग दूर होता है तथा नाना प्रकारके लौकिक ऐश्वर्य, धन-धान्यादि विधितिरा प्राप्त होती हैं। इसकी गणना काम्य व्रतोंमें इसीलिए की गयी है, कि इस व्रतको विधिपूर्वक पालकर कोई भी व्यक्ति अपनी लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण कर सकता है।

उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि

उत्तममुक्तावलीव्रतं वह्नि, तृतीयभवमोक्षदम्। भाद्रपदशुक्ल-सप्तम्यां प्रोषधं कृत्वा अष्टम्यामुपवासं कुर्यात्। पश्चात्—
आश्विने मेचके पक्षे पञ्चम्यं सूर्यप्रभो भवेत्।
चन्द्रप्रमख्योदश्यामेव चन्द्रप्रमस्तथा ॥१॥
आश्विनशुक्लैकादश्यां कुर्याद् दुष्कर्महानये।
कुमारसंभवो नामोपवासः शुभदो भवेत् ॥२॥
कार्तिके श्यामले पक्षे द्वादश्यां प्रोषधो भवेत्।
नामनः नन्दीश्वरस्तस्य माहात्म्यं केन वर्णितम् ॥
कार्तिके धवले पक्षे तृतीयादिवसे मतः।
सर्वार्थसिद्धिकं नाम चतुर्वर्गप्रसाधनम् ॥
कार्तिके धवले पक्षे लक्ष्यश्चैकादशीदिने।
प्रातिहार्यविधिवर्जम कथितं धर्मवृद्धये ॥

एकादश्यां तु मार्गस्य मेचकेऽतिशुभप्रदः।
सर्वसुखप्रदं नाम प्रभावः केन वर्ण्यते ॥
आश्विपञ्चम्यपक्षे शुक्ले तृतीयः प्रोषधः शुभः।
अनन्तविधिरित्युक्तमनन्तसुखसाधनम् ॥
ध्वजं चतुर्गु मासेषु, उपवासाः प्रकीर्तितः।
प्रत्यहं ते विधातव्या नवाब्दमिति साधुभिः ॥
उपवासदिने जिनैन्द्ररूपनं पूजनं कार्यम्, नवमवर्षव्रतोद्यो-
तनं करणीयम्। इति उत्तममुक्तावलीव्रतं भूरिसाधुभिः निर्गदितम्।
अर्थ—उत्तम मुक्तावली व्रतकी विधिको कहते हैं, यह व्रत तृतीय भवमें मोक्ष देनेवाला है। इस व्रतका प्रारम्भ भाद्रपद शुक्ला सप्तमी-को होता है। सप्तमीको एकाशन कर भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको उपवास करना चाहिए पश्चात् आश्विन वदी पष्टीको सूर्यप्रभ नामका उपवास तथा आश्विन वदी त्रयोदशीको चन्द्रप्रभ नामका उपवास करना चाहिए। आश्विन शुक्लपक्षमें दुष्कर्मोंके क्षय करनेके लिए एकादशी तिथिको कुमार-संभव नामका उपवास करना चाहिए। यह उपवास सब प्रकारसे शुभ करनेवाला होता है।
कार्तिक कृष्णपक्षमें द्वादशी तिथिको प्रोषधोपवास करना चाहिए। इस उपवासकी नन्दीश्वर संज्ञा है। इसकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है। कार्तिक शुक्लपक्षमें तृतीयाको चतुर्वर्गको देनेवाला सर्वार्थसिद्धि नामक उपवास किया जाता है। इस उपवासके करनेसे सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। कार्तिक शुक्लमें एकादशी तिथिको प्रातिहार्य नामक उपवास किया जाता है, यह धर्मवृद्धिको करनेवाला होता है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिको सर्वसुखप्रद नामक उपवास किया जाता है। इसके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है। अगहन सुदी तृतीयाको अनन्तविधि नामका प्रोषधोपवास किया जाता है, यह अनन्तसुखका देने वाला होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें भाद्र-पद, आश्विन, कार्तिक और मार्गशीर्ष इन चार महानोंमें उपवास करने

चाहिए। इस विधिसे नौ वर्षतक व्रत पालनकर उद्यापन करना चाहिए।

उपवासके दिन भगवान् जिनेश्वरका अभिषेक, पूजन करने चाहिए। इस प्रकार नौ वर्षतक व्रतका पालन कर नौवें वर्ष उद्यापन कर देना चाहिए, ऐसा अनेक श्रेष्ठ आचार्योंने उत्तम मुक्तावली व्रतके सम्बन्धमें कहा है।

विवेचन—मुक्तावली व्रतकी विधि पहले बतायी जा चुकी है। आचार्यने यहाँपर उत्तममुक्तावली व्रतकी विधि बतलायी है। उत्तम मुक्तावली व्रत भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और अगहन इन चार महीनोंमें पूरा किया जाता है। भाद्रपद, शुक्लपक्षमें सप्तमीका एकादश और अष्टमीका उपवास, कार्तिकमें कृष्णपक्षमें षष्ठी और त्रयोदशीको और शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास; कार्तिकमें कृष्णपक्षमें द्वादशीको, और शुक्लपक्षमें तृतीया और एकादशीको उपवास एवं अगहनमें कृष्णपक्षमें एकादशीको और शुक्लपक्षमें तृतीयाको उपवास किया जाता है। इस व्रतमें उपवासके दिनोंमें पञ्चाष्टृत अभिषेक करनेका विधान है। व्रतके दिनोंमें चतुर्विंशति जिनपूजा की जाती है। रात जागरण पूर्वक वितायी जाती है। शील व्रत भाद्रपदसे आरम्भ कर अगहनतक पाला जाता है।

इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन उपवासके दिन तीन बार, शेष दिन एक बार एक-एक माला अर्थात् १०८ बार जाप करना चाहिए। चारों महीनोंमें इसका पालन किया जाता है तथा भोजन हरी, नमक या कोई रस छोड़कर किया जाता है। उपवासके दिन गृहारम्भका विच्छेद त्याग करना आवश्यक होता है। पारणाके दिन भगवान्के अभिषेकके अनन्तर दीन-दुःखी व्यक्तियोंको आहार करानेके उग्रान्त भोजन करना होता है। भोजनमें प्रायः माड़-भात लेनेका विधान है।

प्रकारान्तरसे सुगन्धदशमी व्रतकी विधि

सुगन्धदशमीमाह—

भद्रे भाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन्पञ्चमीदिने।

उपोष्यते यथाशक्तिः क्रियते कुसुमाञ्जलिः ॥

तथा पञ्च्यां च सप्तम्यां वाष्टम्यां नवमीदिने।

जिनानामप्रतो भूयो दशम्यां जिनवेश्मनि ॥

उपवासं समादाय विधिरय विधीयते।

चतुर्विंशतितीर्थानां स्नपनं पूजनं ततः ॥

सुमधुररसैः पूजां धूपं दशविधं तथा।

पूर्णदुदशमे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ॥

अर्थ—सुगन्धदशमी व्रतकी विधि कहते हैं—श्रेष्ठ भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे यथाशक्ति पुष्पाञ्जलिब्रत करते हुए षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी और नवमीका उपवास या एकांतर उपवास करने चाहिए। दशमीको जिन-मन्दिरमें जाकर उपवास ग्रहण किया जाता है तथा चौबीस तीर्थकरोंकी पूजा, अभिषेक किया की जाती है। दशाङ्गी धूप भगवान्के सामने खेयी जाती है। इस वर्ष तक इस व्रतका पालन किया जाता है, इसके पश्चात् उद्यापन किया सम्पन्न की जाती है।

अक्षयनिधि व्रतकी विधिके सम्बन्धमें विशेष

अक्षयनिध्याख्यं व्रतं श्रावणशुक्लपक्षे दशमीदिने दशाब्द-मध्यघटोपरिस्थितचतुर्विंशतिकायाः स्नपनं पूजनं च कार्यम्, दशवर्षपर्यन्तं व्रतं भवतीति। पुत्रपौत्रादिवृद्धिकरञ्चेति।

अर्थ—अक्षयनिधि व्रतमें विशेष विधि यह है कि श्रावणशुक्ल दशमीके दिन दस कमलोंके ऊपर घड़ेको स्थापितकर उसके ऊपर चौबीस भगवान्की प्रतिमाओंको या किसी भी भगवान्की प्रतिमाको स्थापित कर अभिषेक और पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार भादों वदी दशमी और भादों सुदी दशमीको भी व्रत करना चाहिए। अक्षयनिधि व्रतके दश वर्ष तक करनेसे पुत्र, पौत्र, धन, धान्यकी वृद्धि होती है।

विवेचन—अक्षयनिधि व्रतके सम्बन्धमें दो मान्यताएँ हैं—प्रथम मान्यता श्रावणवदी दशमी; भादोंवदी दशमी और भादों सुदी दशमी इन तीन तिथियोंमें व्रत करनेकी है। इस मान्यताका आचार्यने पहले

वर्णन किया है। द्वितीय मान्यता के अनुसार यह व्रत श्रावणवदी दशमी-से आरम्भ किया जाता है तथा भादों वदी दशमीको समाप्त होता है। इसमें दोनों दशमी तिथियोंमें उपवास तथा शेष तिथियोंमें एकाग्रान किये जाते हैं। व्रतारम्भके दिन दस कमलोंके ऊपर केशर, चन्दन आदिसे संस्कृत मिट्टीके घड़ेको स्थापित कर, घड़ेके ऊपर थाल रखा जाता है। थालमें अष्टकमलदल बनाकर भगवान्की प्रतिमा सिंहासन पर स्थापित की जाती है। इस विधिसे प्रतिदिन भगवान्का अभिषेक और पूजन किये जाते हैं। अर्थात् श्रावण सुदी दशमीके दिन प्रतिमा घटके ऊपर स्थापित की जाती है, वह भादों वदी दशमी तक स्थापित रहती है। प्रतिदिन अभिषेक और पूजन होते रहते हैं। इस व्रतमें प्रतिदिन दस अष्टक, दस अर्घ और दस फल चढ़ाये जाते हैं। प्रतिदिन तीनों समय सामायिक किया जाता है तथा त्रेसठ शलाकापुलकोंके पुण्य चरितोंका अध्ययन, मनन और चिन्तन आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

एकाग्रानके दिनोंमें भी प्रथम दिन माङ्गमात, द्वितीय दिन रसत्याग पूर्वक आहार, तृतीय दिन दूध त्याग सहित आहार, चतुर्थदिन दही त्याग सहित आहार, पञ्चम दिन नमक त्यागसहित आहार, षष्ठ दिन नियमित रूपसे एक ही अन्नका आहार, सप्तम दिन पुनः माङ्गमात, अष्टम दिन अलौना—विना नमक और मीठेका भोजन, नवम दिन ऊनोदर, दशम दिन दही त्याग पूर्वक आहार, एकादशवें दिन माङ्गमात, द्वादशवें दिन एक अन्न आहार, त्रयोदशवें दिन परिगणित वस्तुओंका आहार, चौदहवें दिन ऊनोदर या माङ्गमात और पन्द्रहवें दिन उपवास किया जाता है। ये सभी दिन संयमके दिन कहलाते हैं। इनमें वाणीसंयम और इन्द्रिय-

१. व्रत अर्थैनिधिको उपवास । श्रावणसुदि दशमी करितास ॥

भादोंवद जब दशमी होय । तिनहुँके प्रोषध अवलोय ॥

अवर सकल एकन्त जु करै । सो दस वर्षहि पुरों करै ॥

उद्यापन करि छौड़ै ताहि । तांतरिपुणौ करिहै जाहि ॥

—क्रियाकोश किसनसिंह ।

संयमका पालन करना चाहिए। भादोंवदी एकादशीको व्रत समाप्त होनेके पश्चात् एकाग्रान किया जाता है। पश्चात् पूर्ववत् सारों क्रियाएँ सम्पन्न होने लगती हैं। इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करनेसे सभी लौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मेघमाला व्रतकी विशेष विधि

मेघमालां कथयाम्यहम्—

भद्रे भाद्रपदे मासे मेघके प्रतिपदिने ।

आरम्भे त व्रतं मासं प्रोषधैकान्तरेण च ॥

स्नातत्र्यं च सुनीरस्य धाराभिः ब्रह्मचारिभिः ।

आवृतं परिधातत्र्यं शुक्लमेवांशुकद्वयम् ॥ १ ॥

जिनालये पुरःप्रस्थायाकाशे विष्टरं शुभम् ?

संस्थाप्य मेघ मालेयं शुक्लं धार्य वितानकम् ॥

विष्टरे श्रीजिनाधीशं यथाशक्ति महोत्सवम् ।

स्नापयेदमृतानापि पञ्चधा परमेश्वरम् ॥

संस्थाप्य कलशैश्चैतन्नं वितानोपरि शान्तये ।

गन्धाम्बुचिन्तयेदेवं वारिमेघाकृतं यथा ॥ २ ॥

पूर्वं संस्थाप्य पूजयेत्, तिथिहानिबुद्धौ षोडशकारणवत्मेघ-

माला ज्ञेया। मासिकव्रतत्वात्तरपारणा पात्रदानादनन्तरं पञ्चवर्षं

यावत्करणीयम् । तत उद्यापनं कुर्यात् ।

अर्थ—मेघमाला व्रतकी विधिका वर्णन किया जाता है। कल्याण-

कारी भाद्रपद मासमें कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे एक महीने तक व्रत करना

चाहिए। एकान्तर उपवास व्रतके दिनोंमें करना चाहिए। व्रत धारण

करनेवाले ब्रह्मचारीको स्वच्छ प्रासुक जलसे स्नान करके व्रत विधिको

सम्पन्न करना चाहिए। व्रत समाप्त होनेतक दो शुक्ल वस्त्र धारण करने

चाहिए। अर्थात् एक स्वच्छ धोती तथा दूसरा हुपट्टा धारण कर व्रत

सम्पन्न करना चाहिए। यदि कोई नारी इस व्रतको सम्पन्न करे तो उसे

एक साड़ी तथा एक अन्य वस्त्र धारण कर व्रत सम्पन्न करना चाहिए।

जिनालयके प्रांगणमें एक स्वच्छ दूधके समान सफेद चँदोवा लगा कर उसके नीचे सिंहासन बिछाकर भगवान्‌को स्थापित करना चाहिए। भगवान्‌को स्थापित करनेकी विधि यह है कि एक घड़ेको चन्दन, कपूर, केशर आदिसे संस्कृत कर उसके ऊपर थाल रखकर भगवान्‌को विराजमान करना चाहिए। प्रतिदिन अभिषेक, पूजन आदि कार्योंको उत्साह और उत्सव सहित करना चाहिए। पञ्चासृतसे प्रतिदिन भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। शान्ति प्राप्त करनेके लिए अभिषेक के कलशोंको स्वच्छ चँदोवेके ऊपर स्थापित कर मेवोंके वर्षणके समान अभिषेक किया जाता है। जल, चन्दन आदि पदार्थोंसे भगवान्‌का अभिषेक होना चाहिए। गन्धोदककी चिन्ता इस प्रकार करनी चाहिए, मानो मेवकी जलधारा ही गिर रही हो। इस प्रकार अभिषेकके अनन्तर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए।

यदि तिथि-वृद्धि या तिथि-हानि हो तो सोलहकारण व्रतके समान एक दिन पहलेसे तथा एक दिन अधिक मेघमाला व्रत नहीं किया जाता है। मासिक व्रत होनेके कारण इस व्रतको पारणा पात्रदानके अनन्तर की जाती है। आश्विन वदी प्रतिपदाको व्रत करनेके अनन्तर इस व्रतकी समाप्ति होती है। पाँच वर्षतक व्रत किया जाता है, पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। मेघमाला व्रतमें तिथिवृद्धि और तिथि हानिमें सोलहकारण व्रतके समान व्यवस्था है।

रत्नत्रय व्रतकी विधि

अथ रत्नत्रयव्रतमुच्यते—भाद्रपदमासे सिते पक्षे द्वादशीदिने स्नानात्वा गत्वा जिनागारे पूजयित्वा जिनाम्। भोजनानन्तरं जिन-वेष्टमनि गन्तव्यम्। त्रयोदश्यां सम्यग्दर्शनपूजा चतुर्दश्यां सम्यग्-महानपूजा पौर्णमास्यां सम्यक्चारित्रपूजा आश्विनप्रतिपदि महाधर्मभक्तभुक्तं पूर्णाभिषेकश्च पञ्चासृतैः करणीयः, चर-स्थिरविभ्यानाम् ॥

अर्थ—रत्नत्रय व्रतको कहते हैं—भाद्रपद शुक्लमें द्वादशी तिथिको स्नान कर जिनालयमें जाकर जिन-भगवान्‌की पूजा की जाती है। भोजनके अनन्तर जिन-मन्दिरमें जाना चाहिए। वहाँ शास्त्रसाध्याय, स्तोत्रपाठ आदि धर्मध्यानमें समयको व्यतीत करना चाहिए। त्रयोदशी तिथिको सम्यग्दर्शनकी पूजा, चतुर्दशीको सम्यग्ज्ञानकी पूजा, पूर्णिमाको सम्यक्चारित्रकी पूजा, और आश्विनकृष्णा प्रतिपदाको महार्घ्य, एक बार भोजन तथा चल और अचल जिनिविम्बोंका पञ्चासृत पूर्ण अभिषेक किया जाता है।

तिथिक्षय और तिथिवृद्धि होनेपर रत्नत्रय

व्रतकी व्यवस्था

तिथिक्षये चादिदिनं वाधिकेप्यधिकं फलमिति। द्वादश्याधिके पूर्वतिथिनिर्णयग्रहणात् धारणाद्वा; त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, इति तिथित्रयस्य मध्येऽन्यतरस्य वृद्धिगते सति प्रोपधाधिक्रयं कार्यम्, पारणाधिक्ये नियमो नास्तीति। तिथिहानिसे द्वादशीतः व्रतं कार्यम् ॥

अर्थ—तिथिक्षय होनेपर एक दिन पहले व्रत किया जाता है और तिथिवृद्धि होनेपर एक दिन अधिक व्रत करना पड़ता है। एक दिन अधिक व्रत करनेसे अधिक फलकी प्राप्ति होती है। यदि द्वादशी तिथि-की वृद्धि हो तो पूर्वतिथि निर्णयके अनुसार व्रत धारण करना चाहिए। यदि त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमासे कोई तिथि बढ़े तो एक अधिक प्रोपध करना चाहिए। यदि पारणाका दिन अर्थात् प्रतिपदाकी वृद्धि हो तो एक दिन अधिक उपवास या एकाग्रान करनेकी आवश्यकता नहीं है। तिथिक्षय होनेपर द्वादशीसे व्रत करना चाहिए।

काम्यव्रतोंका फल

एवं पूर्वोक्तमनन्तचतुर्दशीव्रतमपि काम्यमस्ति। काम्य-व्रताचरणेन दुःखदार्द्रियादिकं विलीयते, धनधान्यादिकं वर्द्धते।

चन्द्रनपष्टीलविधिविधानव्रतयोरापि काम्यत्वात् पुत्रपौत्रधनधान्यै-
श्वर्यविभूतीनां वृद्धिः जायते । विधिपूर्वककाम्यव्रताचारणम्
इष्टसिद्धिर्भवति रोगशोकादयः पलायन्ते, अमरः किंकराः
भवन्ति, किं बहुना ॥ काम्यानि समाप्ताणि ॥

अर्थ—इस प्रकार पूर्वोक्त अनन्तचतुर्दशी व्रत भी काम्य व्रत है ।
काम्यव्रतोंके पालन करनेसे दुःख, दरिद्रता, शोक, व्याधि आदि दूर हो
जाती है और धन, धान्य, ऐश्वर्य आदिकी वृद्धि होती है । चन्द्रनपष्टी
और लब्धिविधान व्रतोंको भी काम्यव्रत होनेसे इनका पालन करने पर
पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्य, विभूति आदिकी वृद्धि होती है । विधि-
पूर्वक काम्यव्रतोंके आचरणसे इष्ट सिद्धि होती है । रोग, शोक, व्याधि,
आपत्ति आदि दूर हो जाती है । अधिक क्या, काम्यव्रतोंके आचरणसे
देव दास बन जाते हैं, सभी प्रकारकी कामनाएँ सफल हो जाती हैं ।

तात्पर्य यह है कि काम्यव्रत शब्दका अर्थ ही है कि जो व्रत किसी
कामनासे किया जाता है तथा किसी प्रकारकी अभिलाषाको पूर्ण करता
है, वह काम्य है । इस प्रकार काम्यव्रतोंका वर्णन पूर्ण हुआ ।

अकाम्यव्रतोंका वर्णन

अथाकाम्यं लक्षणपौक्तिसंज्ञकं मेरुपौक्तिसंज्ञकं नन्दीधर-
पौक्तिसंज्ञकं पल्यव्रतविधानमित्यादिकं ज्ञेयम् । आर्यग्रन्थेषु कथा-
कोपादिषु स्वरूपं ज्ञातव्यम् । अत्र तु विस्तारभयाच्च व्रतम्यते,
इति अकाम्यानि समाप्तानि ॥

अर्थ—लक्षणपौक्तिक, विमानपौक्तिक, मेरुपौक्तिक, नन्दीधरपौक्तिक, पल्य-
व्रतविधान आदि अकाम्यव्रत हैं । आर्य ग्रन्थ कथाकोप आदिमें इनका
स्वरूप बताया गया है, वहींसे अवगत करना चाहिए । यहाँ विस्तार-
भयसे नहीं लिखा गया है । इस प्रकार अकाम्य व्रतोंका निरूपण समाप्त
हुआ ।

विवेचन—स्वर्गके विमानोंमें ६३ पटल हैं । एक-एक पटलकी
अपेक्षा चार-चार उपवास और एक-एक वेला करना चाहिए । इस

प्रकार ६३ पटलोंकी अपेक्षा कुल २५२ उपवास और ६३ वेला तथा
अन्तमें एक तेला करके व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है । इस व्रतको
समाप्त करनेमें ६९० दिन लगते हैं । यह लगातार किया जाता है ।
यों तो इसका प्रारम्भ किसी भी महीनेमें किया जा सकता है, पर
श्रावणसे इसे प्रारम्भ करना अच्छा होता है । यदि श्रावण कृष्ण प्रदि-
पदाको आरम्भ किया तो प्रथम उपवास, अनन्तर पारणा, द्वितीय उप-
वास अनन्तर पारणा, तृतीय उपवास अनन्तर पारणा, चतुर्थ उपवास
अनन्तर पारणा, इसके पश्चात् एक वेला उपवास किया जायगा । इस
प्रकार चार उपवास चार पारणाएँ और एक वेला प्रथम पटल सम्पन्न
किये जायेंगे । इसी तरह ६३ पटलोंके उपवास और पारणाएँ हेर्गो,
अन्तमें एक तेला कर व्रतकी समाप्ति कर दी जाती है । अतः कुल उपवास
 $६३ \times ४ = २५२$ दिन, ६३ वेला $= ६३ \times २ = १२६$ दिन, एक
तेला $= ३$ दिन । $२६२ + १२६ + ३ = ३९१$ उपवासके दिन । पार-
णाएँ $२५२ + ६३$ वेलाके अनन्तर $+ १$ तेलके अनन्तर $= ३१६$ पारणा-
के दिन $३९१ + ३१६ = ६९७$ दिन इस व्रतको पूर्ण करनेमें लगते हैं ।
इस व्रतके लिए किसी तिथिका विधान नहीं है ।

पल्यविधान व्रतमें एक वर्षमें ७२ उपवास किये जाते हैं । प्रथम
उपवास आश्विन वदी पष्टीको किया जाता है, द्वितीय आश्विन वदी
त्रयोदशीको, तृतीय वेला आश्विन सुदी एकादशी और द्वादशीको की
जाती है । इस प्रकार आगे-आगे भी उपवास और वेला की जाती है ।

क्रम निम्न प्रकार है—

आश्विन वदी	६ तिथि उपवास	सुदी ३	उपवास
"	१३ उपवास	सुदी १२	उपवास
" सुदी	११, १२ वेला—	सार्गशीर्ष वदी ११	उपवास
"	दो दिनका उपवास	" सुदी ३	उपवास
" सुदी	१४ उपवास	सुदी १२	उपवास
कात्तिक वदी	१२ उपवास	पौष वदी २	उपवास

२५६

व्रततिथिनिर्णय

पौष	वदी	अमावस्या	उपवास	ज्येष्ठ वदी	१०	उपवास
"	सुदी	५	उपवास	"	१३-१४-३०	तेला-तीन
"	सुदी	७	उपवास	"	१३-१४-३०	तेला-तीन
"	पूर्णिमा	८	उपवास	ज्येष्ठ सुदी	८	उपवास
माघ	वदी	३	उपवास	"	१०	उपवास
"	"	७	उपवास	"	१५	उपवास
"	"	१४	उपवास	आषाढ़ वदी	१०	उपवास
"	सुदी	७-८	वेला-दो	"	१३-१४-३०	तेला-तीन
"	"	दिनका उपवास	"	"	१३-१४-३०	तेला-तीन
फाल्गुन	वदी	१०	उपवास	सुदी	८	उपवास
"	५-६	वेला-दो	"	"	१०	उपवास
फाल्गुन सुदी	१	उपवास	"	"	१५	उपवास
"	११	उपवास	श्रावण वदी	"	४	उपवास
चैत्र वदी	१-२	वेला-दो दिनका	"	"	६	उपवास
"	४	उपवास	"	"	८	उपवास
"	६	उपवास	"	"	१४	उपवास
"	८	उपवास	सुदी	"	३	उपवास
"	११	उपवास	भाद्रो वदी	"	१५	उपवास
"	७	उपवास	भाद्रो वदी	"	२	उपवास
सुदी	१०	उपवास	६-७	वेला-दो दिन-		
"	४	उपवास	का उपवास	"	१२	उपवास
वैशाख वदी	१०	उपवास	भाद्रो सुदी	५-६-७	तेला-तीन	
"	१०	उपवास	"	दिनका उपवास	९	उपवास
"	२-३	वेला-दो दिनका	"	११-१२-१३	तेला-	
"	९	उपवास	"	तीन दिनका उपवास	१५	उपवास
"	१३	उपवास	"	"	"	

व्रततिथिनिर्णय

२५७

इस प्रकार कुल ४८ उपवास, ४ तेला और ६ वेला क्रिये जाते हैं।
 अतएव ४८ + १२ + १२ = ७२ उपवास होते हैं। व्रतके दिन गृह-
 दम्भका त्याग कर धर्मध्यान पूर्वक समयको चितया जाता है। दोष
 अकारण्य व्रतोंका निर्णय पहले किया जा चुका है।

उत्तम फलदायक व्रतोंका निर्देश

अथोत्तमार्थानि

रत्नत्रययोऽशकारणप्रादिकदशाल-

क्षणिकपञ्चकल्याणकमहापञ्चकल्याणकसिंहनिष्कौडितश्रुतज्ञान-
 स्तुत्रजिनेन्द्रमाहात्म्यत्रिलोकसारधातिक्षयध्यानपंक्तिचारित्र्यशुद्धि-
 गुणपंक्तिप्रमादपरिहारसंयमपंक्तिप्रतिष्ठाकारणमहोत्सवादिकानि
 व्रतानि उत्तमार्थानि ज्ञेयानि। एतेषां विशेषस्तु आर्षधर्म्येभ्यो ज्ञेयः।

अर्थ—रत्नत्रय, योऽशकारण, अष्टाङ्गिका, दशलक्षण, पञ्चकल्याणक,
 महापञ्चकल्याणक, सिंहनिष्कौडित, श्रुतज्ञानस्तुत्र, जिनेन्द्रमाहात्म्य,
 त्रिलोकसार, धातिक्षय, ध्यानपंक्ति, चारित्र्यशुद्धि, गुणपंक्ति, प्रमादपरिहार,
 संयमपंक्ति, प्रतिष्ठाकारणमहोत्सव और संन्यासमहोत्सव आदि व्रत
 उत्तमार्थसंज्ञक होते हैं। इनका विशेष वर्णन आर्षधर्म्योसे अवगत
 करना चाहिए।

विवेचन—श्रुतज्ञान व्रतमें सोलह भतिपदाओंके सोलह उपवास,
 तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, चार चतुर्थियोंके चार उपवास, पाँच
 पञ्चमियोंके पाँच उपवास, छः षष्ठियोंके छः उपवास, सात सप्तमियोंके
 सात उपवास, आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, नव नौमियोंके नौ उप-
 वास, बीस दशमियोंके बीस उपवास, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उप-
 वास, बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह उप-
 वास, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह
 उपवास एवं पन्द्रह अमावस्याओंके पन्द्रह उपवास किये जाते हैं।

पञ्चकल्याणक व्रतमें जब-जब चौबीस तीर्थक्षेत्रोंके पञ्चकल्याणक हैं,
 उन-उन तिथियोंमें उपवास करने चाहिए।

पञ्चकल्याणक व्रत-तिथि-बोधक चक्र

२५८

तीर्थंकर	गर्भकल्याणक	जन्मकल्याणक	तपकल्याणक	ज्ञानकल्याणक	निर्वाणकल्याणक
१ ऋषभनाथ	आषाढ़ वदी २	चैत्र वदी ९	चैत्र वदी ९	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी १४
२ अजितनाथ	ज्येष्ठ वदी ३०	पौष सुदी १०	पौष सुदी ९	पौष सुदी ११	चैत्र सुदी ५
३ संभवनाथ	फाल्गुन वदी ८	मार्गशीर्ष सुदी १५	मार्गशीर्ष सुदी १५	कार्तिक वदी ४	चैत्र सुदी ६
४ अभिनन्दननाथ	वैशाख सुदी ६	पौष सुदी १२	पौष सुदी १२	पौष सुदी १४	वैशाख सुदी ६
५ सुमतिनाथ	श्रावण सुदी २	वैशाख वदी १०	वैशाख सुदी ९	चैत्र सुदी ११	चैत्र सुदी ११
६ पद्मप्रभ	माघ वदी ६	कार्तिक वदी १३	मार्गशीर्ष वदी १०	चैत्र सुदी १५	फाल्गुन वदी ४
७ उपार्श्वनाथ	भादों सुदी ६	ज्येष्ठ सुदी १२	ज्येष्ठ सुदी १२	फाल्गुन वदी ६	फाल्गुन वदी ७
८ चन्द्रप्रभ	चैत्र वदी ५	पौष वदी ११	पौष वदी १२	फाल्गुन वदी ७	फाल्गुन वदी ७
९ पुष्पदन्त	फाल्गुन वदी ९	मार्गशीर्ष सुदी ९	मार्गशीर्ष सुदी ९	कार्तिक सुदी २	भादों सुदी ८
१० शीतलनाथ	चैत्र वदी ८	पौष वदी १२	पौष वदी १२	पौष वदी १४	आश्विन सुदी ८

व्रततिथिनिर्णय

११ धेयान्सनाथ	ज्येष्ठ वदी ६	फाल्गुन वदी ११	फाल्गुन वदी ११	माघ वदी ३०	श्रावण सुदी १५
१२ वासुपूज्य	आषाढ़ सुदी ६	फाल्गुन वदी १४	फाल्गुन वदी १४	माघ सुदी २	भादों सुदी १४
१३ विमलनाथ	ज्येष्ठ वदी १०	पौष सुदी ४	पौष सुदी ४	माघ सुदी ६	आषाढ़ वदी ८
१४ अनन्तनाथ	कार्तिक वदी १	ज्येष्ठ वदी १२	ज्येष्ठ वदी १२	चैत्र वदी ३०	चैत्र वदी ३०
१५ धर्मनाथ	वैशाख सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १३	पौष सुदी १५	ज्येष्ठ सुदी ४
१६ शान्तिनाथ	भादों वदी ७	ज्येष्ठ वदी १४	ज्येष्ठ वदी ४	पौष सुदी ११	ज्येष्ठ वदी १४
१७ कुन्धुनाथ	श्रावण वदी १०	वैशाख सुदी १	वैशाख सुदी १	चैत्र सुदी ३	वैशाख सुदी १
१८ अरहनाथ	फाल्गुन सुदी ३	मार्गशीर्ष सुदी १४	मार्गशीर्ष सुदी १०	कार्तिक सुदी १२	चैत्र वदी ३०
१९ मल्लिनाथ	चैत्र सुदी १	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	मार्गशीर्ष सुदी ११	फाल्गुन सुदी ५
२० मुनिसुव्रतनाथ	श्रावण वदी २	चैत्र वदी १०	वैशाख वदी १०	वैशाख वदी ९	फाल्गुन वदी १२
२१ नमिनाथ	आश्विन वदी २	आषाढ़ वदी १०	आषाढ़ वदी १०	मार्गशीर्ष सुदी ११	वैशाख वदी १४
२२ नेमिनाथ	कार्तिक सुदी ६	श्रावण वदी ६	श्रावण सुदी ६	आश्विन सुदी १	आषाढ़ सुदी ७
२३ पार्श्वनाथ	वैशाख वदी ३	पौष वदी ११	पौष वदी ११	चैत्र वदी ४	श्रावण सुदी ७
२४ महावीर	आषाढ़ सुदी ६	चैत्र सुदी १३	कार्तिक वदी १३	वैशाख सुदी १०	कार्तिक वदी ३०

व्रततिथिनिर्णय

२५९

पञ्चपरमेष्ठी व्रत

अरिहन्तके ६४ गुणोंके लिए चार चतुर्थियों के चार, आठ अष्टमियों-के आठ उपवास, बीस दशमियों के बीस उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास किये जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठीके आठ मूल गुण-के आठ अष्टमियोंके आठ उपवास किये जाते हैं। आचार्य के ३६ मूल गुणोंके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास, छः पष्ठियोंके छः उपवास, पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास, दस दशमियोंके दस उपवास और तीन तृतीयाओंके तीन उपवास, इस प्रकार कुल ३६ उप-वास किये जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठीके २५ मूल गुण होते हैं, उनके लिए ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास और चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। साधु परमेष्ठीके २८ मूल गुण हैं। इनके लिए पन्द्रह पञ्चमियोंके पन्द्रह उपवास, छः पष्ठियोंके छः उपवास एवं सात प्रतिपदाओंके सात उपवास किये जाते हैं। इस प्रकार कुल १४३ उपवास करनेका विधान है। जिस परमेष्ठीके मूल गुणोंके उपवास किये जा रहे हैं, व्रतके दिन उस परमेष्ठीके गुणोंका चिन्तन करना तथा 'ॐ ह्रीं अर्हद्भ्यो नमः, ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः, ॐ ह्रीं आचार्य-भ्यो नमः, ॐ ह्रीं उपाध्यायेभ्यो नमः, ॐ ह्रीं सर्वसाधुभ्यो नमः' का क्रमशः जाप करना चाहिए।

सर्वार्थसिद्धि व्रत

कार्तिक सुदी अष्टमीसे लगातार आठ दिन उपवास किये जाते हैं तथा कार्तिक सुदी सप्तमीका एकाग्रान कर मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदाको को पुनः एकाग्रान करनेका विधान है। इस व्रतमें लगातार आठ दिनतक उपवास करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें 'श्रीसिद्धाय नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है।

धर्मचक्र व्रत

धर्मचक्र व्रत २२ दिनोंमें पूर्ण होता है। इसमें १६ उपवास और ६ पारणाएँ सम्पन्न होती हैं। प्रथम उपवास, पारणा, पश्चात् दो उप-

वास पारणा; अनन्तर तीन उपवास पारणा, तत्पश्चात् चार उपवास पारणा, पश्चात् पाँच उपवास पारणा एवं अन्तमें एक उपवास और पारणा की जाती है। धर्मचक्र व्रतके दिनोंमें 'ॐ ह्रीं अरिहन्तधर्म-चक्राय नमः' मन्त्रका जाप गुग्गुलु और धूप देकर किया जाता है।

नवनिधि व्रत

नवनिधि व्रतमें २१ उपवास किये जाते हैं। चौदह चतुर्दशियोंके चौदह, नौ नवमियोंके नौ, तीन तृतीयाओंके तीन एवं पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर एकाग्रान करनेका विधान है। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं अक्षयनिधिप्राप्तेभ्यो जितेन्द्रेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप किया जाता है।

शील व्रत

शील व्रत एक वर्षमें पूर्ण किया जाता है। वर्षके ३६० दिनोंमें एकान्तरसे उपवास करने चाहिए। सम्पूर्ण शीलका पालन करना इस व्रतके लिए अनिवार्य है। बात यह है कि देवी, मनुष्यणी, तिर्यञ्चणी और अचेतन इन चार प्रकारकी स्त्रियोंको पाँच इन्द्रिय तथा मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदनासे गुणा करे तो १८० दिन उपवास के आते हैं। अर्थात् ४ × ५ × ३ × ३ = १८० दिन उपवास और १८० दिन पारणा की जाती है अतः वर्ष भर एकान्तर रूपसे उपवास और एकाग्रान करने चाहिए। इस व्रतमें 'ॐ ह्रीं समस्तशीलव्रतमण्डि-ताय श्रीजिनाय नमः' मन्त्रका जाप करना चाहिए।

त्रेपन क्रिया व्रत

इस व्रतमें श्रावकके आठ मूल गुणोंकी विशुद्धिके निमित्त आठ अष्ट-मियोंके आठ उपवास; पाँच अणुव्रतोंकी विशुद्धिके लिए पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास; तीन गुणव्रतोंकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीयाओंके तीन उप-वास; चार शिक्षाव्रतोंकी विशुद्धिके लिए चार चतुर्थियोंके चार उपवास; बारह तपोंकी विशुद्धिके लिए बारह द्वादशियोंके बारह उपवास; साध्य

भाचकी प्राप्तिके निमित्त एक प्रतिपदाका उपवास ; ग्यारह प्रतिमाश्वीकी विशुद्धिके लिए ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह उपवास ; चार प्रकारके दानोंके देनेके निमित्त चार चतुर्थियोंके चार उपवास ; जल छाननेकी क्रियाकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास तथा निशिमोचन त्यागकी विशुद्धिके लिए प्रतिपदाका एक उपवास एवं रत्नत्रयकी विशुद्धिके लिए तीन तृतीया तिथियोंके तीन उपवास ; इस प्रकार कुल ५३ उपवास किये जाते हैं। व्रतके दिनोंमें णमोकारमन्त्रका जाप प्रतिदिन १००८ बार वा कमसे कम तीन मालाओं प्रमाण करना चाहिए। व्रतके दिनोंमें भी शीलव्रतका पालन करना आवश्यक है।

कर्मचूर व्रत

कर्मचूर या कर्मक्षय व्रत २९६ दिनोंमें पूरा किया जाता है। इस व्रतमें १४८ कर्ममहृतियोंको नष्ट करनेके निमित्त १४८ उपवास किये जाते हैं। प्रत्येक उपवासके अनन्तर पारणा की जाती है। यह व्रत लगाने-सार २९६ दिनतक एकान्तर रूपसे उपवास और पारणाका क्रम लगाकर किया जाता है। व्रतके दिनोंमें 'ॐ सर्वकर्मरहिताय सिद्धाय नमः' अथवा णमोकार मन्त्रका जाप करनेका नियम है। व्रतके दिनोंमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं सैन्यक् तपका आचरण तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेका विधान है।

लघु सुखसम्पत्ति व्रत

इस व्रतमें १२० उपवास किये जाते हैं। प्रतिपदाका एक, दो द्वितीयाश्वीके दो, तीन तृतीयाश्वीके तीन, चार चतुर्थियोंके चार, पाँच पञ्चमियोंके पाँच, छः षष्ठियोंके छः, सात सप्तमियोंके सात, आठ अष्टमियोंके आठ, नौ नवमियोंके नौ, दश दशमियोंके दश, ग्यारह एकादशियोंके ग्यारह, बारह द्वादशियोंके बारह, तेरह त्रयोदशियोंके तेरह, चौदह चतुर्दशियोंके चौदह एवं पन्द्रह पूर्णमासियोंके पन्द्रह इस प्रकार एक सौ बीस उपवास सम्पन्न किये जाते हैं। १+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+११+१२+१३+१४+१५ = १२० उपवास। उपवासके दिनोंमें

आवकके उत्तरगुणोंका पालना और शीलव्रत धारण करना आवश्यक है।

बारहसौ चौतिस व्रत या चारित्रशुद्धि व्रत

यह व्रत भादों सुदी प्रतिपदासे आरम्भ होता है, इसमें १२३४ उपवास तथा एकाग्रान करने पड़ते हैं। इस वर्ष और साढ़े तीन माहमें पूर्ण किया जाता है। यदि एकान्तर व्रत किया जाय तो पाँच वर्ष पीने दो माहमें पूर्ण होता है। उपवासके अनन्तर पारणाके दिन रस त्याग कर या नीरस भोजन करे, आरम्भ परिग्रहका त्याग कर भक्ति पूजाओं निमग्न रहे। 'ॐ ह्रीं अस्मि आ उ सा चारित्रशुद्धिवतेभ्यो नमः' मन्त्रका जाप प्रतिदिन १०८ बार दिनोंमें तीन बार करे और व्रत पूर्ण होनेपर उद्यापन करनेका विधान है।

इष्टसिद्धिकारक निःशत्रय अष्टमी व्रत

भादों सुदी अष्टमीको चारों प्रकारके आहारका त्याग कर श्री जिन-लयमें जाकर प्रत्येक पहर अभिषेक और पूजन करे। दिनोंमें चार बार पूजन और अभिषेक किये जाते हैं। त्रिकाल सामायिक और स्वाध्याय करने चाहिए। रातको जागरणपूर्वक स्तोत्र भजन पढ़ते हुए विताना चाहिए। पश्चात् नवमीको अभिषेक पूजन करके अतिथिको भोजन कराके स्वयं भोजन करे। चारों प्रकारके संघको चतुर्विध दान देना चाहिए। यह व्रत १६ वर्षतक किया जाता है, तत्पश्चात् उद्यापन करनेका विधान है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

फौकिलापञ्चमी व्रत

आषाढ़ वदी पञ्चमीसे पाँच मासतक प्रत्येक कृष्णपक्षकी पञ्चमीको पाँच वर्षतक यह व्रत किया जाता है। इस व्रतमें उपवासके दिन चारों प्रकारके आहारका त्याग कर पूजन, अभिषेक, शाख स्वाध्याय एवं धर्म-

ध्यान करने चाहिए। 'ओं ह्रीं पञ्चपरमेश्वर्यो नमः' मन्त्रका जाप इस व्रतमें करना चाहिए।

जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत

अरेहन्त भगवान्के गुणोंका चिन्तन करते हुए इस जन्म, दूसरे केवलके अतिशयके कारण बीस दशमियोंको बीस उपवास, देवद्वैत चौदह अतिशयके कारण चौदह चतुर्दशियोंके चौदह उपवास, आठ प्रातिहारीके कारण आठ अष्टमियोंके आठ उपवास, सोलह कारण भावनाकी प्राप्तिके लिए सोलह प्रतिपदाओंके सोलह उपवास, पंचकल्याणकी प्राप्ति के निमित्त पाँच पञ्चमियोंके पाँच उपवास; इस प्रकार कुल २० दशमी + १४ चतुर्दशी + ८ अष्टमी + १६ प्रतिपदा + ५ पञ्चमी = ६३ प्रोपयोगवास किये जाते हैं।

गुरुके समक्ष व्रत ग्रहण करनेका आदेश

व्रतादानव्रतस्यागः कार्यो गुरुसमक्षतः।

नो चेत्तद्विफलं ह्येवं कृतः शिक्षादिकं भवेत्॥

यो स्वयं व्रतमादत्ते स्वयं चापि विमुञ्चति।

तद्व्रतं निष्फलं ह्येवं साध्याभावात् कुतः फलम्॥

गुरुमाहिष्टं नियमं सर्वकार्याणि साधयेत्।

यथा च श्रुत्तिकाद्रोणः विद्यादानपरो भवेत्॥

गुरुभावनया त्यक्तं व्रतं किं कार्यदृढं भवेत्।

केवलं मृतिकावेदम किं कुर्यात् कर्तुं वञ्चितम्॥

अतो व्रतोपदेशस्तु ग्राह्यो गुरुर्नानात खलु।

स्याज्यध्यापि विशेषेण तस्य साशितया पुनः॥

क्रममुल्लंघ्य यो नारी नरो वा गच्छति स्वयम्।

स एव नरकं याति जिनास्त्रागुरुलोपतः॥

इति आचार्यसिंहान्दिविरचितः व्रततिथिनिर्णयः समाप्तः॥

अर्थ—गुरुके समक्षसे ही व्रतोंका ग्रहण और व्रतोंका त्याग करना चाहिए। गुरुकी साक्षीके बिना ग्रहण किये और त्याग व्रत निष्फल

होते हैं, अतः उन व्रतोंसे धन-धान्य, शिक्षा आदि फलोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, जो स्वयं व्रतोंको ग्रहण करता है और स्वयं ही व्रतोंको छोड़ देता है, उसके व्रत निष्फल हो, जाते हैं। गुरुकी साक्षी न होनेसे व्रतोंका क्या फल होगा? अर्थात् कुछ भी नहीं। गुरुसे यथाविधि ग्रहण किये गये व्रत नियम ही सभी कार्योंको सिद्ध कर सकते हैं। जैसे भिक्षु-राज द्रोणचार्यकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उसे गुरु मानकर विद्या-साधन करता था, उसे इस मूर्तिकामय गुरुकी कृपासे विद्याएँ सिद्ध हो गयी थीं, इस प्रकार गुरुकी कृपासे ही व्रत सफल होते हैं। बिना गुरुकी भावनाके ग्रहण किये गये व्रत कुछ भी कार्यकारी नहीं हो सकते हैं। जैसे मिट्टीका घर बिना कच्चाके निरर्थक है, उसी प्रकार गुरुके साक्ष्यके बिना त्यक्त व्रत भी निष्फल है। अतएव गुरुके मुखसे व्रतोंको ग्रहण करना चाहिए तथा उन्हेंकी साक्षी पूर्वंक व्रतोंको छोड़ना चाहिए। जो स्त्री या पुरुष क्रमका उल्लंघन कर स्वच्छासे व्रत करते हैं, वे गुरुकी अवहेलना एवं जिनास्त्राका लोप करनेके कारण नरकमें जाते हैं।

विवेचन—व्रत सर्वदा गुरुके सामने जाकर ग्रहण करने चाहिए। यदि गुरु न मिले तो किसी तत्त्वज्ञ विद्वान्, ब्रह्मचारी, व्रती या अन्य धर्मात्मासे व्रत लेना चाहिए। तथा व्रतोंको गुरु या विद्वान्, ब्रह्मचारीके समक्ष छोड़ना भी चाहिए। यदि गुरु, विद्वान्, ब्रह्मचारी आदिका साक्षिधर्म भी प्राप्त न हो सके तो जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमाके सामने ग्रहण करने तथा छोड़ने चाहिए। बिना साक्ष्यके व्रतोंका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होता है। शास्त्रोंमें एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक सेठके मकान बन रहा था, उसमें ईंट, चूना, सीमेण्ट होनेका कार्य कई मजदूर कर रहे थे। एक मजदूर चुपचाप बिना अपना नाम लिखाये काम करने लगा, दिन भर कटोर ध्रम किया। सन्ध्या समय जब सबको मजदूरी दी जाने लगी तो वह परिश्रमी मजदूर भी मुनीमके सामने पहुँचा और कहने लगा—सरकार मैंने दिनभर सबसे अधिक ध्रम किया है, अतः मुझे अधिक मजदूरी मिलनी चाहिए। मुनीमने रजिस्टरसे मिलाकर सभी नामदर्ज

मङ्गदूरीको मङ्गदूरी दे दी ; परन्तु जिसने कठोर श्रम किया और अपना नाम रजिस्ट्रमें दर्ज नहीं कराया था, उसे मङ्गदूरी नहीं दी । सुनीमने साफ-साफ कह दिया कि तुम्हारा नाम रजिस्ट्रमें नोट नहीं है, अतः तुम्हें मङ्गदूरी नहीं दी जा सकती । इसी प्रकार जिन्होंने गुरुजी साह्यसे व्रत ग्रहण नहीं किया है, उनके फलभी प्राप्ति नहीं होती है, अथवा अत्यल्प फल मिलता है । अतएव स्वेच्छासे कभी भी व्रत ग्रहण नहीं करने चाहिये ।

इस प्रकार आचार्यसिंहनिश्चित व्रततिथिनिर्णय समाप्त हुआ ।

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

भारतीय विचारधारा

अध्यात्म-पदावली

कुन्दकुन्दार्च्यके तीन रत्न

वैदिक साहित्य

जैनशासन [द्वि. सं.]

उपन्यास, कहानियाँ

मुक्तिदूत [उपन्यास]

संघर्षके बाद

गहरे पानी पैठ

आकाशके तारे : धरतीके फूल

पहला कहानीकार

खल-खिलौने

अतीतके कंपन

जिन खोजा तिन पाइयाँ

नये बादल

उर्दू-शायरी

शेर-शायरी [द्वि. सं.]

शेर-सुजन [पाँचों भाग]

संस्मरण, रेखाचित्र

हमारे आराध्य

संस्मरण

रेखाचित्र

जैन-जागरणके अग्रदूत

काविता

वर्द्धमान [महाकाव्य]

मिलन-यामिनी

भूपके धान

मेरे बापू

पंच-प्रदीप

आधुनिक जैन-कावे

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव

खोजकी पगडिण्डियाँ

चौलुफ्न कुमारपाल

कालिदासका भारत [भाग १-२]

हिन्दी-जैन-साहित्य का सं.

इतिहास

हिन्दी-जैन-साहित्य-परिशीलन

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि

कालकवण [साप्ताहिक शब्द]

नाटक

रत्नतरंगिण

रेडियो नाट्यशिल्प

और खाई बढ़ती गई

पंचपनका फेर

विविध

द्विवेदी-पञ्चावली	२॥)	अहिपुराण [भाग १]	१०)
शिन्दगी मुसकराई	३)	आदिपुराण [भाग २]	१०)
ध्वनि और संगीत	३)	उत्तरपुराण	१०)
हिन्दू विवाहमें कन्यादान- का स्थान	१)	पुराणसारसंग्रह [भाग १-२]	३)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	३)	धर्मशमश्रुद्वय	३)
शरदके नारीपत्र	३॥)	[धर्मनाथ-चरित]	३)
क्या मैं अनन्तर आ सकता हूँ ? २॥)	३॥)	जातकट्टकथा [पत्नी भाषा]	१)
सिद्धान्तशास्त्र		काव्य, न्याय	
महाबन्ध [भाग १]	१२)	न्यायविनिश्चयविवरण	
महाबन्ध [भाग २-३-४-५]	३३)	[भाग १] १५)	
तत्त्वार्थवृत्ति	१३)	न्यायविनिश्चयविवरण	
तत्त्वार्थराजवार्त्तिक [भाग १] १२)	१२)	[भाग २] १५)	
समयसार [अंग्रेजी]	८)	मदनपराजय [काव्य]	८)
सर्वार्थसिद्धि	१२)	कोष, छन्दशास्त्र	
स्तोत्र, आचार	५)	नाममाला सभाष्य	३॥)
वसुनन्दिश्रावकाचार	५)	सभाष्यरत्नमञ्जरा [छन्दशास्त्र]	२)
जिनसहस्रनाम [स्तोत्र]	३)		

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस